ग़ुबारे-ख़ातिर

अकादेमी के अन्य हिन्दी-प्रकाशन

(मूल भाषाओं के नाम कोष्ठक में अंकित हैं)

१. भारतीय कविता : १९५३	(भारत की १४ भाषाओं की कविताओं का लिप्यंतर और अनुवाद)	५.००
२. केरल सिंह (मलयालम)	का. मा. पणिक्कर	३.००
३. भगवान् बुद्ध (मराठी)	धर्मानन्द कोसम्बी	५.००
४. कांदीद् (फ्रेंच)	वाल्तेयर	७.००
५. दो सेर धान (मलयालम)	तकषी शिवशंकर पिल्लै	२.००
६. मिट्टी का पुतला	कालिन्दीचरण पाणिग्राही	२.००
७. आरण्यक (बंगला)	विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय	४.००
८. गेंजी की कहानी (जापानी)	मुरासाकी शिकाबू	४.५०
९. आरोग्य निकेतन (बंगला)	ताराशंकर बंद्योपाध्याय	६.००
१०. अमृत सन्तान (उड़िया)	गोपीनाथ महान्ती	१२.००
११. आदमखोर (पंजाबी)	नानकसिंह	५.००
१२. वैदिक संस्कृति का विकास (मराठी)	लक्ष्मण शास्त्री जोशी	५.५०
१३. क्या यही सभ्यता है ? (बंगला)	माइकेल मधुसूदन दत्त	१.५०
१४. नारायण राव (तेलुगु)	अडिवि बापिराजु	६.००
१५. आज का भारतीय साहित्य	(भारत की १६ भाषाओं के साहित्य का परिचय)	७.००
१६. जीवी (गुजराती)	पन्नालाल पटेल	४.५०
१७. भग्नमूर्ति (मराठी)	अनिल	१.००
१८. एकोत्तर शती (बंगला)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	८.००
१९. चिलिका (उड़िया)	राधानाथ राय	१.५०
२०. मिरातुल उरूस (उर्दू)	नज़ीर अहमद	[illegible]
२१. छै बीघा ज़मीन (उड़िया)	फ़कीर मोहन सेनापति	३.००
२२. मीरी बिटिया (असमिया)	रजनीकांत बरदलै	२.००
२३. मछुआरे (मलयालम)	तकषी शिवशंकर पिल्लै	[illegible]
२४. आन्ध्र का सामाजिक इतिहास (तेलुगु)	सुरवरम् प्रताप रेड्डी	[illegible]
२५. वल्लत्तोल की कविताएँ (मलयालम)		[illegible]

ग़ुबारे-ख़ातिर

(हिन्दी लिप्यन्तर)

मूल उर्दू-लेखक

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

लिप्यन्तर

मदनलाल जैन

भूमिका

प्रो. हुमायूं कबीर

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

Ghubar-e-Khatir by Maulana Abul Kalam Azad. Transliterated in Devanagari with a glossary by Madanlal Jain. Published by Sahitya Akademi, New Delhi. Rs. 6.00 (1959)

प्रकाशक

© साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली

एकाधिकारी वितरक

राजकमल प्रकाशन (प्रा.) लिमिटेड, दिल्ली

मूल्य :

[illegible] रुपये

मुद्रक :

[illegible]

भूमिका

मौलाना आज़ाद अहमद नगर के क़िले मे नज़रबन्द थे तो उन्होंने अपने दोस्त नवाब सद्रयार जंग को कई ख़त लिखे थे। मौलाना की रिहाई के बाद ये ख़त 'ग़ुबारे ख़ातिर'[1] के नाम से एक किताब की सूरत में छपे और सभी लोगों ने उन्हें बहुत पसंद किया। उर्दू में इस किताब के कई एडीशन निकल चुके हैं और इतने साल गुज़र जाने पर भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है। मौलाना ने अपनी क़लम से उर्दू-साहित्य की जो सेवा की है वह कभी भी नहीं भुलाई जा सकती। उनकी कलम में इतना ज़ोर और ऐसा जादू था कि वह मामूली-से-मामूली विषय पर भी लिखते थे तो उसकी गिनती ऊँचे दर्जे के साहित्य में होने लगती थी। उनके लिखने का तर्ज़ बहुत सुन्दर और अनोखा था। पिछले चालीस-पचास साल के उर्दू अदब पर मौलाना के विचारों और लिखने के तर्ज़ का बहुत गहरा असर पड़ा है।

ख़तों में एक ख़ास तरह की सादगी और स्वाभाविकता होती है। इसके अलावा ख़तों में लिखने वाले के व्यक्तित्व की बहुत गहरी छाप होती है, जिससे उनमें विशेष आकर्षण और ख़ूबसूरती आ जाती है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब लिखने वाले का व्यक्तित्व भी बहुत ऊँचे दर्जे का हो। 'ग़ुबारे ख़ातिर' के ख़तों में इतना असर और ख़ूबसूरती इसीलिए है, क्योंकि उनमें मौलाना के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। किसी साहित्यकार या विचारक के व्यक्तित्व के ऐसे कई पहलू, जो उसकी साहित्यिक रचनाओं में ज़ाहिर नहीं होते, ख़तों में खुलकर सामने आ जाते हैं। इस दृष्टि से भी मौलाना के इन ख़तों की बहुत अहमियत है।

मौलाना की सारी ज़िन्दगी राजनीति और देश की सेवा में गुज़री और इस फ़र्ज़ को उन्होंने जिस तरह निभाया वह अपनी मिसाल आप है। लेकिन मौलाना सिर्फ़ सियासी नेता ही नहीं थे, वह बहुत ऊँचे दर्जे के साहित्यकार और विचारक भी थे। उनको अदब और शायरी से बहुत लगाव था। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व उनके ख़तों में बहुत आन-बान के साथ उभरा है। उन्होंने ख़त जैसे शुष्क और नीरस तहरीरी बातचीत की सतह से उठाकर ऊँचे साहित्य का दर्जा दिया है। मौलाना ने इन ख़तों में बहुत-सी समस्याओं पर विचार किया है, लेकिन व्यक्तित्व का पुट, जो ख़तों की जान है, हर हालत में मौजूद

---

१. दिल या मन के ग़ुबार।

रहा है। 'गुबारे खातिर' में मौलाना के शानदार व्यक्तित्व का एक नया रूप नजर आता है।

मौलाना की यह पुस्तक इस काबिल है कि इसे पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति और विरासत माना जाय।

मुझे खुशी है कि अब यह किताब देवनागरी लिपि में छापी जा रही है। इसके इस तरह छापने का विशेष महत्त्व है। जो लोग उर्दू लिपि नहीं पढ़ सकते उनके लिए भी मौलाना के इस खजाने के अब दरवाजे खुल जायंगे। उन्हें भी उर्दू और फारसी की शायरी और इल्म की एक झलक मिल सकेगी।

—हुमायूं कबीर

बिस्मिल्लाहिर्रहमानुर्रहीम

तारीखे-वाक़याते-शहाँ नानविश्ता मंद
अफ़सानये कि गुफ़्त नज़ीरी किताब शुद ।[1]

इस मजमुये[2] में जिस क़दर मक़्तूबात[3] हैं, वो तमामतर नवाब सद्र यारजंग मौलाना हबीबुर्रहमान ख़ां साहब शिरवानी रईस भीकमपुर ज़िला अलीगढ़ के नाम लिखे गये थे। चूंकि क़िलये-अहमदनगर की क़ैद के ज़माने में दोस्तों से ख़त ओ किताबत की इजाज़त न थी और हज़रत मौलाना की कोई तहरीर[4] बाहर नहीं जा सकती थी इसलिए ये मकातीब वक़्तन फ़वक़्तन लिखे गये और एक फ़ाइल में जमा होते रहे। १५ जून सन् १९४५ ई० को जब मौलाना रिहा हुए तो इन मकातीब के मक्तूब इलैह[5] तक पहुँचने की राह बाज़[6] हुई।

नवाब साहब से हज़रत मौलाना का दोस्ताना इलाक़ा[7] बहुत क़दीम है। मौलाना ने खुद एक मर्तबा मुझसे फ़रमाया कि पहले-पहल उनसे मुलाक़ात सन् १९०६ ई० में हुई थी। गोया एक कम चालीस बरस इस रिश्तये-इख़लास[8] ओ मुहब्बत पर गुज़र चुके, और एक क़र्न[9] से भी ज़्यादा वक़्त का इम्तिदाद[10] इसकी ताज़गी और शिगुफ़्तगी को अफ़सुर्दा न कर सका। दोस्ती और यगानगत[11] के ऐसे ही इलाक़े हैं जिनकी निस्बत कहा गया था

[illegible] [illegible] व [illegible]
[illegible] व [illegible][12]

अलबत्ता यह इलाक़ये-मुहब्बत ओ इख़लास[13] सिर्फ़ इल्मी और अदबी[14] ज़ौक़ के रिश्तये-इश्तराक[15] में महदूद है। सियासी[16] अक़ायद[17] ओ ऐमाल[18] से

१. बादशाहों के इक़बाल का इतिहास तो अलिखित ही रहा, और जो कहानी नज़ीरी ने कही उसकी किताब बन गई २. संग्रह ३. मक्तूब का बहुवचन, पत्र ४. लेख ५. जिसके नाम पत्र लिखा गया ६. खुली ७. सम्बन्ध ८. [illegible] और मुहब्बत का ताल्लुक़ ९. युग १०. दूरी ११. [illegible] १२. [illegible] १३. प्यार और दोस्ती का सम्बन्ध १४. साहित्यिक रुचि १५. सहयोग का रिश्ता १६. राजनैतिक १७-१८. विचार और आचरण।

इसका कोई ताल्लुक़ नहीं। सियासी मैदान में मौलाना की राह दूसरी है और नवाब साहब उससे रस्म ओ राह[1] नहीं रखते।

हज़रत मौलाना की ज़िंदगी मुख़्तलिफ़[2] और मुतज़ाद[3] हैसियतों में बँटी हुई है। वो एक ही ज़िंदगी और एक ही वक़्त में मुसन्निफ़[4] भी हैं, मुक़र्रिर[5] भी हैं, मुफ़क्किर[6] भी हैं, अदीब[7] भी हैं, मुदब्बिर[8] भी हैं और साथ ही सियासी जद्दोजहद के मैदान के सिपहसालार भी हैं। दीनी उलूम[9] के तबह्हुर[10] के साथ अक़लियात ओ फ़लसफ़े का ज़ौक बहुत कम जमा होता है। और इल्म और अदब के ज़ौक़ ने एक ही दिमाग़ में बहुत कम आशियाना बनाया है। फिर इल्मी ओ फ़िक्री[11] ज़िंदगी का मैदान अमली[12] सियासत की जद्दोजहद से इतना दूर वाक़े हुआ है कि एक ही क़दम दोनों मैदानों में बहुत कम उठ सके हैं। मगर मौलाना आज़ाद की ज़िंदगी इन तमाम मुख़्तलिफ़ और मुतज़ाद हैसियतों की जामे[13] है। गोया उनकी एक ज़िंदगी में बहुत-सी ज़िंदगियाँ जमा हो गई हैं।

वो अपनी ज़ात से इक अंजुमन हैं

इस सूरते-हाल[14] का क़ुदरती नतीजा यह निकला कि उनके अलायक़[15] का दायरा किसी एक गोशे ही में महदूद नहीं रहा। उलूमे-दीनिया[16] के हुजरों[17] के ख़ल्वतनशीन,[18] अदब ओ शेर की महफ़िलों के बज़्मतराज़,[19] इल्म और फ़लसफ़े की काविशों[20] के दक़ीक़ासंज[21] और मैदाने-सियासत के तदब्बुर[22] और मारका-आराइयों[23] के शहसवार,[24] सबके लिए उनकी शख़्सियत यकसाँ तौर पर कशिश[25] रखती है, और सब इस मजमए-फ़ज़्ल ओ कमाल[26] के इफ़ादात[27] से बक़दरे-तलब ओ हौसला मुस्तफ़ीद[28] होते रहते हैं :

तू नख़्ले-ख़ुश समरे कीस्ती कि बाग़-ओ-चमन
हमा ज़ ख़ेश बुरीदंद ओ बर तो पैवस्तन्द ![29]

---

१. ताल्लुक़ २. भिन्न-भिन्न ३. भिन्न ४. लेखक ५. वक्ता ६. विचारक ७. साहित्यिक व्यक्ति ८. राजनीतिज्ञ ९. धार्मिक ज्ञान १०. अगाध ज्ञान ११. चिंतनशील १२. सक्रिय राजनीति १३. संगम १४. परिस्थिति, वस्तुस्थिति १५. सम्बन्धों का १६. धार्मिक ज्ञान १७. कोठियाँ १८. एकान्तवासी १९. सभा-संचालक २०. खोज २१. सूक्ष्म प्रज्ञा २२. विचारक २३. रणक्षेत्र २४. घुड़सवार २५. रुचि २६. प्रवीणता और बुज़ुर्गी का भण्डार २७. फ़ायदे २८. लाभान्वित २९. तू अच्छे फल देने वाला पेड़ निकला है कि बाग़ और चमन सब अपने से कटकर तुझमें जमा हो गये हैं।

अलबत्ता उनके इरादतमंदों[1] का हल्क़ा[2] जिस क़दर वसीअ[3] और बैनुलक़ौमी[4] है, उतना ही दोस्तों का दायरा तंग है :

कसे कि ख़ूद गुसल नेस्त, वेर पैवन्द स्त ![5]

ऐसे ख़ुश क़िस्मत असहाब जिन्हें मौलाना अपने "दोस्तों" में तसव्वुर करते हों ख़ाल ख़ाल[6] हैं। और सिर्फ़ वही हैं जिन से इल्म ओ ज़ौक़[7] के इश्तराक[8], और रुजहाने-तबीयत की मुनासिबत ने उन्हें वाबस्ता[9] कर दिया है। ऐसे ही ख़ाल ख़ाल हज़रात में एक शख़्सियत नवाब सद्र यारजंग की है।

नवाब साहब मुसलमानाने-हिंद के गुज़श्ता दौरे-इल्म ओ मजालिस की यादगार हैं। आज से तीस चालीस बरस पेश्तर का ज़माना मौलाना आज़ाद की इब्तदाई[10] इल्मी ज़िंदगी का ज़माना था। वो उस वक़्त के तमाम अकाबिर ओ अफ़ाज़िल[11] से उम्र में बहुत छोटे थे। यानी उनकी उम्र सतरह अठारह बरस से ज्यादा न थी। लेकिन अपनी ग़ैरमामूली ज़हानत[12] और मुहय्यिर-उल-अक़ूल[13] इल्मी क़ाबलियत की वजह से सबकी नज़रों में मोहतरम[14] हो गये थे और मुआसिराना[15] और दोस्ताना हैसियत से मिलते थे। नवाब मुहसिन-उल-मुल्क, नवाब वक़ार-उल-मुल्क, ख़लीफ़ा मुहम्मदहुसैन (पटियाला), ख़्वाजा अल्ताफ़हुसैन हाली, मौलाना शिब्ली नैमानी, डाक्टर नज़ीर अहमद, मुंशी ज़काउल्ला, हकीम मुहम्मद अजमल ख़ां वग़ैरहुम सब से उनके दोस्ताना ताल्लुक़ात थे और इल्मी और अदबी सोहबतें रहा करती थीं। इसी अहद की सोहबतों में नवाब सद्र यार-जंग से भी उनकी शनासाई[16] हुई। और फिर शनासाई ने उम्र भर की दोस्ती की नौइयत[17] पैदा कर ली। मौलाना इस रिश्ते को ख़ुसूसियत के साथ अज़ीज़ रखते हैं। क्योंकि यह उस अहद की यादगार है जो बहुत तेज़ी के साथ गुज़र गया और मुल्क की मजलिसें क़दीम सूरतों और सोहबतों से यकक़लम ख़ाली हो गईं।

मौलाना की सियासी ज़िंदगी के तूफ़ानी हवादिस[18] उनकी तमाम दूसरी हैसियतों पर छा गये हैं, लेकिन ख़ुद मौलाना ने अपनी सियासी ज़िंदगी को अपने इल्मी और अदबी अलायक़ से बिल्कुल अलग रखा है। जिन दोस्तों से उनका इलाक़ा महज़ इल्म ओ अदब के शौक़ का इलाक़ा है, वो उनके अलायक़ को सियासी ज़िंदगी से हमेशा अलग रखते हैं। और इस तरह अलग रखते हैं

---

१. अक़ीदतमंद २. घेरा ३. विस्तृत ४. अंतर्राष्ट्रीय ५. जो चीज जल्दी नहीं टूटती वह ज्यादा टिकती है ६. थोड़े ही ७. ज्ञान और रुचि ८. सहयोग ९. संगठित १०. प्रारंभिक ११. प्रवीण और बुज़ुर्ग १२. प्रतिभा १३. हैरत अंगेज १४. सम्मानित १५. हमसाना १६. परिचय १७. ढंग १८. घटनाएँ।

कि सियासी ज़िंदगी की परछाईं भी उस पर नहीं पड़ सकती। वह जब कभी उन दोस्तों से मिलेंगे या ख़त ओ किताबत करेंगे तो उसमें सियासी अफ़कार ओ ऐमाल[1] का कोई ज़िक्र न होगा। एक बेख़बर आदमी अगर उस वक़्त की बातों को सुने तो ख़याल करे, इस शख़्स को सियासी दुनिया से दूर का भी इलाक़ा नहीं है और इल्म ओ अदब के सिवा और किसी ज़ौक़ से आश्ना[2] नहीं। एक मर्तबा इस मामले का ख़ुद मौलाना से ज़िक्र हुआ तो फ़रमाने लगे जिस शख़्स से मेरा ताल्लुक़ जिस हैसियत से है, मैं हमेशा उसे उसी हैसियत में महदूद रखना चाहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि दूसरी हैसियतों से उसे आलूदा[3] करूँ। चुनांचे न तो कभी वो उन दोस्तों से इसकी तवक़्क़ो रखते हैं कि उनकी सियासी ज़िंदगी के आलाम को मसायब[4] में शरीक हों, न कभी इसके ख़्वाहिशमंद होते हैं कि उनके सियासी अफ़कार ओ ऐमाल से इत्तिफ़ाक़ करें। सियासी मामले में वो हर शख़्स को ख़ुद उसकी पसंद और ख़्वाहिश पर छोड़ देते हैं। आप उनसे किसी इल्मी, मज़हबी और अदबी ताल्लुक़ से बरसों मिलते रहिये, वो कभी भूले से भी सियासी मामलात का आप से ज़िक्र नहीं करेंगे। ऐसा मालूम होगा जैसे इस आलम की उन्हें कोई ख़बर ही नहीं।

बसा[5] औक़ात ऐसा होता है कि उनकी ज़िंदगी सियासी मैदानों के तूफ़ानी हवादिस से घिरी होती है। कुछ मालूम नहीं होता कि एक दिन या एक घंटे के बाद क्या हवादिस पेश आयेंगे। मुमकिन है कि क़ैद ओ बंद का मरहला[6] पेश आ जाये। बहुत मुमकिन है कि जिलावतनी[7], या इससे भी ज़्यादा कोई ख़तरनाक सूरते-हाल हो। लेकिन अचानक, ऐन इसी आलम में किसी हमज़ौक दोस्त की याद उनके सामने आ खड़ी होती है, और वो थोड़ी देर के लिए अपने सारे गिर्द ओ पेश[8] से यकक़लम कनाराकश होकर उसकी जानिब हमातन[9] मुतवज्जा हो जाते हैं और इस इस्तिग़राक़ और इनहिमाक[10] के साथ मुतवज्जा होते हैं गोया उनकी ज़िंदगी पर किसी ख़तरनाक हादिसे का साया भी नहीं पड़ा है। वो उस वक़्त अपनी यकसां[11] और बेकैफ़[12] सियासी मशग़ूलियत का मज़ा बदलने के लिये कोई ऐसा मौज़ू छेड़ देंगे जो सियासी ज़िंदगी के मैदानों से हज़ारों कोस दूर होगा। इल्म ओ फ़न का कोई मबहस[13], फ़िलसफ़ियाना ग़ौर ओ फ़िक्र की कोई काविश[14] तबीइय्यात[15] का कोई नया नज़रिया, तसव्वुफ़ ओ इशराक़[16] का कोई वारिदा[17] या फिर अदब ओ इंशा की सुख़न तराज़ी और शेर ओ सुख़न

---

१. आचार विचार २. परिचित ३. मिश्रित ४. दुख और मुसीबत ५. बहुत बार ६. पड़ाव, मौक़ा ७. देश निकाला ८. पारिपार्श्विक ९. संपूर्ण रूप से १०. तल्लीनता ११. यकसां १२. बेमज़ा १३. चर्चा बहस १४. गवेषणा, खोज १५. पदार्थ-विज्ञान १६. योग और वेदांत १७. आत्मशुद्धि से हृदय में जो बात उतरती है उसे वारिदा कहते हैं।

की बज़्म आराई, गर्ज़ कि सियासत के सिवा हर ज़ौक़ की वहाँ गुंजाइश होगी। हर वादी की वहाँ पैमाइश की जा सकेगी। उस वक़्त कोई इन्हें देखे तो साफ़ दिखाई दे कि ज़बाने-हाल से ख़्वाजा हाफ़िज़ का यह शेर दुहरा रहे हैं :

कमंदे-सैदे बहरामी बयफ़गन, जामे-मय बरदार
कि मन पैमूदम ईं सहरा, न बहराम स्त ने गोरश ![1]

मौलाना इस सूरते-हाल को "तहमीज़" से ताबीर किया करते हैं। "तहमीज़" अरबी में मुँह का मज़ा बदलने के मानी में बोला जाता है, "हम्मिज़ू मजालिसकुम" यानी अपनी मजलिसों का मज़ा बदलते रहो। वो कहते हैं, अगर गाह गाह मैं इस तहमीज़ का मौक़ा न निकालता रहूँ तो मेरा दिमाग़ बेकैफ़[2] और ख़ुश्क मशग़ूलियतों के बारे-मुसलसल[3] से थक कर मुअ़त्तल[4] हो जाये। इस तरह की "तहमीज़" मेरे लिये ज़हनी ऐश ओ निशात[5] का सामान बहम[6] कर दिया करती है, और दिमाग़ अज़ सरे-नौ ताज़ा दम हो जाता है।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि ऐन सियासी तूफ़ानों के मौसम में कोई हमज़ौक़[7] दोस्त आ निकलता है और उन्हें मौक़ा मिल जाता है कि क़लम ओ तख़य्युल[8] की जगह सोहबत ओ मुजालिसत[9] के ज़रिये अपनी मशग़ूलियत का ज़ायक़ा बदलें। वो मअ़न[10] अपने गिर्द ओ पेश की दुनिया से बाहर निकल आयेंगे और एक इंक़लाबी तहव्वुल[11] के साथ अपने आप को एक दूसरे ही आलम में पहुँचा देंगे। वो फ़ौरन अपने ख़ादिमे-ख़ास अब्दुल्ला को पुकारेंगे कि चाय लाओ। यह गोया इसका ऐलान होगा कि उनके ज़ौक़ ओ कैफ़ का ख़ास वक़्त आ गया। फिर शेर ओ सुख़न की सोहबत शुरू हो जायेगी। इल्म ओ अदब का मज़ाकिरा[12] होने लगेगा और आला दर्जे की चीनी चाय "व्हाइट जेसमिन" के छोटे छोटे फ़िंजानों का दौर चलने लगेगा कि :

हासिले-कारगहे-कौन ओ मकां ईं हमा नेस्त
बादा पेश आर कि असबाबे-जहां ईं हमा नेस्त[13]

उन्हें अपनी तबीयत के इंफ़िआलात[14] पर ग़ालिब आने और अपने आप

---

१. बहराम को पकड़ने की कमंद फेंक दे और शराब का प्याला ले ले। क्योंकि मैंने यह सारा जंगल छान डाला है यहाँ कहीं न तो बहराम है और न उसका शिकार गोरे-ख़र। २. निरानंद ३. निरंतर का भार ४. बेकार ५. ख़ुशी ६. जुटा देना ७. समान अभिरुचि ८. विचार ९. बैठकी बातचीत, गोष्ठी १०. फ़ौरन ११. परिवर्तन १२. एक दूसरे से बातें १३. इस दुनिया के कारख़ाने का परिणाम या लाभ यह सब कुछ नहीं है। शराब लाओ क्योंकि दुनिया का असबाब यह सब नहीं हैं १४. भावनाएँ।

को इंकलाब बदल लेने की जो ग़ैर मामूली क़ुदरत हासिल हो गई है, वो फ़िलहक़ीक़त एक हैरत अंगेज़ बात है। इसका अंदाज़ा सिर्फ़ वही लोग कर सकते हैं जिन्हें ख़ुद अपनी आँखों से इस इंक़लाबी तहव्वुल को देखने का मौक़ा मिला हो। मुझे आठ बरस से यह मौक़ा हासिल है।

नवाब सद्र यारजंग एक ख़ानदानी रईस हैं। मुल्क के सियासी मामलात में उनका तर्ज़े-अमल वही रहता आया है जो अमूमन मुल्क के तबक़ये रऊसा[1] का है। यानी सियासी कशमकश के मैदानों से अलहृदगी और अपने गोशये-सुकून ओ जमीयत[2] पर क़नाअत[3]। बरख़िलाफ़ इसके मौलाना की पूरी ज़िंदगी सियासी जद्दोजहद की जंग आज़माई और मारका-आराई की ज़िंदगी है। लेकिन सूरते-हाल का यह इख़्तिलाफ़[4] बल्कि तज़ाद[4] एक लमहे के लिये भी उनके बाहमी अलायक़[5] की यगानगत ओ यकजहती पर असर नहीं डाल सकता। न कभी मौलाना सियासी मामलात की तरफ़ कोई इशारा करेंगे, न कभी नवाब साहब की जानिब से कोई ऐसा तज़किरा दरम्यान आयेगा। दोनों का इलाक़ा ज़ाती मुहब्बत ओ इख़लास और ज़ौक़े-अमल ओ अदब के इश्तराक का इलाक़ा है और हमेशा इसी दायरे में महदूद रहता है। चुनांचे क़िलये-अहमदनगर के एक मकतूब मुवर्रिख़ा[6] २६ अगस्त सन् १९४२ में वो सियासी हालत की तरफ़ इशारा करते हुये लिखते हैं—"मुझे यह क़िस्सा यहाँ नहीं छेड़ना चाहिये। मेरी आपकी मजलिस-आराई इस अफ़साना सराई के लिये नहीं हुआ करती।

अज़ मा बजुज़ हिकायते-मह्र ओ वफ़ा मपुर्स[7]

"मेरी दुकाने-सुख़न में एक ही तरह की जिंस नहीं रहती। लेकिन आपके लिये कुछ निकालता हूँ तो एहतियात की छलनी में अच्छी तरह छान लिया करता हूँ कि किसी तरह की सियासी मिलावट बाक़ी न रहे।"

१५ जून सन् १९४५ को मौलाना तीन बरस की क़ैद ओ बंद के बाद रिहा हुये और इस हालत में रिहा हुये कि चालीस पाउंड वज़न कम हो चुका था और तन्दुरुस्ती जवाब दे चुकी थी। लेकिन रिहाई के बाद ही उन्हें फ़ौरन शिमले पहुँचना, और शिमला कान्फ्रेंस की मश्ग़ूलियतों में गुम हो जाना पड़ा। अब वो क़िलये-अहमदनगर और बांकुड़ा के क़ैदख़ाने की जगह वाइसरीगल

---

१. रईस लोगों का २. सुख शांति की एकांतता ३. संतोष ४. फ़र्क़ या विरोध ५. आपसी संबंध ६. तारीख़ का ७. मुझसे सिर्फ़ प्यार और मुहब्बत की बातों के और कुछ मत पूछ। इस शेर का पहला मिसरा है "मा क़िस्सये-सिकंदर ओ दारा न ख़्वांदाएम" मैंने सिकंदर और दारा के क़िस्से नहीं पढ़े हैं।

आज शिमला के मेहमान थे। लेकिन यहाँ भी सुबह चार बजे की सहरख़ेज़ी[1] और ख़ुदमशग़ूली[2] की मामूलात बराबर जारी रहीं। एक दिन सुबह अचानक नवाब साहब की याद सामने आ जाती है और वो एक शेर लिख कर तीन बरस पेश्तर की ख़त ओ किताबत का सिलसिला अज़-सरे-नौ ताज़ा कर देते हैं। फ़िर तबदीले-आबोहवा के लिये कश्मीर जाते हैं और तीन हफ़्ते गुलमर्ग में मुक़ीम हो जाते हैं। गुलमर्ग से सिरीनगर आते हैं और एक हाउस बोट में मुक़ीम रहते हैं। यह हाउस बोट नसीमबाग़ के किनारे लगा दिया गया था और मौलाना की सुबहें उसी के ड्राइंग रूम में बसर होने लगी थीं। यहाँ फिर ख़त ओ किताबत का सिलसिला जारी होता है और ३ सितम्बर सन् १९४५ ई० को मौलाना अपने एक मकतूब में क़िलअ़े-अहमदनगर के हालात की हिकायत छेड़ देते हैं और इन मकातीब की निगारिश के असबाब ओ मुहर्रिकात[3] की तफ़सीलात लिखते हैं जो इस मजमुअ़[4] में जमा किये गये हैं। चूंकि रिहाई के बाद के मकातीब का यह हिस्सा भी इन मकातीब से मरबूत[5] हो गया है, इसलिये मौलाना से इजाज़त लेकर मैंने उन्हें भी इस मजमुअ़े की इब्तदा में शामिल कर दिया है। रिहाई के बाद के ये मकातीब इस मजमुअ़े के लिये दीबाचे का काम देंगे।

मौलाना को सैकड़ों ख़ुतूत लिखने और लिखवाने पड़ते हैं। और ज़ाहिर है कि इनकी नुक़ूल[6] नहीं रखी जा सकतीं। लेकिन अफ़सोस है कि उन्होंने अपने ख़ास इल्मी और अदबी मकातीब की नुक़ूल रखने की कभी कोशिश नहीं की। और इस तरह सैकड़ों मकातीब ज़ाया गये।

सन् १९४० ई० में, मैंने मौलाना से दरख़्वास्त की कि जो ख़ास मकातीब वो दोस्ताने-ख़ास को लिखा करते हैं उनकी नुक़ूल रखने की मुझे इजाज़त मिले। चुनांचे मौलाना ने इजाज़त दे दी और अब ऐसा होने लगा कि जब कभी मौलाना कोई मकतूबे-ख़ास अपने ज़ौक़ ओ कैफ़[7] में लिखते मैं पहले उसकी नक़ल कर लेता फिर डाक में डालता। नवाब साहब के नाम सन् १९४० ई०, सन् १९४१ और सन् १९४२ ई० में जिस क़दर ख़ुतूत लिखे गये सबकी नुक़ूल मैंने रख ली थी और मेरे पास मौजूद हैं। चुनांचे इसी बिना पर रिहाई के बाद मौलाना ने क़िलअ़े-अहमदनगर के मकातीब मेरे हवाले किये कि हस्बे-मामूल इनकी नुक़ूल रख लूं और असल नवाब साहब की ख़िदमत में ब-यकदफ़ा[8] भेज दूं। लेकिन मैंने जब इनका मुताला[9] किया तो ख़याल हुआ कि इन तहरीरी-

१. सवेरे उठना २. काम में लग जाना ३. वजह, प्रेरणा ४. संघठित, संबंधित ५. नक़ल का बहुवचन, प्रतिलिपि ६. अभिरुचि और आनंद में ७. एकदम ८. पाठ।

रात का महज़ निजके ख़ुतूत की शक्ल में रहना और शाया न होना उर्दू अदब की बहुत बड़ी महरूमी[1] और अरबाबे-ज़ौक़[2] की नाक़ाबिले-तलाफ़ी[3] हिरमानी[4] होगी। मौलाना उस वक़्त शिमले में थे। मैंने ब-इसरार उनसे दरख़्वास्त की कि इन मकातीब को एक मजमुये की शक्ल में शाया करने की इजाज़त दे दें। मुझे यक़ीन है कि मुल्क के तमाम अरबाबे-ज़ौक़ ओ नज़र इस वाक़ये के शुक्रगुज़ार होंगे कि मौलाना ने अशाअत की इजाज़त दे दी और इस तरह मैं इस क़ाबिल हो गया कि यह मजमुआ दीदावराने-इल्म ओ अदब[5] की ज़ियाफ़ते ज़ौक़[6] के लिए पेश करूँ।

सन् १९४२ ई० में गिरफ़्तारी से पहले मौलाना लाहौर गये थे। वहाँ इंफ़्लुयेंज़ा की शिकायत लाहक़[7] हो गई थी। उसी हालत में कलकत्ते आये और सिर्फ़ तीन दिन ठहर कर, २ अगस्त को आल इण्डिया कांग्रेस कमीटी की सदारत करने के लिए बंबई रवाना हो गये। बंबई जाते हुए रेल में उन्होंने एक मकतूब नवाब साहब के नाम लिख कर रख लिया था कि बंबई पहुँच कर मुझे दे देंगे, मैं हस्बे-मामूल उसकी नक़ल रख कर असल डाक में डाल दूँगा। लेकिन बंबई पहुँचने के बाद वो अपनी मशरूफ़ियतों[8] में ग़र्क़ हो गये और मकतूबे-सफ़र उनके अटाची केस में पड़ा रह गया। यहाँ तक कि ९ अगस्त की सुबह को वे गिरफ़्तार हो गये। चूँकि क़िलये-अहमदनगर के पहले मकतूब में उस ख़त का ज़िक्र आया है इसलिये मुनासिब मालूम हुआ कि उसे भी इब्तदा में शामिल कर दिया जाये। चुनांचे वो शामिल कर दिया गया है।

मैंने इरादा किया था कि मौलाना के उस्लूबे-निगारिश (स्टाइल) की निस्बत[9] अपने तास्सुरात[10] के इज़हार[11] की जुरअत[12] करूँगा। लेकिन जब इस इरादे को अमल में लाने के लिये तैयार हुआ तो मालूम हुआ कि ख़ामोशी के सिवा चारये-कार नहीं। क्योंकि जितना कुछ और जैसा कुछ लिखना चाहिये उसकी यहाँ गुंजाइश नहीं, और जिस क़दर लिखने की गुंजाइश है, वो इज़हारे-तास्सुरात के लिये काफ़ी नहीं। सिर्फ़ इतना इशारा कर देना चाहता हूँ कि फ्रांसीसी अदबियात में अदब की जिस नौइयत को "अदबे-आला" के नाम से ताबीर किया गया है, अगर उर्दू अदब में उसकी कोई मिसाल हमें मिल सकती है तो वो सिर्फ़ मौलाना की अदबियात हैं।

मौलाना ने अपने उस्लूबे-निगारिश के मुख़्तलिफ़ ढंग रखे हैं। क्योंकि हर मौज़ू[13] एक ख़ास तरह का उस्लूब चाहता है और उसी उस्लूब में उसका

---

१. वंचना २. सुरुचि-संपन्न लोग ३. जिसकी क्षतिपूर्ति न हो सके ४. वंचना, निराशा ५. ज्ञान और साहित्य के पारखी या द्रष्टा ६. रुचि की दावत ७. लग गई ८. व्यस्तताओं में ९. बारे में १०. अनुभूति ११. ज़ाहिर करने की १२. हिम्मत १३. विषय।

रंग उभर सकता है। दीनी[1] मबाहिस[2] के लिए जो उस्लूबे-तहरीर[3] मौज़ूं होगा, तारीख़ के लिए मौज़ूं न होगा। तारीख़ी मबाहिस जिस तर्ज़े-किताबत के मुतक़ाज़ी[4] होते हैं, ज़रूरी नहीं कि अदबी[5] निगारिशात[6] के लिए भी मौज़ूं[7] हो। आम हालत यह है कि हर शख़्स एक ख़ास तरह का उस्लूबे-तहरीर इख़्तियार कर लेता है, और फिर जो कुछ लिखता है उसी रंग में लिखता है। लेकिन मौलाना की ख़ुसूसियत[8] यह है कि उन्होंने अपने इल्म ओ ज़ौक़ के तनव्वो[9] की तरह अपना उस्लूबे-तहरीर भी मुख़्तलिफ़ क़िस्मों का रखा है। आम दीनी और इल्मी मतालिब को वो एक ख़ास तरह के उस्लूब में लिखते हैं। सहाफ़त[10] निगारी के लिये उन्होंने एक दूसरा उस्लूब इख़्तियार किया है और ख़ालिस अदबी इंशापरदाज़ी[11] के लिये इन दोनों से अलग तरीक़े-निगारिश है।

जिस ज़माने में "अलहिलाल" निकला करता था तो उसमें कभी-कभी वो ख़ालिस अदबी क़िस्म की चीज़ें भी लिखा करते थे। उन तहरीरों में उन्होंने एक ऐसा मुज्तहिदाना[12] उस्लूब इख़्तियार किया था जिसकी कोई दूसरी मिसाल लोगों के सामने मौजूद न थी। उस उस्लूब के लिये अगर कोई ताबीर[13] इख़्तियार की जा सकती है तो वो सिर्फ़ "शेरे-मंसूर" की है याने वो नस्र[14] में शायरी किया करते थे। उनकी तहरीर अज़-सर-ता-पा[15] शेर होती थी। सिर्फ़ एक चीज़ उसमें नहीं होती थी याने वज़न और इसलिये उसे नज़्म की जगह नस्र कहना पड़ता था।

इस तर्ज़े-तहरीर का एक ख़ास तरीक़ा यह था कि वो अपनी नस्र की शायरी को शोअरा[16] की नज़्म की शायरी से मख़लूत और मरबूत[17] करके तरतीब देते थे। और यह इख़्तिलात[18] और इर्तिबात[19] इस तरह वजूद में आता था कि अशआर[20] सिर्फ़ मतालिब[21] की मुनासिबत ही से नहीं आते बल्कि बजाये-ख़ुद मतालिब का एक जुज़[22] बन जाते थे। ऐसा जुज़ कि अगर उसे अलग कर दीजिये तो ख़ुद नफ़्से-मतलब[23] का एक ज़रूरी और लायनफ़क[24] जुज़ अलग हो जाये। अक्सर हालतों में मतालिब का सिलसिला इस तरह फैलता था कि पूरा मज़मून नस्र के छोटे-छोटे पैराग्राफ़ों से मुरक्कब[25] होता और हर पैराग्राफ़

१. धार्मिक २. विषय ३. लेखन-शैली ४. तक़ाज़ा करने वाले ५. साहित्यिक ६. लेखन ७. उचित ८. विशेषता ९. विभिन्नता १०. अख़बारी लेखन ११. लेखन १२. सबसे निराला १३. उपमा १४. गद्य १५. आद्योपान्त १६. कवि १७. मिला जुला कर १८. मिश्रण १९. मेलजोल २०. शेर का बहुवचन, पद्य की कड़ी २१. मतलब का बहुवचन २२. अंश २३. सार २४. अभिन्न २५. गठित।

किसी एक शेर पर ख़त्म होता। यह शेर नस्र के मतलब से ठीक उसी तरह जुड़ा और बँधा हुआ होता जिस तरह एक तरकीब बन्द का हर बंद टीप के किसी शेर से वाबस्ता[1] होता है और वो शेर बंद का एक ज़रूरी जुज़ बन जाता है।

लोग नस्र में अशआर लाते हैं तो अमूमन इस तरह लाते हैं कि किसी जुज़ई[2] मुनासिबत से कोई शेर याद आ गया और किसी ख़ास महल में दर्ज कर दिया गया। लेकिन मौलाना इस क़िस्म की तहरीरात में जो शेर दर्ज करेंगे उसकी मुनासिबत महज़ जुज़ई मुनासिबत न होगी बल्कि मज़मून का एक टुकड़ा बन जायेगी। गोया ख़ास इसी महल[3] के लिए शायर ने यह शेर कहा है, और मतलब का तक़ाज़ा पूरा करने और अधूरी बात को मुकम्मल[4] कर देने के लिए इसके बग़ैर चारा नहीं। इस तर्ज़े-तहरीर पर वही शख़्स क़ादिर[5] हो सकता है जो कामिल[6] दर्जे का शायराना फ़िक्र रखने के साथ-साथ, असातज़ा[7] के बेशुमार अशआर भी अपने हाफ़िज़े[8] में महफ़ूज़ रखता हो, और मतालिब की हर क़िस्म और हर नौइयत[9] के लिए जिस तरह के अशआर भी मतलूब[10] हों फ़ौरन हाफ़िज़े से निकाल ले सकता हो। फिर साथ ही उसका ज़ौक़ भी इस दर्जे सलीम[11] और बेदाग़ हो कि सिर्फ़ आला दर्जे के अशआर ही हाफ़िज़ा क़बूल करे और हुस्ने-इंतख़ाब[12] का मैयार[13] किसी हाल में भी दर्जे से न गिरे। इस ऐतबार से मौलाना के हाफ़िज़े का जो हाल है वो हम सबको मालूम है। क़ुदरत ने उन्हें जो ख़सायस[14] बख़्शे हैं, शायद उन सब में हाफ़िज़े की नैमते-लाज़वाल[15] सबसे बड़ी नैमत है। अरबी, फ़ारसी और उर्दू के कितने अशआर उनके हाफ़िज़े में महफ़ूज़ होंगे? यह किसी को मालूम नहीं। ग़ालिबन[16] ख़ुद उन्हें भी मालूम नहीं। लेकिन यूं ही वो क़लम उठाते हैं और मतालिब की मुनासिबतें उभरने लगती हैं, मअन उनके हाफ़िज़े के बंद किवाड़ खुलने शुरू हो जाते हैं और फिर ऐसा मालूम होता है कि हर क़िस्म और नौइयत के सैकड़ों शेर परा[17] बाँधे सामने खड़े हैं। जिस शेर की जिस जगह ज़रूरत हुई, फ़ौरन उसे निकाला और अंगूठी के नगीने की तरह मज़मून में जड़ दिया।

आम इल्मी और दीनी मबाहिस की तहरीरात में मौलाना बहुत कम अशआर लाया करते हैं। सफ़्हों के सफ़्हे लिख जायेंगे और एक शेर भी नहीं

१. जुड़ा हुआ २. आंशिक ३. मौक़े के लिए ४. पूर्ण ५. अधिकार प्राप्त ६. पूर्ण ७. उस्ताद का बहुवचन, उस्तादों ८. स्मृति ९. क़िस्म १०. आवश्यक ११. गंभीर १२. चुनाव की ख़ूबी १३. मापदंड १४. विशेषतायें १५. न घटने वाला उपहार १६. संभवतः १७. क़तार बाँधे।

आयेगा। लेकिन इस ख़ास उस्लूबे-तहरीर में वो इस कसरत के साथ अशआर से काम लेते हैं कि हर दूसरी तीसरी सतर के बाद एक शेर ज़रूर आ जाता है और मतलब के हुस्न ओ दिल-आवेज़ी[1] का एक नया पैकर[2] नुमायां कर देता है।

क़िलअ़े-अहमदनगर के अक्सर मकातीब इसी तर्ज़े-तहरीर में लिखे गये हैं। उन्होंने नस्र में शायरी की है और जिस मतलब को अदा किया है इस तरह किया है कि जिद्दते-फ़िक्र[3] नक़्श आराई[4] कर रही है और वुसअ़ते तख़य्युल[5] रंग जो रोग़न भर रही है। इस्तिहादे-फ़िक्र[6] और तजदीदे[7]-उस्लूब मौलाना की आम और हमागीर[8] ख़ुसूसियत है। क़लम और ज़बान के हर गोशे[9] में वो तर्ज़े-आम से अपनी रविश[10] अलग रखेंगे और अल्फ़ाज़ ओ तरकीब[11] से लेकर मतालिब और अदाये-मतालिब के तर्ज़ तक हर बात में तक़लीदे-आम[12] से गुरेज़ां[13] और अपने मुज्तहिदाना अंदाज़ में बेमेल और बेलचक नज़र आयेंगे। उन्होंने जिस वक़्त से क़लम हाथ में सँभाला है हमेशा पेशरौ[14] और साहबे-उस्लूब रहे हैं। कभी यह गवारा नहीं किया कि किसी दूसरे पेशरौ के नक़्शे-क़दम[15] पर चलें। चुनांचे इन मकातीब में भी उनका मुज्तहिदाना अंदाज़ हर जगह नुमायां[16] है। बग़ैर किसी एहतिमाम[17] और काविश[18] के क़लम बरदाश्ता लिखते गये हैं। लेकिन क़ुदरते-बयान है जो बेसाख़्तगी[19] में भी उभरी चली आती है और काविशे-फ़िक्र[20] है जो आमद में भी आवुर्द[21] से ज़्यादा बनती और सँवरती रहती है।

ज़राफ़त[22] है तो वो अपनी बेदाग़ लताफ़त[23] रखती है, वाक़यानिगारी[24] है तो उसकी नक़्शआराई का जवाब नहीं। फ़िक्र का पैमाना हर जगह बुलंद और नज़र का मैयार हर जगह अर्जमंद[25] है।

इन मकातीब पर नज़र डालते हुये सबसे ज़्यादा अहम चीज़ जो सामने आती है, वो मौलाना का दिमाग़ी पस मंज़र (बैकग्राउंड) है। इसी पस मंज़र

---

१. मनमोहकता २. रूप ३. सोच विचार का मनोज्ञापन ४. चित्रकारी ५. विचारों की विस्तीर्णता ६. कल्पना की चेष्टा ७. शैली की नूतनता ८. सर्वांगीण ९. कोना या ढंग १०. ढंग ११. तरकीब का बहुवचन १२. आम लोगों के अनुकरण से १३. दूर १४. अग्रदूत, अगुआ १५. पदचिन्ह १६. प्रगट १७. तैयारी १८. प्रयत्न १९. स्वतःस्फूर्त जो लिखा जाता है उसे बेसाख़्ता लेख कहते हैं। २०. कल्पना की नई-नई आविष्कृतियाँ २१. जो स्वतःस्फूर्त रचना होती है उसे आमद और बना सँवार कर लिखी हुई रचना को आवुर्द कहते हैं। आमदन याने आना और आवुर्दन याने लाना। २२. विनोद २३. सुंदरता २४. घटना वर्णन २५. महान।

पर अफ़कार भ्रो अहसासात[1] की तमाम जलवा तराज़ियों[2] ने अपनी जगह बनाई है। एक शख्स ६ अगस्त की सुबह को बिस्तर से उठा तो अचानक उसे मालूम हुआ कि वो गिरफ़्तारशुदा क़ैदी है और किसी लामालूम मुक़ाम पर ले जाया जा रहा है। फिर एक ऐसी शदीद[3] फ़ौजी निगरानी के अंदर जिसकी कोई पिछली मिसाल हिन्दुस्तान की सियासी जद्दोजहद की तारीख़ में मौजूद नहीं, क़िलये-अहमदनगर की एक इमारत में बंद कर दिया जाता है और दुनिया से तमाम अलायक़ यककलम मुनक़ता[4] हो जाते हैं। वो इस हादसे[5] के चौबीस घंटे बाद दूसरी सुबह को उठता है, और क़लम उठाकर ख़ामाफ़रसाई[6] शुरू कर देता है। फिर इसके बाद हर दूसरे तीसरे दिन हालात की तहरीक[7] ख़याला-लात में जुंबिश[8] पैदा करती रहती है और जो कुछ दिमाग़ में उभरता है बेरोक नोके-क़लम के हवाले हो जाता है। देखना यह है कि ऐसे हौसला-फ़रसा[9] हालात में उनका दिमाग़ी पस मंज़र क्या था और वक़्त के तमाम मुख़ालिफ़ाना हालात को किस नज़र और किस मुक़ाम से देख रहा था? यही दिमाग़ी पस मंज़र है जिसकी नौइयत से हर अज़ीम[10] शख़्सियत की अज़मत[11] का असल मुक़ाम दुनिया के आगे नुमायां होता है। यही कसौटी है जिस पर हर इंसानी अज़मत कसी जा सकती है, और यही मैयार है जो हर इंसान की अज़मत भो पस्ती का फ़ैसला कर देता है।

इन मकातीब में मौलाना ने खुद कोशिश की है कि अपना दिमाग़ी पस मंज़र दुनिया के आगे रख दें और इसीलिये यह ग़ैर ज़रूरी हो गया है कि इस बारे में बहस भो नज़र से काम लिया जाये। मैं सिर्फ़ मामले के इस पहलू पर अहले-नज़र[12] की तवज्जो दिलाना चाहता हूँ, खुद कुछ कहना नहीं चाहता।

गुज़श्ता जौलाई में जूं ही इन मकातीब की अशाअत का ऐलान हुआ, मुल्क के हर गोशे से तक़ाज़े होने लगे कि इनके तर्जुमों का भी सरोसामान[13] होना चाहिये। कलकत्ता, बंबई, देहली, इलाहाबाद, कानपुर और पटना के पब्लिशरों का तक़ाज़ा था कि अंग्रेज़ी, हिन्दी, गुजराती, बंगाली, तामिल वग़ैरह ज़बानों में इनके तर्जुमे की इजाज़त दे दी जाये। मैंने ये तमाम दरख्वास्तें मौलाना की ख़िदमत में पेश कर दीं, लेकिन उन्होंने तर्जुमे की इजाज़त नहीं दी। उन्होंने फ़रमाया कि चंद मकातीब के सिवा ये तमाम मकातीब एक ऐसे उस्लूब में लिखे गये हैं कि उनका किसी ज़बान में सिहते-ज़ौक़ भो मैयार के साथ तर्जुमा हो ही नहीं सकता। अगर किया जायेगा तो असल की सारी ख़ुसूसियात मिट जायेंगी।

१. चिंतन और अनुभूतियों २. रूप प्रदर्शन ३. कठोर ४. कट जाते हैं ५. घटना ६. लिखना ७. हरकतें ८. हरकत ९. साहस तोड़ने वाले १०. महान ११. महानता १२. पारखी १३. बंदोबस्त।

चुनांचे इस वक़्त तक तर्जुमे की इजाज़त किसी फ़र्म को नहीं दी गई है। मौलाना ने जिस ख़याल से तर्जुमे को रोका है मुझे यक़ीन है कि इससे हर साहबे-नज़र इत्तिफ़ाक़ करेगा। यह नस्र में शायरी है, और शायरी तर्जुमे की चीज़ नहीं होती। अलबत्ता दो-चार मकतूब जो बाज़ फ़िलसफ़ियाना और तारीख़ी मबाहिस पर लिखे गये हैं, तर्जुमा किये जा सकते हैं उन्हें मुस्तस्ना[1] कर देना चाहिये।

ये तमाम मकातीब "सदीक़े-मुकर्रम" के ख़िताब[2] से शुरू होते हैं। यह "सदीक़" तश्दीद के साथ "सिद्दीक़" नहीं है जैसा कि बाज़ अशख़ास[3] पढ़ना चाहेंगे। बल्कि बग़ैर तश्दीद के हैं। "सदाक़त" अरबी में दोस्ती को कहते हैं। "सदीक़" याने दोस्त।

११ अप्रैल सन् १६४३ ई० के मकतूब के आख़िर में मुतम्मिम इब्न नोवेरा के मर्सिये के अशआर नक़ल किये गये हैं। यह मर्सिया उसने अपने भाई मालिक की याद में लिखा था :

लक़द लामनी इन्दल क़ुबूरि अलल बुका
रफ़ीक़ि लितज़राफ़िद्दुमूअ़ इस्सवाफ़िकि
फ़क़ाल अतब्की कुल्ल क़बरिन रऐतहु
लिक़बरिन सवा बैनल लवा फ़द्दकाविकि
फ़क़ुल्तु लहु इन्नश्शजा यबअ़शुश्शजा
फ़दानि फ़हाज़ा कुल्लुहु क़बरु मालिकि

इन अशआर के मतलब का ख़ुलासा यह है :

"मेरे रफ़ीक़[4] ने जब देखा कि क़ब्रों को देखकर मेरे आंसू बहने लगते हैं तो उसने मुझे मलामत की। उसने कहा यह क्या बात है कि उस एक क़ब्र की वजह से जो ख़ास मुक़ाम पर वाक़े[5] है, तू हर क़ब्र को देखकर रोने लगता है? मैंने कहा, बात यह है कि एक ग़म का मंज़र[6] दूसरे ग़म की याद ताज़ा कर दिया करता है। लिहाज़ा मुझे रोने दे, मेरे लिये तो ये तमाम क़ब्रें मालिक की क़ब्रें बन गई हैं!"

"हिकायते बेसतून ओ कोहकन" ईरान के क़दीम आसार में एक असर "बे सतून" के नाम से मशहूर है और दास्तांसरायों ने इसे फ़रहाद कोहकन की तरफ़ मंसूब कर दिया है। मगर दर असल यह "बे सतून" नहीं है, "बिह सतून" (बहिस्तान या बाग़िस्तान) है। फ़ारसी क़दीम में "बग़" ख़ुदा या देवता को कहते हैं। याने यह मुक़ाम "ख़ुदाओं की जगह" है।

मुहम्मद अजमल ख़ां

---

१. अपवाद २. संबोधन ३. शख़्स का बहुवचन, व्यक्ति ४. मित्र ५. स्थित ६. दृश्य।

बिस्मिल्लाहिर्रहमानुर्रहीम

ग़ुबारे ख़ातिर[1]

दीबाचा[2]

मीर अज़मतउल्ला बेख़बर बिलग्रामी मौलवी ग़ुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी के मुआसिर[3] और हमवतन थे और जद्दी[4] रिश्ते से क़राबत[5] भी रखते थे। आज़ाद बिलग्रामी ने अपने तज़किरों[6] में जा-बजा उनका तर्जुमा लिखा है और सिराजुद्दीन अली खां आरज़ू और आनंदराम मुख़लिस की तहरीरात[7] में भी उनका ज़िक्र मिलता है। उन्होंने एक मुख़्तसर[8] सा रिसाला[9] "ग़ुबारे-ख़ातिर" के नाम से लिखा था। मैं यह नाम उनसे मुस्तआर[10] लेता हूँ।

मपुर्स ता च नविश्त स्त किल्के फ़ासिरे-मा
ख़ते-ग़ुबारे-मन स्त ईं ग़ुबारे-ख़ातिरे-मा[11]

यह तमाम मकातीब[12] निज के ख़ुतूत[13] थे और इस ख़याल से नहीं लिखे गये थे कि शाया[14] किये जायेंगे। लेकिन रिहाई के बाद जब मौलवी मुहम्मद अजमल खां साहब को इनका इल्म[15] हुआ तो मुसिर[16] हुये कि इन्हें एक मजमुये[17] की शक्ल में शाया कर दिया जाये। चूंकि उनकी तरह उनकी

---

१. दिल के ग़ुबार २. भूमिका ३. समकालीन ४. दादा के रिश्ते से ५. सामीप्य, रिश्तेदारी ६. कविवर्णन ७. तहरीर का बहुवचन, लेख ८. छोटा सा ९. पुस्तिका १०. उधार ११. मेरी अपूर्ण क़लम ने क्या लिखा है (यह) मत पूछ। ये मेरे दिल के ग़ुबार मेरे ग़ुबारों की रेखायें हैं। १२. मकतूब का बहुवचन, यानी लेख या चिट्ठी १३. ख़त का बहुवचन, पत्र १४. प्रकाशित करना १५. जानकारी होना १६. इसरार करना ज़िद करना १७. संग्रह।

ख़ातिर[1] भी मुझे अज़ीज़[2] है इसलिये इन मकातीब की अशाअत[3] का सरो-सामान[4] कर रहा हूँ। जिस हालत में ये क़लम बरदाश्ता[5] लिखे हुए मौजूद थे, उसी हालत में तबाअत[6] के लिए दे दिये गये हैं। नज़रे-सानी[7] का मौक़ा नहीं मिला।

नुस्ख़ये-शौक़ बशीराज़ा न गुंजद ज़िनहार
बगुज़ारीद कि ईं नुस्ख़ा मुजल्ला मानद[8]

नेशनल एयर लाइन्स
२, फ़रवरी, सन् १९४६
मा बैन[9] कराची—जोधपुर

अबुलकलाम

१. सम्मान २. प्रिय ३. प्रकाशन ४. बंदोबस्त ५. बिना सोचे लिखे ६. छपने के लिये ७. दुबारा या फिर देखने का मौक़ा ८. शौक़ की किताब की हरगिज़ जिल्दबंदी नहीं हो सकती। इस बात को दर गुज़र कर देना कि यह किताब बिखरी और अस्तव्यस्त है। ९. बीच में।

रिहाई के बाद के बाज़[1] मकातीब नवाब सद्र यारजंग के नाम

शिमला

२७ जून, सन् १९४५

अय ग़ायब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मीबीनमत अयां ओ दुआ मीफ़िरस्तमत।[2]

दिल हिकायतों[3] से लबरेज़ है मगर ज़बाने-दरमांदाये-फ़ुरसत[4] को याराये-सुख़न[5] नहीं। मोहलत[6] का मुंतज़िर[7] हूँ।

अबुलकलाम

१. कुछ २. अय कि तू नज़र से ओझल है लेकिन दिल के पास है। मैं तुझे प्रगट और साक्षात देख रहा हूँ और तेरे लिये दुआएँ भेज रहा हूँ। ३. बात, कहानी, वक्तव्य ४. फ़ुरसत की मोहताज ज़बान ५. कहने की ताब, कहने की हिम्मत या ताक़त। ६. अवकाश, फ़ुरसत ७. प्रतीक्षक।

नवाब सद्र यारजंग का मकतूब

हबीबगंज (अलीगढ़)
१, जौलाई, सन् १९४५

सदीक़े-हबीब[1] !

जिस दिन बदरे-कामिल[2] गहन से निकला था, दिल ने महसूस किया था कि नूरे-अज़मत[3] जहाँताब[4] होगा। हुआ, और किस शान से हुआ। २७ जून को पहाड़ की चोटियों का एक हंगामा एक ग्रुप की शक्ल में सामने आया। उसमें एक पैकरे-महबूब[5] भी थी। कैंची ली, मजमये-अग़यार[6] से उसे जुदा किया। देखा शीराज़ की तफ़ से सदा[7] आई :

रोशन अज़ परतवे-रूयत नज़रे नेस्त कि नेस्त
मिन्नते-ख़ाके-दरत बर-बसरे नेस्त कि नेस्त।[8]

इस ग़ज़ल का एक और शेर शायद बेमौक़ा न हो।

मसलहत नेस्त कि अज़ पर्दा बिरूँ उफ़्तद राज़
वरना दर महफ़िले-रिंदां ख़बरे नेस्त कि नेस्त।[9]

ख़ैर यह तो तरानये-शीराज़[10] था। कान लगाता हूँ तो शिमले की चोटियों से दूसरा तरानये-मुहब्बत[11] सामा-नवाज़[12] हो रहा है :

अय ग़ायब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मीबीनमत अयां ओ दुआ मीफ़िरस्तमत।

जो कान ने सुना तीसरे दिन नुक़ूशे-दिल-अफ़रोज़[13] के पर्दे पर आँखों ने देख लिया। इजाज़त[14] हो तो दूसरा मिसरा मैं भी दोहरा दूँ।

मीबीनमत अयां ओ दुआ मीफ़िरस्तमत

नियाज़कीश[15]
हबीबुर्रहमान

---

१. प्यारे दोस्त २. पूर्णिमा का चाँद ३. महानता का प्रकाश ४. जगतप्रकाशक ५. प्रीतम का रूप ६. ग़ैरों का गिरोह या समूह ७. आवाज़ ८. तेरे मुखारविंद से ऐसी कोई दृष्टि नहीं है जो प्रकाशित न हो (और) तेरे द्वार की ख़ाक या धूल का अहसान, ऐसी कोई आँख नहीं है जिस पर न हो ९. यह उचित नहीं है कि पर्दे से रहस्य बाहर हो, हम मस्तों की महफ़िल में ऐसा कोई रहस्य नहीं है जो प्रकट न हुआ हो १०. शीराज़ के शायर हाफ़िज़ की रागनी। शीराज़ ईरान का एक शहर है जहाँ हाफ़िज़ फ़ारसी के बड़े मशहूर शायर हुये हैं जिनके ये शेर हैं। ११. प्रेम की रागनी १२. कर्ण-गोचर १३. दिल को रोशन करने वाली रेखाएँ। १४. आज्ञा १५. अनुग्रहीत।

नवाब सद्र यारजंग का नामये-मंजूम[1]

मौलाना अगस्त सन् १९४५ के अवाखिर[2] में कश्मीर गये थे और गुलमर्ग में क़याम[3] फ़रमाया था। उस ज़माने में यह नामये-मंजूम पहुँचा।

हबीबगंज (अलीगढ़)
६, रमज़ान-उल-मुबारक स० हि० १३६४

मह्व - नज़्ज़ारये - गुलमुर्ग[4] निगारे दारम
कज़ ख़यालश - बदिले - ज़ार बहारे दारम
अय नसीमे - सहरी गर ब-हुज़ूरश गुज़री
अर्ज़ा कुन शौक़ कि दर जाने - फ़िगारे दारम
वर बपुरसद कि मगर शौक़े - पयामम दारद
सर फ़रूद आर ओ ज़ मन गोये कि आरे दारम[5]

दूर दस्तांरा ब नैमत याद कर्दन हिम्मत स्त
वरना हर नख़ले बपाये-ख़ुद समर मीअफ़गनद[6]

असीरे-आज़ाद[7]
हबीब

१. पद्यबद्ध पत्र २. आखिर का बहुवचन, आखिर ३. टिकाव, विश्राम ४. कश्मीर की पहाड़ी सतहे-मुर्तफ़ा (पठार) गुलमर्ग के नाम से मशहूर है यह असल में गुलमर्ग़ होगा मर्ग़ वही लफ़्ज़ है जो मर्ग़ज़ार में है। ५. गुलमर्ग़ के नज़्ज़ारों में मेरा महबूब (प्रीतम) लीन है उसकी स्मृति से इस शोक संतप्त दिल में बहार है। ओ प्रातः समीर! अगर तू उसके सामने से गुज़रे (तो) जो अनुराग मेरे घायल प्राणों में प्रीतम के लिये है उसे अर्ज़ करना। और अगर पूछे कि क्या मुझे कोई पयाम या संदेश देना चाहता है, (तो) सिर झुकाकर मेरी तरफ़ से कहना कि हां है (यानी संदेश देना चाहता है।) ६. जो दूर है, या जिन के हाथ पहुँच से दूर हैं उन्हें नैमत या उपहार देकर याद करना एक बड़ी बात है। वरना प्रत्येक पेड़ अपने पैरों पर तो फलों को खुद गिराता ही है। ७. आज़ाद का क़ैदी या बंदी।

मौलाना का मकतूबे-सिरीनगर

हाउस बोट सिरीनगर
२४, अगस्त, सन् १६४५

गहे अज़ दस्त, गाहे अज़ दिल, ओ गाहे ज़ पा मानम
ब सुरअ़त मीरवी अय उम्र ! मीतरसम कि वा मानम[1]

सदीक़े-मुकर्रम

ज़िंदगी के बाज़ार में जिंसे-मक़ासिद[2] की बहुत सी जुस्तजूयें[3] की थीं। लेकिन अब एक नई मताअ़[4] की जुस्तजू में मुब्तिला[5] हो गया हूँ। यानी अपनी खोई हुई तन्दुरुस्ती ढूंढ़ रहा हूँ। मुआलिजों[6] ने वादिये-कश्मीर[7] की गुलगश्तों[8] में सुराग़रसानी[9] का मशविरा[10] दिया था। चुनांचे[11] गुज़श्ता[12] माह के अवाख़िर में गुलमर्ग पहुँचा और तीन हफ़्ते तक मुक़ीम[13] रहा। ख़याल था कि यहाँ कोई सुराग़[14] पा सकूंगा। मगर हर चंद जुस्तजू की, मताए़-गुमगश्ता[15] का कोई सुराग़ नहीं मिला।

निकल गई है वो कोसों दियारे-हिरमां[16] से

आपको मालूम है कि यहाँ फ़ैज़ी ने कभी बारे-ऐश[17] खोला था।

हज़ार क़ाफ़िलये-शौक़ मीकशद शबगीर
कि बारे-ऐश कुशायद बख़ित्तये-कश्मीर[18]

लेकिन मेरे हिस्से में नाख़ुशी और अलालत[19] का बार[20] आया। यह बोझ जिस तरह कांधों पर उठाये आया था, उसी तरह उठाये वापस जा रहा हूँ।

---

१. कभी हाथों से, कभी दिल से और कभी पावों से त्रस्त हूँ, ओ उम्र तू तेज़ी से जा रही है ! मुझे डर है कि पिछड़ जाऊंगा। २. वांछित वस्तुयें ३. तलाश ४. पूंजी, सामग्री, यही शब्द 'माल-मत्ता' में हैं। ५. फँस जाना ६. इलाज करने वाला, वैद्य ७. कश्मीर की घाटी ८ फूलों की सैर ९. टोहना १०. परामर्श, सलाह ११. अतएव, इसलिये १२. गुज़रा हुआ १३. ठहरने वाला, स्थित १४. रात १५. खोई हुई पूंजी १६. नाउम्मीदी के देश से १७. ऐश की गठरी १८. रात का आख़िरी पहर मन की उमंगों के हज़ारों काफ़िलों को खींचता है ताकि काश्मीर के क्षेत्र में ऐश का बार या गठरी खोली जाय। १९. बीमारी २०. बोझ।

ख़ुद ज़िंदगी भी सर-ता-सर[1] एक बोझ ही है। ख़ुशी से उठायें या नाख़ुशी से, मगर जब तक बोझ सर पर पड़ा है, उठाना ही पड़ता है :

मा ज़िंदा अज़ीनेम कि आराम न गीरेम[2]।

गुलमर्ग से सिरीनगर आ गया हूँ और एक हाउस बोट में मुक़ीम[3] हूँ। कल गुलमर्ग से रवाना हो रहा था कि डाक आई और अजमलख़ां साहब ने आपका मकतूबे-मंजूम हवाले किया। कह नहीं सकता कि इस पयामे-मुहब्बत[4] को दिले-दर्दमंद[5] ने किन आँखों से पढ़ा और किन कानों से सुना। मेरा और आपका मामला तो वो हो गया है जो ग़ालिब ने कहा था :

चूं बा तूई मआमला बर ख़ेश मिन्नत स्त
अज़ शिकवये-तो शुक्रगुज़ारे-ख़ुद एम मा।[6]

आपने अपने तीन शेरों का पयामे-दिलनवाज़[7] नहीं भेजा है—लुत्फ़ ओ इनायत[8] का एक पूरा दफ़्तर खोल दिया है :

क़लीलुन मिन्क यक फ़ीनी व लाकिन
क़लीलुक लायुक लुलहु क़लीलु[9]

इन सुतूर[10] को आयंदा ख़ामाफ़रसाइयों[11] की तमहीद तसव्वुर कीजिये। रिहाई के बाद जो कहानी सुनानी थी वो अभी तक नोके-क़लम[12] से आश्ना[13] न हो सकी। वस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातहु।[14]

अबुलकलाम

१. अथ से इति तक, सरासर २. हम इसीलिये ज़िंदा हैं कि आराम नहीं करते ३. ठहरा ४. प्रेम पाती ५. दुखी दिल ६. जब मामला तुझ जैसे से है तो मैं ख़ुद का कृतज्ञ हूँ। तेरी शिकायतों से मैं ख़ुद अपना शुक्रगुज़ार हूँ। ७. दिल ख़ुश करने वाला संदेश ८. मेहरबानी ९. कवि अपनी प्रेमिका से कहता है कि—तेरी तरफ़ से कुछ थोड़ा सा भी मेरे लिये काफ़ी है। लेकिन तेरी तरफ़ से थोड़े को भी थोड़ा नहीं कहा जायगा १०. सतर का बहुवचन यानी लाइन ११. लिखना १२. क़लम की नोक १३. परिचित १४. सलाम हो आप पर ईश्वर की दया आप पर हो और उसकी बरकतें हों।

मकतूबे-नसीमबाग़

नसीमबाग़-सिरीनगर
३, सितंबर, सन् १९४५

> अज़ मा मपुर्स दर्दे-दिले-मा, कि यक ज़मां
> ख़ुदरा बहीला पेशे-तू ख़ामोश कर्दा ऐम ।[1]

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुबह चार बजे का जांफ़िज़ा[2] वक़्त है। हाउस बोट में मुक़ीम हूँ। दहनी तरफ़ झील की वुसअत[3] शालामार और निशात बाग़ तक फैली हुई है। बाईं तरफ़ नसीमबाग़ के चुनारों की क़तारें दूर तक चली गई हैं। चाय पी रहा हूँ और आपकी याद ताज़ा कर रहा हूँ ।

> गरचे दूरेम, बयादे-तू क़दह मीनोशेम
> बुअ़्दे-मंज़िल न बुवद दर सफ़रे-रूहानी ।[4]

गिरफ़्तारी से पहले आख़िरी ख़त जो आपके नाम लिख सका था, वह ३, अगस्त सन् १९४२ की सुबह का था । कलकत्ते से बम्बई जा रहा था । रेल में ख़त लिख कर रख लिया कि बंबई पहुँच कर अजमल ख़ां साहब के हवाले करूँगा। वो नक़ल रख कर आपको भेज देंगे। आपको याद होगा कि उन्होंने ख़ुतूत की नुक़ूल[5] रखने का इसरार किया था। और मैंने यह तरीक़ा मंज़ूर कर लिया था। लेकिन बंबई पहुँचते ही कामों के हुजूम में इस तरह खोया गया कि अजमल ख़ां साहब को ख़त देना भूल गया। ९ अगस्त की सुबह को जब मुझे गिरफ़्तार करके अहमदनगर ले जा रहे थे तो बाज़ काग़ज़ात रखने के लिए राह में अटैचीकेस खोला और यकायक वो ख़त सामने आ गया। अब दुनिया से तमाम इलाक़े[6] मुनक़ता[7] हो चुके थे। मुमकिन न था कि कोई ख़त डाक में डाला जा सके । मैंने उसे अटैचीकेस से निकालकर मसविदात[8] की फ़ाइल में रख दिया और फ़ाइल को संदूक में बंद कर दिया।

दो बजे हम अहमदनगर पहुँचे और पंद्रह मिनट के बाद क़िले के अंदर

---

१. मुझसे मेरे दिल का दर्द मत पूछ, क्योंकि एक ज़माना हो गया मैंने किसी बहाने से ख़ुद को तेरे सामने ख़ामोश कर रखा है २. दिल ख़ुश करने वाला ३. विस्तार ४. यद्यपि मैं दूर हूँ लेकिन तेरी याद के साथ प्याला पी रहा हूँ (और) रूहानी सफ़र में मंज़िल की दूरी नहीं हुआ करती ५. नक़ल का बहुवचन। ६. सम्बंध ७. कट चुके थे ८. मसौदों की।

महबूस[1] थे। अब उस दुनिया में जो क़िले के बाहर थी और इस दुनिया में जो क़िले के अंदर थी, बरसों की मसाफ़त हायल हो गई।

कैफ़ल वुसुल इला सुआदिन, वदूनहा
क़ुललुलजिबालि व बैनहुन्न हुतुफ़ु।[2]

दूसरे दिन यानी १०, अगस्त को हस्बे-मामूल सुबह तीन बजे उठा। चाय का सामान जो सफ़र में साथ रहता है, वहाँ भी सामान के साथ आ गया था। मैंने चाय दम दी, फ़िंजान[3] सामने रखा और अपने ख़यालात में डूब गया। ख़यालात मुख़्तलिफ़ मैदानों में भटकने लगे थे। अचानक वो ख़त जो ३, अगस्त को रेल में लिखा था और काग़ज़ात में पड़ा था, याद आ गया। बेइख़्तियार[4] जी चाहा कि कुछ देर आपकी मुख़ातिबत[5] में बसर करूँ[6], और आप सुन रहे हों या न सुन रहे हों, मगर रूये-सुख़न[6] आप ही की तरफ़ रहे। चुनांचे उस आलम में एक मकतूब क़लमबंद हो गया। और उसके बाद हर दूसरे-तीसरे दिन मकतूबात क़लमबंद होते रहे। आगे चलकर बाज़ दीगर अहबाब[7] ओ अग़िज़्ज़ा[8] की याद भी सामने आई और उनकी मुख़ातिबत में भी गाह गाह[9] तबये-वामांदाये-हाल[10] दराज़नफ़सी[11] करती रही। क़ैदख़ाने के बाहर की दुनिया से अब सारे रिश्ते कट चुके थे, और मुस्तक़बिल[12] परदये-ग़ैब में[13] मस्तूर[14] था। कुछ मालूम न था ये मकतूबात कभी मकतूब इलैहिम[15] तक पहुँच भी सकेंगे या नहीं। ताहम ज़ौक़े-मुख़ातिबत की तलबगारियाँ कुछ इस तरह दिले-दर्दमंद[16] पर छा गई थीं कि क़लम उठा लेता था तो फिर रखने को जी नहीं चाहता था। लोगों ने नामाबरी का काम कभी क़ासिद से लिया, कभी बाले-कबूतर से। मेरे हिस्से में अन्क़ा[17] आया :

ईं रस्मो राहे-ताज़ा ज़ हिरमाने-अहदे-मा स्त
अन्क़ा बरोज़गार कसे नामाबर न बूद।[18]

---

१. क़ैद २. प्रेमिका का नाम सुआद है। अक्सर अरबी के कवि प्रेमिका को इसी नाम से संबोधित करते हैं। सुआद तक पहुँचा कैसे जाय, क्योंकि उस तक पहुँचने के पहले पहाड़ों की चोटियाँ हैं, और इन चोटियों के बीच में मौतें हैं। ३. शीशे की प्याली ४. बरबस ५. बातचीत ६. बात का रुख़ ७. हबीब का बहुवचन, दोस्त ८. अज़ीज़ का बहुवचन, प्रिय बंधु ९. कभी-कभी १०. परिस्थितियों से परेशान प्रकृति ११. बात को तूल देना १२. भविष्य १३. अदृश्य पर्दा १४. छिपा १५. जिसे पत्र लिखा जाय १६. दर्दमंद दिल १७. एक काल्पनिक पक्षी, इसका लाक्षणिक अर्थ यह भी है कि वस्तु अप्राप्य और अनोखी है १८. यह नई रीत मेरे ज़माने की नाउम्मीदी से है (वरना) अन्क़ा दुनिया में किसी का पत्रवाहक नहीं हुआ है।

१०, अगस्त सन् १९४२ से मई सन् १९४३ तक इन मकतूबात की निगा-रिश का सिलसिला जारी रहा। लेकिन उसके बाद रुक गया। क्योंकि ९, अप्रैल १९४३ के हादिसे[1] के बाद तबग्रे-दरमांदाये-हाल[2] भी रुक गई थी और अपनी दरमांदगियों[3] में गुम थी। अगरचे इसके बाद भी बाज़ मुसन्निफ़ात[4] की तस-वीद[5] और तरतीब का काम बदस्तूर जारी रहा, और क़िलग्रे-अहमदनगर की और तमाम मामूलात भी बग़ैर किसी तग़य्युर[6] के जारी रहीं, ताहम यह हक़ीक़ते-हाल छिपाना नहीं चाहता कि क़रार और सुकून की यह जो कुछ नुमाइश थी जिस्म ओ सूरत[7] की थी — क़ल्ब ओ बातिन[8] की न थी। जिस्म को मैंने हिलने से बचा लिया था — मगर दिल को नहीं बचा सका था :

दिले-दीवानये दारम कि दर सहरा स्त पिंदारी[9]

इसके बाद भी गाह गाह हालात की तहरीक[10] काम करती रही और रिश्तये-फ़िक्र की गिरहें खुलती रहीं। मगर अब सिलसिलये-किताबत[11] की वो तेज़ रफ़्तारी मफ़क़ूद[12] हो चुकी थी जिसने अवायल[13] हाल में तबीयत का साथ दिया था। अप्रैल सन् १९४५ में जब अहमदनगर से बांकुड़ा में क़ैद तबदील कर दी गई तो तबीयत की आमादगियों[14] ने आखिरी जवाब दे दिया। अब सिर्फ़ बाज़ मुसन्निफ़ात की तकमील[15] का काम जारी रखा जा सका। और किसी तहरीर ओ तसवीद के लिए तबीयत मुस्तैद न हुई। आखिरी मकतूब जो बाज़ सियासी मसायल की निस्बत एक अज़ीज़ के नाम से क़लमबंद हुआ है, ३ मार्च सन् १९४५ का है। इस मकतूब पर यह दास्ताने-बेसतून ओ कोहकन खत्म हो जाती है। अगरचे ज़िंदगी की दास्तान अभी तक खत्म नहीं हुई है :

शम्मये अज़ दास्ताने-इश्क़े-शोरअंगेज़-मा स्त
ईं हिकायतहा कि अज़ फ़रहाद ओ शीरीं कर्दा अंद[16]

ग़ौर कीजिये तो इंसान की ज़िंदगी और उसके अहसासात[17] का भी कुछ अजीब हाल है। तीन बरस की मुद्दत हो या तीन दिन की, मगर जब गुज़रने पर आती है तो गुज़र ही जाती है। गुज़रने से पहले सोचिये तो हैरानी होती

---

१. दुर्घटना २. परिस्थितियों से लाचार प्रकृति ३. परेशानियों ४. लेख ५. लिखना ६. परिवर्तन ७. शरीर और बाहर की ८. दिल और अंतर ९. मेरा दिल दीवाना है ताकि यह मालूम हो कि जंगल में है १०. हरकत ११. लिखना १२. खत्म होना १३. प्रारंभ में १४. तत्परता १५. पूर्ण करना १६. ये कहानियाँ जो शीरीं और फ़रहाद की रची गई हैं (दर असल) मेरे शोर अंगेज़ इश्क़ की कहानियों का कण भर है १७. अनुभूतियाँ।

है कि यह पहाड़ सी मुद्दत क्यों कर कटेगी ? गुज़रने के बाद सोचिये तो ताज्जुब होता है कि जो कुछ गुज़र चुका वो चंद लमहों से ज़्यादा न था।

रिहाई के बाद जब कांग्रेस वर्किंग कमीटी की सदारत के लिये २१ जून को कलकत्ते से बंबई आया और उसी मकान और उसी कमरे में ठहरा जहाँ तीन बरस पहले अगस्त १९४२ में ठहरा था, तो यक़ीन कीजिये, ऐसा महसूस होने लगा था जैसे ७ अगस्त और उसके बाद का सारा माजरा कल की बात है—और यह पूरा ज़माना एक सुबह शाम से ज़्यादा न था। हैरान था कि जो कुछ गुज़र चुका वो ख्वाब था, या जो कुछ गुज़र रहा है यह ख्वाब है।

हैं ख्वाब में हनूज़ जो जागे हैं ख्वाब में !

१५ जून को जब बांकुड़ा में रिहा हुआ तो तमाम मकतूबात निकाले और एक फ़ाइल में बतरतीबे-तारीख़ जमा कर दिये। ख़याल था कि उन्हें हस्बे-मामूल[1] नक़ल करने के लिए दे दूंगा और फिर असल आपकी ख़िदमत में भेज दूंगा। लेकिन जब मौलवी अजमल ख़ां साहब को इनकी मौजूदगी का इल्म हुआ तो वो बहुत मुसिर[2] हुये कि इन्हें बिला ताख़ीर[3] अशाअत[4] के लिये दे देना चाहिये। चुनांचे एक ख़ुशनवीश को शिमले में बुलाया गया और पूरा मजमूआ किताबत के लिए दे दिया गया। अब किताबत हो रही है और उम्मीद है कि अनक़रीब तबाअत[5] के लिये प्रेस के हवाले कर दिया जायगा। अब मैं उन मकतूबात को क़लमी मकतूबात की सूरत में नहीं भेजूंगा। मतबूआ[6] मजमूए की सूरत में पेश करूँगा।

शिमले में अख़बार मदीना बिजनौर के एडीटर साहब आये थे। उन्होंने मौलवी अजमल ख़ां साहब से इस सिलसिले के पहले मकतूब की नक़ल ले ली थी। वो अख़बारात में शाया हो गया है। शायद आपकी नज़र से गुज़रा हो। "सदीक़े-मुकर्रम" के तख़ातुब[7] से आप समझ गये होंगे कि रूये-सुख़न आप ही की तरफ़ था :

चश्म सूये-फ़लक ओ रूये-सुख़न सूये-तू बूद।[8]

मकतूबात के दो हिस्से कर दिये हैं—ग़ैर सियासी और सियासी। यह मजमूआ सिर्फ़ ग़ैर सियासी मकातीब पर मुश्तमिल[9] है। इसके तमाम मकातीब बिला इस्तस्ना[10] आपके नाम लिखे गये हैं।

१. यथारीति २. आग्रह करना ३. देर ४. प्रकाशन ५. छपने के लिये ६. छपा हुआ, मुद्रित ७. संबोधन ८. आँख आसमान की तरफ़ और बात का रुख़ तेरी तरफ़ था। ९. का बना है १०. अपवाद।

परसों देहली का क़स्द[1] है। चूंकि ग्रमरीकन फ़ौज के जनरल मुक़ीम देहली ने अज़ राहे-इनायत[2] अपने ख़ास हवाई जहाज़ के यहाँ भेजने का इंत-ज़ाम कर दिया है, इसलिये मोटर कार के तकलीफ़देह सफ़र से बच जाऊँगा और ढाई घंटे में देहली पहुँच जाऊँगा। वहाँ ईद की नमाज़ पढ़कर बंबई के लिये रवाना होना है। १० से २४ तक बंबई में क़याम रहेगा।

अबुलकलाम

१. इरादा २. कृपा करके।

३, अगस्त सन् १६४२ का मकतूबे-सफ़र

जो ६, अगस्त की गिरफ़्तारी की वजह से भेजा न जा सका और जिसकी तरफ़ अहमदनगर के पहले मकतूब में इशारा किया गया है।

बंबई मेल (बराहे नागपुर)
३, अगस्त सन् १६४२

सदीक़े-मुकर्रम,

देहली और लाहौर में इंफ़्लुएँज़ा की शिद्दत ने बहुत ख़स्ता कर दिया था। अभी तक उसका असर बाक़ी है। सर की गरानी[1] किसी तरह कम होने पर नहीं आती। हैरान हूँ इस वबाले-दोश[2] से क्यूंकर सुबकदोश[3] हूँ ? देखिये वबाले-दोश की तरकीब ने ग़ालिब की याद ताज़ा कर दी।

शोरीदगी[4] के हाथ से सर है वबाले-दोश
सहरा में अय ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं।

२८, जौलाई को इस वबाल के साथ कलकत्ते वापस हुआ था। चार दिन भी नहीं गुज़रे कि कल २, अगस्त को बंबई के लिये निकलना पड़ा। जो वबाल साथ लाया था अब फिर अपने साथ वापस ले जा रहा हूँ :

रौ में है रख़्शे-उम्र[5] कहाँ देखिये थमे
ने हाथ बाग पर है, न पा है रकाब में।

मगर देखिये सुबह चार बजे के वक़्ते-गिरांमाया[6] की करिश्मा साज़ियों का भी क्या हाल है ? क़याम की हालत हो या सफ़र की, नाख़ुशी की कुलफ़त[7] हों या दिल आशोबी[8] की काहिशें[9], जिस्म की नातवानियाँ[10] हों या दिल ओ दिमाग़ की अफ़सुर्दगियाँ[11], कोई हालत हो लेकिन इस वक़्त की मसीहाइयाँ[12], उफ़्तादगाने-बिस्तरे-अलमसे[13] कभी तग़ाफ़ुल[14] नहीं कर सकतीं :

फ़ैज़े अजबे याफ़्तम अज सुबह बबीनेद
ईं जादये-रोशन रहे-मयख़ाना न बाशद ![15]

१. भारीपन २. कंधों के बोझ से ३. हल्का ४. परेशानी ५. उम्र का घोड़ा ६. अनमोल ७. रंज ८. परेशानी ९. ह्रास १०. कमज़ोरी ११. ठंडापन १२. मसीहा का काम याने जीवनदान देने का गुण १३. पीड़ा के बिस्तर पर पड़े हुये लोग १४. ग़फ़लत, प्रमाद १५. सुबह से मुझे एक अजीब उपहार मिला है, देखो कि यह प्रकाशित रास्ता मयख़ाने का रास्ता तो नहीं है !

मैं एक कूपे में सफ़र कर रहा हूँ। इसमें चार खिड़कियाँ हैं—दो बंद थीं दो खुली थीं। मैंने सुबह उठते ही दो बंद भी खोल दीं। अब रेल की रफ़्तार जितनी गरम होती जाती है उतनी ही हवा के झोंको की खुनकी भी बढ़ती जाती है। जिस बिस्तरे-कर्ब[1] पर नाख़ुशी की कुलफ़तों[2] ने गिरा दिया था उसी पर नसीमे—सुबहगाही[3] की चारा-फ़रमाइयों[4] ने अब उठा के बिठा दिया है। शायद किसी ऐसी रात की सुबह होगी जब ख्वाजये-शीराज़ की ज़ुबान से बेइख़्तियार निकल गया था।

ख़ुशश बादा नसीमे - सुबहगाही
कि दर्दे-शबनशीनांरा दवा कर्द।[5]

ट्रेन आजकल के मामूल के मुताबिक बेवक़्त जा रही है। जिस मंज़िल से इस वक़्त तक गुज़र जाना था, अभी तक उसका कोई सुराग़ दिखाई नहीं देता। सोचता हूँ तो इस मुआमलये-ख़ास में वक़्त के मुआमलये-आम की पूरी तसवीर नुमायाँ[6] हो रही है :

कस नमीगोयदम अज़ मंज़िले—आख़िर ख़बरे
सद बयाबां बगुज़श्त ओ दिगरे दर पेश स्त।[7]

रात एक ऐसी हालत में कटी जिसे न तो इज़्तराब[8] से ताबीर[9] कर सकता हूँ, न सुकून[10] से। आँख लग जाती थी तो सुकून था, खुल जाती थी तो इज़्तराब था। गोया सारी रात दो मुत्तज़ाद[11] ख्वाबों के देखने में बसर हो गई। एक तामीर[12] की नक़्श आराई[13] करता था, दूसरा तख़रीब[14] की बरहमज़नी।[15]

बेदारिये-मयाने-दो ख्वाब स्त ज़िंदगी
गर्दे-तख़य्युले-दो सुराब स्त ज़िंदगी।
अज़ लतमये-दो मौज हुबाबे दमीदा अस्त
याने तिलस्मे-नक़्श बर आब स्त ज़िंदगी।[16]

---

१. दुख का बिस्तर २. प्रातः समीर ३. इलाज ४. यहाँ "नाख़ुशी" से महज़ ख़ुशी का नकारात्मक अर्थ नहीं है बल्कि "नाख़ुशी" का अर्थ लिया गया है। फ़ारसी में बीमारी को नाख़ुशी कहते हैं। ५. प्रातः समीर भी क्या खूब है कि रात के सोये हुओं के दर्द का इलाज करती है। ६. प्रगट ७. कोई मुझे आख़िरी मंज़िल की ख़बर नहीं देता। सौ जंगल गुज़र चुके हैं और दूसरे सामने हैं। ८. बेचैनी ९. बयान करना १०. शांति ११. भिन्न १२. निर्माण १३. सजावट १४. विनाश १५. तोड़फोड़ १६. ज़िंदगी दो सपनों के बीच का जागना है, (या) दो ख़याली मृगमरीचिकाओं की गर्द है। दो लहरों के थपेड़ों से एक बुलबुला पैदा हुआ है याने कि ज़िंदगी पानी पर एक नक़्श का तिलस्म है।

तीन बजकर चंद मिनट गुज़रे थे कि आँख खुल गई। सुबह की चाय के लिये सफ़र में यह मामूल रहता है कि रात को अब्दुल्ला स्पिरिट का चूल्हा और पानी की केतली, पानी बमिक़दारे-मतलूब से भरी हुई, टेबल पर रख देता है। चायदानी उसके पहलू में जगह पाती है कि बहुक्म "बज़अुश्शै फ़ी महल्लिहि[१]" यही उसका महल्ले-सही होना चाहिये। मगर फ़िंजान और शकरदानी के लिये उसका क़ुर्ब[२] ज़रूरी न हुआ कि "बज़अुश्शै फ़ी ग़ैरे महल्लिहि[४]" में दाखिल हो जाता। अगर सुबह तीन बजे से चार बजे के अंदर कोई स्टेशन आ जाता है तो अक्सर हालतों में अब्दुल्ला आकर चाय दम दे देता है। नहीं आया तो फिर खुद मुझे ही अपने दस्ते-शौक़ की काम जोयाना[५] सरगर्मियाँ काम में लानी पड़ती हैं। "अक्सर हालतों" की क़ैद इसलिये लगानी पड़ी कि तमाम कुल्लियों की तरह यह कुल्लिया भी मुस्तस्नियात[६] से खाली नहीं है। बाज़ हालतों में गाड़ी स्टेशन पर रुक भी जाती है मगर अब्दुल्ला की सूरत नज़र नहीं आती। फिर जब नज़र नहीं आती है तो उसकी माज़रतें[७] मेरी फ़िक्रे-काविश[८] आश्ना के लिये एक दूसरा ही मसला पैदा कर देती है। मालूम होता है कि नसीमे-सुबहगाही का एक ही अमल दो मुख्तलिफ़ तबीयतों के लिये दो मुत्तज़ाद नतीजों का बाअ़स हो जाता है। उसकी आमद मुझे बेदार[९] कर देती है, अब्दुल्ला को और ज्यादा सुला देती है। इलार्म की टाइमपीस भी उसके सिरहाने रहने लगी, फिर भी नतायज का औसत तक़रीबन यकसां ही रहा। मालूम नहीं, आप इस इशकाल का हल क्या तजवीज़ करेंगे। मगर मुझे शेख शीराज़ का बतलाया हुआ हल मिल गया है और इस पर मुतमयिन[१०] हो चुका हूँ:

बारां कि दर लताफ़ते-तबअश खिलाफ़ नेस्त
दर बाग़ लाला रोयद ओ दर शोर-बूम खस।[११]

बहर हाल चाय का सामान हस्बे-मामूल मुरत्तब[१२] और आमादा था। नहीं मालूम आज स्टेशन कब आये? और आये भी तो इसका इत्मीनान क्योंकर हो कि अब्दुल्ला की आमद का क़ायदये-कुल्लिया आज ही बहालते इस्तस्ना नमूदार न होगा? मैंने दियासलाई उठाई और चूल्हा रोशन कर दिया। अब चाय पी रहा हूँ और आपकी याद ताज़ा कर रहा हूँ। मक़सूद

---

१. वस्तु को उसके ठीक स्थान पर रखना चाहिये २. सामीप्य ४. वस्तु को अनुचित स्थान पर रखना ५. काम चाहने वाली ६. अपवाद ७. बहाने, हीले ८. चिंतनशील वृत्ति ९. जाग्रत १०. संतुष्ट ११. बारिश कि जिसकी प्रकृति के लतीफ़ या सुन्दर होने में किसी को शंका नहीं है, बाग़ में गुले-लाला उगाती है और ऊसर ज़मीन में घास-फूस १२. तरतीब से सजा हुआ।

रहा हूँ। मक़सूद इस तमाम दराज़-नफ़सी से इसके सिवा कुछ नहीं कि मुख़ातिबत के लिए तक़रीबे-सुख़न[1] हाथ आये।

नफ़से बयादे-तू मीज़नम, च अिबारत ओ च मानियम[2]

चाय बहुत लतीफ़ है। चीन की बहतरीन क़िस्मों में से है। रंग इस क़दर हलका कि वाहमा[3] पर उसकी हस्ती मुश्तबा[4] हो जाये। गोया अबूनवास वाली बात हुई कि

रक़क़ज़्ज़ुजाजु व रक़्क़तिलख़मरु
फ़तशा बहा फ़तशा कललअम्रु[5]

कैफ़[6] इस क़दर तुंद[7] कि बिला मुबालग़ा उसका हर फ़िजान क़ाग्रानी के रतले-गरां[8] की याद ताज़ा कर दे :

साक़ी बिदह रत्ले-गरां जां मय कि बहक़ां परवरद[9]

शायद आपको मालूम नहीं कि चाय के बाब में मेरे बाज़ इख़्तयारात[10] हैं। मैंने चाय की लताफ़त और शीरीनी को तंबाकू की तुंदी और तल्ख़ी से तरकीब देकर एक कैफ़े-मुरक्कब[11] पैदा करने की कोशिश की है। मैं चाय के पहले घूंट के साथ ही मुत्तसिलन[12] एक सिगरेट भी सुलगा लिया करता हूँ। फिर इस तरकीबे-ख़ास का नक़्शे-अमल यूं जमाता हूँ कि थोड़े-थोड़े वक़्फ़े[13] के बाद चाय का एक घूंट लूंगा और मुत्तसिलन सिगरेट का भी एक कश लेता रहूँगा। अिल्मी-इस्तलाह में इस सूरते-हाल को "अला सबीलित्तवाली व अत्तआक़ुब[14]" कहिये। इस तरह इस सिलसिलये-अमल की हर कड़ी चाय के एक घूंट और सिगरेट के एक कश के बाहमी[15] इम्तज़ाज[16] से बतदरीज[17] ढलती जाती है और सिलसिलये-कार[18] दराज़ होता रहता है। मिक़दार के हुस्ने-तनासुब[19] का अिज़बात[20] मुलाहज़ा हो कि इधर

१. बात सुननेवाला क़रीब हो। २. हर साँस तेरी याद में लेता हूँ क्या इबारत हो या मानी यानी चाहे शब्द हो चाहे अर्थ ३. विचार ४. शक ५. शीशा जिसमें कि शराब है वह भी बहुत पारदर्शी है और शराब भी बहुत तरल और बिल्लौरी है। दोनों एक दूसरे के अनुरूप हैं। इसलिये मामला मुश्किल है कि किसे शराब कहें और किसे शीशा। ६. नशा ७. तेज़ ८. शराब का बड़ा पैमाना ९. साक़ी वह शराब का बड़ा पैमाना दे जो शराब गाँव के रहनेवाले ने बनाई है इस शेर का दूसरा मिसरा है—"शादी दिहद, ग़म बशिकनद, लज्ज़त दिहद जां परवरद।" मतलब यह कि वह शराब आनंद देती है, दुख दूर करती है मज़ा देती है और प्राणों का पोषण करती है। १०. आदतें ११. मिश्रित नशा १२. साथ लगे हुए १३. अंतर १४. एक के बाद एक लगातार करते रहना १५. आपसी १६. मेल १७. श्रेणीबद्ध १८. काम का सिलसिला १९. सुमेल २०. ढंग।

फ़िंजान आखिरी जुरए[1] से खाली हुआ, उधर तंबाकूये-आतिशज़दा ने सिगरेट के आखिरी खत्ते-कशीद[2] तक पहुँचकर दम लिया। क्या कहूँ इन दो अजजाये[3] तुंद ओ लतीफ़ की आमेज़िश[4] से कैफ़ ओ सुरूर[5] का कैसा मौतदिल मिज़ाज तरकीब-पज़ीर[6] हो गया है—जी चाहता है फ़ैज़ी के अल्फ़ाज़ मुस्तआर लूँ :

ऐतदाले-मआनी अज़ मन पुर्स
कि मिज़ाजे-सुखन सिनाख्ता अम।[7]

आप कहेंगे चाय की आदत बजाये-खुद एक ख़िल्लत थी, इस पर मज़ीद[8] ख़िल्लतहाये-नाफ़रजाम[9] का इज़ाफ़ा क्यों किया जाये? इस तरह के मुआमलात में इम्तज़ाज[10] ओ तरकीब का तरीक़ा काम में लाना, ख़िल्लतों पर ख़िल्लतें बढ़ाना गोया हिकायते बादा ओ तिरयाक[11] को ताज़ा करना है। मैं तस्लीम करूँगा कि यह तमाम खुदसाख्ता आदतें बिला शुबहा ज़िंदगी की ग़लतियों में दाखिल हैं। लेकिन क्या कहूँ, जब कभी मुआमले के इस पहलू पर ग़ौर किया, तबीयत इस पर मुतमयिन न हो सकी कि ज़िंदगी को ग़लतियों से यक सर मासूम बना दिया जाये। ऐसा मालूम होता है कि इस रोज़गारे-खराब[12] में ज़िंदगी को ज़िंदगी बनाये रखने के लिये कुछ न कुछ ग़लतियाँ भी ज़रूर करनी चाहियें।

पीरे-मा गुफ़्त ख़ता बर क़लमे-सना न रफ़्त
आफ़रीं बर नज़रे-पाक ख़ता पोशिश बाद।[13]

ग़ौर कीजिये वो ज़िंदगी ही क्या हुई जिसके दामने-खुश्क को कोई ग़लती तर न कर सके? वो चाल ही क्या जो लड़खड़ाहट से यकसर मासूम हो?

तू ओ क़तए-मनाज़िलहा, मन ओ यक लग़ज़िशे-पाये।[14]

और फिर अगर ग़ौर ओ फ़िक्र का एक क़दम और आगे बढ़ाइये तो सारा मुआमला बिल आखिर वहीं जाकर खत्म हो जायेगा जहां कभी आरिफ़े-शीराज़ ने उसे देखा था :

१. घूंट २. आखिरी हद ३. घटक ४. मिश्रण ५. आनंद ६. मिल गया है ७. अर्थ के उतार चढ़ाव मुझसे पूछो कि वाणी की प्रकृति को मैंने अच्छी तरह से पहचाना है। ८. विशेष ९. बुरी, खराब १०. आपस में मिला कर बढ़ाना ११. शराब और अफ़ीम खाने की बात १२. खराब दुनिया १३. मेरे पीर ने बताया कि सृष्टिकर्ता की क़लम से कोई ग़लती नहीं हुई; उस पाक-नज़र पर जो कि ग़लतियों को ढक देती है आफ़रीन हो १४. तू तो मंज़िलों की मंज़िलें पार कर रहा है और मैं पैर की एक लड़खड़ाहट लिये हूँ।

क्या कि रौनक़े-ईं कारख़ाना कम न शवद
ब ज़ोहदे-हम चु तुई या ब फ़िस्क़े हम चु मनी।[1]

और अगर पूछिये कि फिर कामरानिये-अमल[2] का मैयार क्या हुआ अगर ये आलूदगियाँ[3] राह में मुख़िल[4] न समझी गईं? तो इसका जवाब वही है जो उरफ़ाये तरीक़[5] ने हमेशा दिया है :

तर्क-हमा गीर ओ आश्नाये-हमा बाश ।[6]

याने तर्क ओ अख़्तियार दोनों का नक़्शे-अमल इस तरह एक साथ बिठाइये कि आलूदगियाँ दामन तर करें मगर दामन पकड़ न सकें। इस राह में काँटों का दामन से उलझना मुख़िल नहीं होता, दामनगीर[7] होना मुख़िल होता है। कुछ ज़रूरी नहीं कि आप इस डर से हमेशा अपना दामन समेटे रहें कि कहीं भीग न जाये। भीगता है तो भीगने दीजिये। लेकिन आपके दस्त ओ बाज़ू में यह ताक़त ज़रूर होनी चाहिये कि जब चाहा इस तरह निचोड़ के रख दिया कि आलूदगी की एक बूंद भी बाक़ी न रही :

तर दामनी पै शेख़ हमारी न जाइयो
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वज़ू करें

यहाँ कामरानी[8] सूद ओ ज़ियां की काविश[9] में नहीं है बल्कि सूद ओ ज़ियां[10] से आसूदा[11] हाल रहने में है। न तो तरदामनी की गरानी महसूस कीजिये न ख़ुश्कदामनी का सुबकसरी[12], न आलूदा दामनी पर परेशां हाली हो, न पाक दामनी पर सरगरानी :

हम समंदर बाश ओ हम माही कि दर अक़लीमे-इश्क़
रूये-दरिया सलसबील ओ क़अरे-दरिया आतिश स्त ।[13]

आपको एक वाक़या सुनाऊँ। शायद रिश्तये-सुख़न की एक गिरह इससे खुल जाय। सन् १९२१ में जब मुझे गिरफ़्तार किया गया तो मुझे मालूम था

---

१. आ कि इस कारख़ाने की रौनक़ कम नहीं होगी, तुझ जैसे के त्याग से और मुझ जैसे की बदकारी से २. कर्म की सफलता ३. मैल ४. ख़लल डालने वाली ५. मार्ग वेत्ता ६. सर्व-त्यागी भी हो और सर्व-भोगी भी हो। ७. दामन पकड़ कर बैठ जाना। ८. सफलता ९. खोज, जुस्तजू १०. लाभ हानि ११. बेफ़िक्र १२. हलकापन १३. समंदर एक तरह का काल्पनिक चूहा होता है जो आग में रहता है यहाँ शेर का मतलब है कि समंदर और मछली दोनों ही हो क्योंकि प्रेम की दुनिया में दरिया की सतह पर तो सलसबील याने स्वर्गीय नहर है और दरिया की गहराइयों में आग है। जिसे बड़वाग्नि कहते हैं।

कि क़ैदख़ाने में तंबाकू के इस्तेमाल की इजाज़त नहीं। मकान से जब चलने लगा तो टेबल पर सिगरेट केस धरा था। आदत के ज़ेरे-असर[1] पहले हाथ बढ़ा कि उसे जेब में रख लूं। फिर सूरते-हाल[2] का अहसास[3] हुआ तो रुक गया। लेकिन पुलिस कमिश्नर ने जो गिरफ़्तारी का वारंट लेकर आया था बइसरार कहा कि ज़रूर जेब में रख लो। मैंने रख लिया। उसमें दस सिगरेट थे।

एक कमिश्नर पुलिस के आफ़िस में पीया, दूसरा रास्ते में सुलगाया, दो साथियों को पेश किये, छह बाक़ी रह गये थे कि प्रेसीडेंसी जेल अलीपुर पहुँचा। जेल के दफ़्तर से जब अंदर जाने लगा तो ख़याल हुआ कि इस जेब के वबाल से सुबक-जेब होकर अंदर क़दम रखूं तो बेहतर है। मैंने केस निकाला और मय सिगरेटों के जेलर की नज़र कर दिया। और फिर उस दिन से लेकर दो बरस तक सिगरेट के ज़ायक़े से काम ओ दहन[4] आश्ना नहीं हुआ। साथियों में बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी जिनके पास सिगरेट के ज़ख़ीरे मौजूद रहते थे और क़ैदख़ाने का इहतिसाब[5] अमदन[6] चश्मपोशी करता था। बाज़ शुरबुल[7] यहूद का तरीक़ा काम में लाते थे :

शुरबुल यहूद करते हैं नसरानियों में हम !

बाज़ों की ज़ुरअते-रिंदाना इस क़ैद ओ बंद की मुतहम्मिल[8] नहीं हो सकती थी। वो

व ला तुस्क़िनी सिर्रन, फ़क़द अमकनल जहर[9]

पर अमल करते थे। मुझे यह हाल मालूम था। मगर अपने तोबये इज़्तिरार[10] पर कभी पशेमां नहीं हुआ। कई मर्तबा घर से सिगरेट के डिब्बे आये और मैंने दूसरों के हवाले कर दिये :

---

१. परिणाम स्वरूप, असर के नीचे २. परिस्थिति ३. मान ४. तालु और मुँह ५. निरीक्षक, निगरानी करने वाले ६. जानबूझ कर ७. इसलामी हुकूमतों में यहूदी पोशीदा शराब बनाते थे और बेचते थे। इसलिये पोशीदा शराब पीने के मानी में "शुरबुलयहूद" की इस्तलाह रायज हो गई। ८. बरदाश्त करना ९. पूरा शेर यह है :

अला फ़सक़नी ख़म्रन्, वक़ुल् लिहियलख़म्र
व ला तुस्क़िनी सिर्रन, फ़क़द अमकनल जहर

याने मुझे शराब पिला और यह कहकर पिला कि यह शराब है। मुझे छिपाकर न पिला क्योंकि अब खुलकर पीना मुमकिन हो गया है।

१०. लाचारी का तोबा।

ख़ुशम कि तोबये-मन निर्ख़े-बादा अरज़ां कर्द ![1]

सरगुज़श्त का असली वाक़या अब सुनिये। जिस दिन अलस्सबाह[2] मुझे रिहा किया गया तो क़ैदख़ाने के दफ़्तर में सुपरिंटेंडेंट ने अपना सिगरेट केस निकाला और अज़-राहे-तवाज़ा[3] मुझे भी पेश किया। यक़ीन कीजिये जिस दर्जे के अज़्म[4] के साथ दो साल पहले सिगरेट तर्क किया था उतने ही दर्जे की आमादगी[5] के साथ यह पेशकश[6] क़बूल भी कर ली। न तर्क में देर लगी थी न अब इख़्तियार में झिझक हुई। न महरूमी पर मातम हुआ था न हुसूल पर निशात[7] हुआ। तर्क की तल्ख़कामी[8] ने जो मज़ा दिया था वही अब इख़्तियार की हलावत[9] में महसूस होने लगा।

हरीफ़े-साफ़ी ओ दुर्दे नई, ख़ता ईं जा स्त
तमीज़े-नाख़ुश ओ ख़ुश मीकुनी, बला ईं जा स्त।[10]

सन् १९२१ के बाद तीन मर्तबा क़ैद ओ बंद का मरहला पेश आया, लेकिन तर्क की ज़रूरत पेश न आई। क्योंकि सिगरेट के डिब्बे मेरे सामान में साथ गये—वो देखे गये, मगर रोके नहीं गये। अगर रोके जाते तो फिर तर्क कर देता।

अब क़लम की स्याही जवाब देने लगी है इसलिए रुक जाता हूँ।

क़लम ईं जा रसीद ओ सर बशिकस्त[11]

अबुल कलाम

१. मैं खुश हूँ कि मेरे तोबा करने से शराब का भाव घट गया है। २. सुबह सवेरे ३. सत्कार के लिये ४. इरादा ५. तत्परता ६. उपहार, भेंट ७. खुशी ८. कटुता ९. मिठास १०. ग़लती यही है कि साफ़ी और दुर्द याने निर्मलता और मलिनता का प्रेमी नहीं है। अनिष्ट और इष्ट का भेद करता है, बला यहीं पर है। ११. क़लम यहां तक पहुंचा और उसकी नोक टूट गई।

दास्ताने-बेसतून ओ कोहकन

क़िलअ़े-अहमदनगर
१०, अगस्त, सन् १९४२

अज़ साज़ ओ बर्गे-क़ाफ़िलये-बेख़ुदां मपुर्स
बेनाला मीरवद जरसे-कारवाने-मा।[1]

सदीक़े-मुकर्रम

कल सुबह तक वुसअ़त आबाद बंबई में फ़ुरसते-तंगहौसलाकी बेमायगी[2] का यह हाल था कि ३, अगस्त का लिखा हुआ मकतूबे-सफ़र भी अजमलख़ां साहब के हवाले न कर सका कि आपको भेज दें। लेकिन आज क़िलअ़े-अहमदनगर के हिसारे-तंग[3] में उसके हौसलये-फ़राख़[4] की आसूदगियाँ[5] देखिये कि जी चाहता है दफ़्तर के दफ़्तर स्याह कर दूं।

वुसअ़ते पैदा कुन अय सहरा कि इम शब दर ग़मश
लश्करे-आहे-मन अज़ दिल ख़ीमा बेरूं मीज़नद।[6]

नौ महीने हुए, ४ दिसम्बर सन् १९४१ को नैनी के मरकज़ी[7] क़ैदख़ाने का दरवाज़ा मेरे लिए खोला गया था। कल ९ अगस्त, १९४२ को सवा दो बजे क़िलअ़े-अहमदनगर के हिसारे-कुहना[8] का नया फाटक मेरे पीछे बंद कर दिया गया। इस कारख़ानये-हज़ार शेवा व रंग[9] में कितने ही दरवाज़े खोले जाते हैं ताकि बंद हों, और कितने ही बंद किये जाते हैं ताकि खुलें। नौ माह की मुद्दत बज़ाहिर कोई बड़ी मुद्दत नहीं मालूम होती :

दो करवटें हैं आलमे-ग़फ़लत में ख़्वाब की

लेकिन सोचता हूं तो ऐसा मालूम होता है जैसे तारीख़ की एक पूरी दास्तान गुज़र चुकी है।

चूं सफ़हा तमाम शुद, वरक़ बरगरदद[10]

नई दास्तान जो शुरू हो रही है मालूम नहीं मुस्तक़बिल उसे कब और किस तरह ख़त्म करेगा :-

---

१. आत्म-विस्मृत लोगों के क़ाफ़िले के साज़ ओ सामान के बारे में मत पूछ, हमारे कारवां के घंटे की कोई आवाज़ नहीं होती और वह चलता रहता है २. दरिद्रता ३. तंग क़िले में ४. बुलंद हिम्मती ५. प्रचुरता ६. ओ सहरा यानी जंगल विस्तार पैदा कर क्योंकि आज की रात उसके ग़म में मेरी आहों के लश्कर दिल से बाहर ख़ीमा डाल रहे हैं। ७. केन्द्रीय ८. पुराना क़िला ९. रंग ढंग १०. जब सफ़हा पूरा हुआ तो पन्ना उलट जाता है।

फ़रेबे-जहां क़िस्सये-रोशन स्त
बबीं ता च ज़ायद, शब आबस्तन स्त[1]

४, अगस्त को बंबई पहुंचा तो इन्फ्लुयेंज़ा की हरारत और सर की गरानी का इज़्मिहलाल[2] भी मेरे साथ था। ताहम पहुँचते ही कामों में मशग़ूल हो जाना पड़ा। तबीयत कितनी ही बेकैफ़ हो लेकिन गवारा नहीं करती कि औक़ात के मुक़र्ररा निज़ाम में ख़लल पड़े। ४ से ७ अगस्त तक वर्किंग कमीटी के इज्लास होते रहे। ७ की दोपहर से आल इंडिया कमीटी शुरू हुई। मुआमलात की रफ़्तार ऐसी थी कि काररवाई तीन दिन तक फैल सकती थी और मुक़ामी[3] कमीटी ने तीन ही दिन का इंतज़ाम भी किया था। लेकिन मैंने कोशिश की कि दो दिन से ज़्यादा बढ़ने न पाये। ८ को दो बजे से रात के ग्यारह बजे तक बैठना पड़ा लेकिन काररवाई ख़त्म करके उठा:

काम थे इश्क़ में बहुत पर मीर
हम ही फ़ारिग़ हुये शताबी[4] से।

थका मांदा क़यामगाह[5] पर पहुँचा तो साहबे-मकान को मुंतज़िर और किसी क़दर मुतफ़क्किर[6] पाया। ये साहब कुछ अरसे से बीमार हैं और एक तरह की दिमाग़ी उलझन में मुब्तिला रहते हैं। मैं उनसे वक़्त के मआमलात का तज़किरा[7] बचा जाता था ताकि उनकी दिमाग़ी उलझन और ज़्यादा न बढ़ जाये। वो वर्किंग कमीटी की मेंबरी से भी मुस्तअफ़ी[8] हो चुके हैं और अगरचे मैंने अभी तक उनका इस्तीफ़ा मंजूर नहीं किया है लेकिन उन्हें कमीटी के जलसों में शिरकत[9] के लिये कहा भी नहीं। वो कहने लगे फ़लां शख़्स शाम को आया था। कई घंटे मुंतज़िर रहकर अभी-अभी गया है और यह पयाम दे गया है कि "गिरफ़्तारी की अफ़वाहें ग़लत न थीं। बावसूक़[10] ज़रिये से मालूम हुआ है कि तमाम इंतज़ामात कर लिये गये हैं। आज रात किसी वक़्त यह मामला ज़रूर पेश आयेगा। दो हफ़्ते से गिरफ़्तारी की अफ़वाहें देहली से कलकत्ते तक हर शख़्स की ज़बान पर थीं। मैं सुनते-सुनते थक गया था।

या वफ़ा, या ख़बरे-वस्ले-तू, या मर्गे-रक़ीब
बाज़िये चर्ख़ अज़ीं यक दो सिह कारे बकुनद[11]।

४. दुनिया का फ़रेब एक पुर नूर क़िस्सा है। देख ताकि क्या पैदा होता है क्योंकि रात आपन्नसत्वा या हामिला है। २. थकन ३. स्थानीय ४. जल्दी से ५. निवास स्थान ६. चिंतित ७. ज़िक्र ८. त्यागपत्र दे चुके हैं ९. शामिल होने के लिये १०. विश्वसनीय ११. या तो वफ़ादारी, या तेरे मिलन की ख़बर या रक़ीब की मौत इन दो तीन कामों में से आसमानी खेल कोई एक काम करेगा।

ग्रौर कुछ इस बात का भी ख़याल था कि उनकी माऊफ़[1] तबीयत को इस तरह की फ़िक्रों से परेशान न होने दूं। मैंने झुंझलाकर कहा—जिस तरह के हालात दर पेश हैं, उनमें इस तरह की अफ़वाहें हमेशा उड़ा ही करती हैं। ऐसी ख़बरों का ऐतबार क्या? ग्रौर ग्रगर वाक़ई ऐसा ही होने वाला है तो इन बातों में वक़्त ख़राब क्यों करें? मुझे जल्द कुछ खाकर सो जाने दीजिये कि ग्राधी रात जो ग्रब बाक़ी रह गई है, हाथ से न जाये ग्रौर चंद घंटे ग्राराम कर लूं:

गर ग़म ख़ुरेम ख़ुश न बुवद, बिह कि मय ख़ुरेम ![2]

हस्बे-मामूल चार बजे उठा। लेकिन तबीयत थकी हुई ग्रौर सर में सख़्त गरानी थी। मैंने जनग्रास्परीन की दो गोलियां मुंह में डालकर चाय पी ग्रौर क़लम उठाया कि बाज़ ज़रूरी ख़तों का मुसविदा लिख लूं जो रात की तजवीज़ के साथ प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट वग़ैरह को भेजना तय पाया था। सामने समंदर में भाटा ख़त्म हो चुका था। ग्रौर उसके ख़त्म होते ही रात भर की ऊमस भी ख़त्म हो गई थी। ग्रब ज्वार की लहरें साहिल से टकरा रही थीं ग्रौर हवा के ठंडे ग्रौर नमग्रालूद[3] झोंके भेजने लगी थी। कुछ तो जनग्रास्परीन ने काम किया होगा, कुछ नसीमे-सुबहगाही के इन शिफ़ाबख़्श[4] झोंकों ने चारा फ़रमाई[5] की। ऐसा महसूस होने लगा जैसे सर की गरानी कम हो रही है। फिर इफ़ाक़े[6] के इस अहसास ने ग्रचानक ग़नूदगी[7] की सी हालत तारी कर दी।

नसीमे-सुबह ! तेरी महरबानी !

बेइख़्तियार होकर क़लम रख दिया ग्रौर बिस्तर पर लेट गया। लेटते ही ग्रांख लग गई। फिर ग्रचानक ऐसा महसूस हुग्रा जैसे सड़क पर से मोटर कारें गुज़र रही हों। फिर क्या देखता हूं कि कई कारें मकान के इहाते में दाख़िल हो गई हैं ग्रौर उस बंगले की तरफ़ आ रही हैं जो मकान के पिछवाड़े में वाक़े[8] है ग्रौर जिसमें साहबे-मकान का लड़का घीरू रहता है। फिर ख़याल हुग्रा, मैं ख़्वाब देख रहा हूं ग्रौर इसके बाद गहरी नींद में डूब गया:

ज़हे फ़राग़ते-ख़्वाबे कि बिह ज़ बेदारी स्त।[9]

शायद इस हालत पर दस बारह मिनट गुज़रे होंगे कि किसी ने मेरा पैर दबाया। ग्रांख खुली तो क्या देखता हूं—घीरू एक काग़ज़ हाथ में लिये खड़ा है ग्रौर कह रहा है—दो फ़ौजी ग्रफ़सर डिप्टी कमिश्नर पुलिस के साथ

---

१. खिन्न, उदास २. अगर ग़म खायें तो वह ठीक नहीं है इससे तो अच्छा है कि शराब पीयें। ३. तर ४. आरामदेह ५. इलाज किया ६. स्वस्थता ७. तंद्रा, ऊँघना ८. स्थित ९. नींद के वे क्षण भी खूब हैं जो कि जागृति से भी बढ़कर हैं।

आये हैं और यह काग़ज़ लाये हैं। सो इतनी ही ख़बर मेरे लिये काफ़ी थी मगर मैंने काग़ज़ ले लिया कि देखूं :

किस किस की मुहर है सरे-महज़र[1] लगी हुई

मैंने धीरू से कहा—मुझे डेढ़ घंटा तैयारी में लगेगा। उनसे कह दो कि इंतज़ार करें। फिर ग़ुसल किया, कपड़े पहने, चंद ज़रूरी ख़ुतूत लिखे और बाहर निकला तो पाँच बज कर पैंतालीस मिनट हुये थे :

कार मुश्किल बूद, मा बर ख़ेश आसां कर्दा ऐम[2]

कार बाहर निकली तो सुबह मुस्कुरा रही थी। सामने देखा तो समंदर उछल-उछल कर नाच रहा था। नसीमे-सुबह के झोंके इहाते की रविशों[3] में फिरते हुये मिले। ये फूलों की ख़ुशबू चुन चुन कर जमा कर रहे थे और समंदर को भेज रहे थे कि अपनी ठोकरों से फ़ज़ा में फैलाता[4] रहे। एक झोंका कार में से हो कर गुज़रा तो बेइख़्तियार हाफ़िज़ की ग़ज़ल याद आ गई :

सबा वक़्ते-सहर बूये ज़ ज़ुल्फ़े-यार मीआवुर्द
दिले-शौरीदये-मारा ब नौ दर कार मीआवुर्द।[5]

कार विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर पहुँची, तो उसका पिछला हिस्सा हर तरफ़ से फ़ौजी पहरे के हिसार में था। और अगरचे लोकल ट्रेनों की रवानगी का वक़्त गुज़र रहा था लेकिन मुसाफ़िरों का दाख़िला रोक दिया गया था। सिर्फ़ एक प्लेटफ़ार्म पर कुछ हलचल दिखाई देती थी। क्योंकि एक इंजन रेस्टोरेंट कार को धकेल-धकेल कर एक ट्रेन से जोड़ रहा था। मालूम हुआ यही कारख़ाने-ख़ास है जो हम ज़िंदानियों[6] के लिये तैयार किया गया है। गाड़ियाँ कोरिडोर कैरेज की लगाई गई थीं जो आपस में जुड़ जाती हैं और आदमी एक सिरे से दूसरे सिरे तक अंदर ही अंदर चला जा सकता है। ट्रेन के अन्दर गया तो मालूम हुआ गिरफ़्तारियों का मामला पूरी वुसअत[7] के साथ अमल में लाया गया है। बहुत से आ चुके हैं, जो नहीं आये वो आते जाते हैं :

बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं।

बाज़ अहबाब[8] मुझसे पहले पहुँचाये जा चुके थे। उनके चेहरों पर बेख़्वाबी[9] और नावक़्त की बेदारी[10] बोल रही थी। कोई कहता था रात दो बजे सोया और चार बजे उठा दिया गया। कोई कहता था बमुश्किल एक घंटा नींद

---

१. क़ाज़ी के हुक्मनामे को महज़रनामा कहते हैं। २. काम मुश्किल था पर हमने उसे आसान कर लिया। ३. वीथियों में ४. वातावरण ५. प्रातः समीर मेरे प्रीतम की ज़ुल्फ़ों की ख़ुशबू लाई और मेरे परेशान दिल को फिर से ज़ुल्फ़ों में ले आई यानी मैं नये सिरे से ज़ुल्फ़ का आशिक़ हो गया। ६. क़ैदी ७. विस्तार ८. मित्र, दोस्त ९. अनिद्रा १०. जागरण।

का मिला होगा। मैंने कहा—मालूम नहीं सोई हुई किस्मत का क्या हाल है ? उसे भी कोई जगाने के लिये पहुँचा या नहीं :

दराज़िये-शब ओ बेदारिये-मन ईं हमा नेस्त
ज़ बख़्ते-मन ख़बर आरेद ता कुजा ख़ुफ़्त स्त।[1]

बहरहाल वक़्त की गरम जोशियों में ये शिकायतें मुख़िल नहीं हो सकती थीं। चूंकि रेस्टोरेंट कार लग चुकी थी और चाय के लिये पूछा गया था इसलिये गो पी चुका लेकिन फिर मँगवाई और उन नींद के मतवालों को दावत दी कि इस जामे-सुबह-गाही से बादये-दोशीना[2] का ख़ुमार मिटायें :

बनोश मय चु दिलत ख़ुश न बाशद अय हरीफ़ मदाम
अललख़ुसूस दरीं दम कि सर गरां दारी।[3]

यहाँ "बादये-दोशीना" की तरकीब महज़ "जामे-सुबहगाही" की मुनासिबत से ज़बाने-क़लम पर तारी हो गई। मगर ग़ौर कीजिये कितनी मुताबिक़े-हाल वाक़े हुई है ? सिर्फ़ एक शाम और सुबह के अंदर सूरते-हाल कैसी मुन्क़लिब[4] हो गई। कल शाम को जो बज़्मे-कैफ़ ओ सुरूर[5] आरास्ता[6] हुई थी उसकी बादा-गुसारियों[7] और सियह-मस्तियों[8] ने दो पहर रात तक तूल खींचा था। लेकिन अब सुबह के वक़्त देखिये तो :

नय वो सुरूर ओ सोज़, न जोश ओ ख़रोश है !

रात की तरदिमाग़ियों की जगह सुबह की सरगरानियों ने ले ली और मजलिसे-दोशीं[9] की दस्तअफ़शानियों[10] और पाकोबियों के बाद जब आंख खुली तो अब सुबहे-ख़ुमार की अफ़सुर्दा[11] जम्हाइयों के सिवा और कुछ बाक़ी नहीं रहा था :

ख़मियाज़ा कशेम अज़ तोहमते-ऐशे रमीदा हमा
मय आं क़दर न ख़ुर्दम कि रंजे-ख़ुमार बुर्द[12]।

१. रात की दराज़ी याने लंबाई और मेरी जागृति यह सब (कुछ) नहीं है। मेरे भाग्य की ख़बर लाइये कि कहाँ सोया है। २. रात की शराब ३. अय दोस्त जब कि तेरा मन खिन्न है तो अविराम शराब पी और ख़ास तौर से इस वक़्त कि तेरा सिर भारी है। ४. परिवर्तित ५. आनन्द और मस्ती की महफ़िल ६. सजी ७. सुरापान ८. बद मस्ती ९. रात की मजलिस १०. दस्त अफ़शानी और पाकोबी दोनों का अर्थ नाचना है यहाँ भाव नाच-रंग उछल-कूद से है ११. उदास १२. ऐश की तोहमत का दुष्परिणाम भोग रहे हैं, शराब इतनी नहीं पी कि ख़ुमार का रंज मिटा देती।

रात की कैफ़ियतें जितनी तुंद ओ तेज होती हैं सुबह का खुमार भी उतना ही सख़्त होता है। अगर रात की सियहमस्तियों के बाद अब सुबह खुमार की तल्खकामियों[1] से साबिक़ा पड़ा था तो ऐसा होना नागुज़ेर[2] था। और कोई वजह न थी कि हम शकवासंज[3] होते। अलबत्ता हसरत इसकी रह गई कि जब होना यही था, तो काश जी की हवस तो पूरी निकाल ली होती और नपे-तुले पैमानों की जगह शीशों के शीशे लुंढा दिये होते। ख्वाजा मीर दर्द क्या खूब कह गये हैं :

कभी खुश भी किया है जी किसी रिंदे शराबी का
भिड़ा दे मुंह से मुंह साक़ी हमारा और गुलाबी का !

साढ़े सात बज चुके थे कि ट्रेन ने कूच की सीटी बजाई। हाफ़िज़ की मशहूर ग़ज़ल का शेर कम अज़ कम सैकड़ों मर्तबा तो पढ़ा और सुना होगा। लेकिन वाक़ा यह है कि उसका असली लुत्फ़ उसी वक़्त आया :

कस न दानिस्त कि मंज़िलगहे-मक़सूद कुजा स्त
ईं क़दर हस्त कि बांगे-जरसे मीआयद ।[4]

बंबई में जो अफ़वाहें गिरफ़्तारी से पहले फैली हुई थीं उनमें अहमदनगर के क़िले और पूना के आग़ाखां पैलेस का नाम तअय्युन[5] के साथ लिया जा रहा था। जब कल्यान स्टेशन से ट्रेन आगे बढ़ी और पूना की राह इख्तियार की तो सबको खयाल हुआ ग़ालिबन मंज़िले-मक़सूद पूना ही है। लेकिन जब पूना क़रीब आया तो एक ग़ैर आबाद स्टेशन पर सिर्फ़ बाज़ रुफ़क़ा[6] उतार लिये गये और बंबई के मुक़ामी क़ाफ़िले को भी उतरने के लिए कहा गया। मगर हमसे कुछ नहीं कहा गया और सदाये-जरस[7] ने फिर कूच का ऐलान कर दिया :

जरस फ़रियाद मीदारद कि बरबंदेद महमिलहा[8]

अब अहमदनगर हर शख़्स की ज़बान पर था। क्योंकि अगर पूना में हम नहीं उतारे गये तो फिर इस रुख पर अहमदनगर के सिवा और कोई जगह नहीं हो सकती। एक साहब ने जो इन्हीं अतराफ़[9] के रहनेवाले हैं बतलाया कि पूना और अहमदनगर का बाहमी फ़ासला सत्तर-अस्सी मील से ज्यादा नहीं। इसलिए ज्यादा से ज्यादा दो ढाई घंटे का सफ़र और समझना चाहिये। मगर मेरा

---

१. कटुता २. अपरिहार्य ३. शिकायत करते ४. किसी ने भी नहीं जाना कि मंज़िले-मक़सूद कहां है लेकिन इतनी बात जरूर है कि कारवां के घंटे की आवाज़ आती है। ५. निश्चय ६. रफ़ीक़ का बहुवचन, साथी ७. सीटी की आवाज़ ८. घंटे की यही आवाज़ है कि कूच की तैयारी करो। ९. तरफ़ का बहुवचन अतराफ़ है याने दिशा।

ख़याल दूसरी ही तरफ़ जा रहा था। अहमदनगर यक़ीनन दूर नहीं है। बहुत जल्द आ जायेगा। मगर अहमदनगर पर सफ़र ख़त्म कब होता है? अहमदनगर से तो शुरू होगा। बेइख़्तियार अबुल अला मुअर्री का लामिय्या[1] याद आ गया :

फ़या दारहा बिल ख़ैफ़ि इन्न मज़ारहा
क़रीबुन व लाकिन दून ज़ालिक अहवालु[2]

यह अजीब इत्तिफ़ाक़ है कि मुल्क के तक़रीबन तमाम तारीख़ी मुक़ामात देखने में आये मगर क़िलओ-अहमदनगर देखने का कभी इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ। एक मर्तबा जब बंबई में था तो क़स्द भी किया था मगर फिर हालात ने मोहलत न दी। यह शहर भी हिन्दुस्तान के उन ख़ास मुक़ामात में से है जिनके नामों के साथ सदियों के इंक़लाबों की दास्ताने वाबस्ता[3] हो गई हैं। पहले यहाँ भींगर नामी नदी के किनारे एक इसी नाम का गाँव आबाद था। पंद्रहवीं सदी मसीही के अवाख़िर[4] में जब दकन की बहमनी हुकूमत कमज़ोर पड़ गई तो मलिक अहमद निज़ाम उल मुल्क भेरी ने अलमे-इस्तक़िलाल[5] बुलंद किया और भींगर के क़रीब अहमदनगर की बुनियाद डालकर जनीर की जगह उसे हाकिम नशीन शहर बनाया। उस वक़्त के निज़ाम शाही ममलुकत का दार-उल-हुकूमत यही मुक़ाम बन गया। फ़रिश्ता जिसका ख़ानदान माज़िंदरान से आकर यहीं आबाद हुआ था लिखता है — चंद बरसों के अंदर इस शहर ने वो रौनक़ ओ ख़ुसअत पैदा कर ली थी कि बग़दाद और क़ाहिरा का मुक़ाबला करने लगा था :

कस पायमाले - आफ़ते - फ़रसूदगी मबाद
दीरोज़ रेगे-बादिया आईनाख़ाना बूद।[6]

मालिक अहमद ने जो क़िला तामीर किया था उसका हिसार मिट्टी का था। उसके लड़के बुरहान निज़ाम शाह अव्वल ने उसे मुनहदिम[7] करके अज़-सरे-नौ[8] पत्थर का हिसार तामीर किया और उसे इस दर्जे बुलंद और मज़बूत बनाया कि मिसर और ईरान तक उसकी मज़बूती का ग़लग़ला[9] पहुँचा। सन् १८०३ की दूसरी जंगे-मरहठा में जब जनरल वेलेज़ली ने (जो आगे चलकर ड्यूक ऑफ वेलिंगटन हुआ उसका मुआयना किया था तो अगरचे तीन सौ

---

१. लामिय्या छंद की एक जाति है जिसमें शेर का अंतिम अक्षर ल पर ख़त्म होता है। २. प्रियतमा का घर जो ख़ैफ़ में है, वह तो बहुत नज़दीक है, मगर उस तक पहुँचने में हौलनाकियाँ ही हौलनाकियाँ हैं। ३. जुड़ गई हैं ४. अंत में ५. आज़ादी का झंडा ६. कोई जीर्णता की विपदा से पामाल न हो, कल दिन तक जंगल की रेत शीशमहल थी। ७. गिराकर ८. नये सिरे से ९. शोर।

बरस के इन्क़लाबात सह चुका था फिर भी उसकी मज़बूती में फ़र्क़ नहीं आया था। उसने अपने मुरासले[1] में लिखा था कि दकन के तमाम क़िलों में सिर्फ़ वेलूर का क़िला ऐसा है जिसे मज़बूती के लिहाज़ से इस पर तरजीह[2] दी जा सकती है :

कारवाँ रफ़्ता ओ अंदाज़ये-जाहश पैदा स्त
ज़ाँ निशांहा कि ब हर राहगुज़ार उफ़्ताद स्त।[3]

यही अहमदनगर का क़िला है जिसकी संगी[4] दीवारों पर बुरहान निज़ाम शाह की बहन चाँदबीबी ने अपने अज़्म ओ शुजाअत[5] की यादगारे-ज़माना दास्तानें कंदा[6] की थीं और जिन्हें तारीख़ ने पत्थर की सिलों से उतार कर अपने औराक़[7] ओ दफ़ातिर[8] में महफ़ूज़ कर लिया है :

बयफ़शाँ जुरए बर ख़ाक ओ हाले-अहले-शौक़त बीं
कि अज़ जमशेद ओ के ख़ुसरू हज़ारां दास्तां दारद।[9]

इसी अहमदनगर के मारकों[10] में अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना की जवांमर्दी का वो वाक़ा नुमाया हुआ था जिसकी सरगुज़श्त अब्दुल बाक़ी निहावंदी और समसामुद्दौला ने हमें सुनाई है। जब अहमदनगर की मदद पर बीजापूर और गोलकुंडा की फ़ौजें भी आ गईं और ख़ानख़ाना की क़लीलउत्तादाद[11] फ़ौज को सुहैल हब्शी की ताक़तवर फ़ौज से टकराना पड़ा तो दौलतख़ां लोदी ने पूछा था "चुनीं अंबोहे दरपेश ओ फ़तहे-आसमानी। अगर हादिसये रू दिहद, जाये-निशां दिहेद कि शुमारा दरयाबेम[12]।" ख़ानख़ाना ने जवाब दिया था—"ज़ेरे-लाशहा[13] !"

व नहनु उनासुन लातवस्सुत बैनना
लनस्सद्र दूनलआलमीन अविल क़ब्र।[14]

---

१. पत्र व्यवहार २. प्रधानता ३. कारवां गुज़र गया है और उसकी गरिमा का अंदाज़ा बाक़ी रह गया है उन निशानों से कि जो हर राह में दिखाई देते है। ४. पत्थर की ५. दृढ़ता और बहादुरी की ६. खोदी ७. वरक़ का बहुवचन, औराक़, पन्ना ८. दफ़्तर का बहुवचन ९. एक घूंट शराब ज़मीन पर छिड़क दे और फिर पराक्रमी लोगों का हाल देख कि जमशेद और केख़ुसरू की हज़ारों कहानियां सुनाती है। १०. लड़ाई, युद्ध ११. अल्पसंख्यक १२. दुश्मन की इतनी बड़ी फ़ौज की भीड़ सामने है और विजय भाग्याधीन है। अगर कोई दुर्घटना हो जाये तो कोई ऐसी जगह का निशान दीजियेगा कि आपको पा सकें। १३. लाशों के नीचे १४. हम ऐसे लोग हैं कि हमारे लिये कोई मध्यम मार्ग नहीं है। या तो हम सबसे ऊपर शिखर पर होंगे या सबसे नीचे क़ब्र में।

अहमदनगर के नाम ने हाफ़िज़े के कितने ही भूले हुये नुक़ूश यकायक ताज़ा कर दिये। रेल तेज़ी के साथ दौड़ी जा रही थी। मैदान के बाद मैदान गुज़रते जाते थे। एक मंज़र[1] पर नज़र जमने नहीं पाती थी कि दूसरा मंज़र सामने आ जाता था। और ऐसा ही माजरा मेरे दिमाग़ के अंदर गुज़र रहा था। अहमदनगर अपनी छह सौ बरस की दास्ताने-कुहन[2] लिये वरक़ पर वरक़ उलटता जाता। एक सफ़्हे पर अभी नज़र जमने नहीं पाती कि दूसरा सामने आ जाता :

गाहे गाहे बाज़ ख़्वां ईं दफ़्तरे-पारीनारा
ताज़ा ख़्वाही दाश्तन गर दाग़हाये सीनारा[3]

मुझे ख़याल हुआ अगर हमारे क़ैद ओ बंद के लिये यही जगह चुनी गई है तो इंतख़ाब[4] की मौज़ूनियत[5] में क़लाम नहीं। हम ख़राबातियों के लिये कोई ऐसा ही ख़राबा होना था

बा यक जहां कुदूरत, बाज़ ईं ख़राबा जाये स्त ![6]

दो बजने वाले थे कि ट्रेन अहमदनगर पहुँची। स्टेशन में सन्नाटा था। सिर्फ़ चंद फ़ौजी अफ़सर टहल रहे थे। उन्हीं में मुक़ामी छावनी का कमांडिंग आफ़ीसर भी था जिससे हमें मिलाया गया। हम उतरे और फ़ौरन स्टेशन से रवाना हो गये। स्टेशन से क़िले तक सीधी सड़क चली गई है। राह में कोई मोड़ नहीं मिली। मैं सोचने लगा कि मक़ासिद[7] के सफ़र का भी ऐसा ही हाल है। जब क़दम उठा दिया तो फिर कोई मोड़ नहीं मिलती। अगर मुड़ना चाहें तो सिर्फ़ पीछे ही की तरफ़ मुड़ सकते हैं। लेकिन पीछे मुड़ने की राह यहाँ पहले से बंद हो जाती है।

हाँ, रहे इश्क़ अस्त, कज गश्तन न दारद बाज़ गश्त
जुर्मरा ईं जा मुऊ़बत हस्त, इस्तग़फ़ार नेस्त ![8]

स्टेशन से क़िले तक की मसाफ़त ज़्यादा से ज़्यादा दस बारह मिनट की होगी। क़िले का हिसार पहले किसी क़दर फ़ासले पर दिखाई दिया। फिर यह फ़ासला चंद लमहों में तय हो गया। अब उस दुनिया में जो क़िले से बाहर है और उसमें जो क़िले के अंदर है सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला रह गया था। चश्मे-ज़दन[9] में यह भी तय हो गया और हम क़िले की दुनिया में दाख़िल हो

---

१. दृश्य २. पुरानी कहानी ३. कभी-कभी इस पुराने दफ़्तर को फिर से पढ़ अगर तू चाहता है कि तेरे सीने के दाग़ ताज़ा रहें ४. चुनाव ५. औचित्य ६. उपेक्षित दुनिया को देखते हुए इस वीराने में (हमारे लिए) जगह है। ७. मक़सद का बहुवचन ८. इश्क़ की राह है इसमें लौटने के लिये मुड़ नहीं सकते। जुर्म की यहाँ सज़ा है पर माफ़ी नहीं है। ९. पलक मारना

गये। ग़ौर कीजिये तो ज़िंदगी की तमाम मसाफ़तों का यही हाल है। ख़ुद ज़िंदगी और मौत का बाहमी फ़ासला भी एक क़दम से ज़्यादा नहीं होता।

हस्ती से अदम तक नफ़से-चंद[1] की है राह
दुनिया से गुज़रना सफ़र ऐसा है कहाँ का!

क़िले की ख़ंदक़[2] जिसकी निस्बत अबुलफ़ज़ल ने लिखा है कि चालीस गज़ चौड़ी और चौदह गज़ गहरी थी। और जिसे सन् १८०३ ई. में जनरल वेलेज़ली ने एक सौ आठ फ़ुट तक चौड़ा पाया था। मुझे दिखाइ नहीं दी। ग़ालिबन[3] जिस रुख़ से हम दाख़िल हुये, उस तरफ़ पाट दी गई है। उसका बैरूनी किनारा जो खुदाई की ख़ाक-रेज़[4] से इस क़दर ऊँचा कर दिया गया था कि क़िले की दीवार छिप गई थी। वो भी उस रुख़ पर नुमायां न था। मुमकिन है कि वो सूरत अब बाक़ी न रही हो।

क़िले के अंदर पहले मोटर लारियों की क़तार मिली। फिर टेंकों की। उसके बाद एक इहाते के सामने जो क़िले की आम सतह से चौदह पंद्रह फ़ुट बुलंद होगा और इसलिये चढ़ाई पर वाक़े है कारें रुक गईं और हमें उतरने के लिये कहा गया। यहाँ इंस्पेक्टर जनरल पुलीस बंबई ने जो हमारे साथ आया था हमारे नामों की फ़हरिस्त कमांडिंग आफ़ीसर के हवाले की। वो फ़हरिस्त लेकर दरवाज़े के पास खड़ा हो गया। यह गोया हमारी सुपुर्दगी की बाज़ाब्ता रस्म थी। अब हमारी हिफ़ाज़त का सरे रिश्ता हुकूमते-बंबई के हाथ से निकल कर फ़ौजी इंतज़ाम के हाथ आ गया और हम एक दुनिया से निकल कर दूसरी दुनिया में दाख़िल हो गये।

दर जुस्तजूये-मा न कशी ज़हमते-सुराग़
जाये रसीदा एम कि अन्क़ा नमीरसद।[5]

दरवाज़े के अन्दर दाख़िल हुये तो एक मुस्ततील[6] इहाता सामने था। ग़ालिबन दो सौ फ़ुट लंबा और डेढ़ सौ फ़ुट चौड़ा होगा। उसके तीनों तरफ़ बारक की तरह कमरों का सिलसिला चला गया है। कमरों के सामने बरामदा है और बीच में खुली जगह है। यह अगरचे इतनी वसीअ[7] नहीं कि इसे मैदान कहा जा सके, ताहम इहाते के ज़िंदानियों[8] के लिए मैदान का काम दे सकती है। आदमी कमरे से बाहर निकलेगा तो महसूस करेगा कि खुली जगह में आ

---

१. कुछ सांस २. खाई ३. संभवतः ४. खोदी हुई मिट्टी ५. मेरी खोज में सुराग़ या पता लगाने की मेहनत मत उठाओ (क्योंकि) मैं उस जगह पर पहुँच गया हूँ कि जहाँ अन्क़ा भी नहीं पहुँच सकता। ६. लंबा ७. विस्तृत ८. क़ैदियों।

गया। कम-अज़-कम इतनी जगह ज़रूर है कि जी भर के ख़ाक उड़ाई जा सकती है :

सर पर हुजूमे-दर्दे-ग़रीबी से डालिये
वो एक मुश्ते ख़ाक कि सहरा कहें जिसे

सहन के वस्त[1] में एक पुख़्ता चबूतरा है जिसमें झंडे का मस्तूल नसब[2] है, मगर झंडा उतार लिया गया है। मैंने मस्तूल की बुलंदी देखने के लिये सर उठाया तो इशारा कर रहा था :

यहीं मिलेंगे तुझे नालये-बुलंद तेरे !

इहाते के शुमाली[3] किनारे में एक पुरानी टूटी हुई क़ब्र है। नीम के एक दरख़्त की शाख़ें उस पर साया करने की कोशिश कर रही हैं मगर कामयाब नहीं होतीं। क़ब्र के सिरहाने एक छोटा सा ताक़ है। ताक़ अब चिराग़ से ख़ाली है मगर मेहराब की रंगत बोल रही है कि यहाँ कभी एक दीया जला करता था :

इसी घर में जलाया है चिराग़े-आरज़ू बरसों !

मालूम नहीं यह किसकी क़ब्र है ? चाँद बीबी की हो नहीं सकती क्योंकि उसका मक़बरा क़िले से बाहर एक पहाड़ी पर वाक़े है। बहरहाल किसी की हो, मगर कोई मजहूल[4]-उल-हाल शख़्सियत न होगी, वरना जहाँ क़िले की तमाम इमारतें गिराई थीं वहाँ इसे भी गिरा दिया होता। सुबहान अल्लाह ! इस रोज़गारे-ख़राब को वीरानियाँ भी अपनी आबादियों के करिश्मे रखती हैं। इस पुरानी क़ब्र को वीरान भी होना था तो इसलिये कि कभी हम ज़िंदानियाने-ख़राबाती के शोर-ओ-हंगामे से आबाद हो !

कुश्तों का तेरी चश्मे-सियह मस्त के मज़ार[5]
होगा ख़राब भी तो ख़राबात[6] होवेगा !

मग़रिबी[7] रुख़ के तमाम कमरे खुले और चश्मबराह[8] थे। क़तार का पहला कमरा मेरे हिस्से में आया। मैंने अंदर क़दम रखते ही पहला काम यह किया कि चारपाई पर, कि बिछी हुई थी, दराज़ हो गया। नौ महीने की नींद ओ थकन मेरे साथ बिस्तर पर गिरी :

मा गोशारा न बहरे-क़नाअत गिरफ़्ता ऐम
तन परवरी ब गोशये-ख़ातिर रसीदा अस्त[9]।

---

१. बीच में २. गड़ा ३. उत्तरी ४ अविख्यात ५. क़ब्र ६. ख़राबात खंडहर और मयख़ाना दोनों को कहते हैं। ७. पश्चिमी ८. दृष्टिगोचर ९. हमने एकांत कोना संतोष की ख़ातिर इख़्तियार नहीं किया है बल्कि दिल के कोने में तनपरवरी याने शारीरिक सुख की इच्छा है। अर्थात् एकांत-सेवन देहदमन के लिए नहीं बल्कि शारीरिक सुख के लिये इख़्तियार किया है।

तक़रीबन तीन बजे से छह बजे तक सोता रहा। फिर रात को नौ बजे तकिये पर सर रखा तो सुबह तीन बजे आँख खोली :

न तीर कमां में है न सय्याद कमीं[1] में
गोशे में क़फ़स के मुझे आराम बहुत है !

तीन बजे उठा तो ताज़ा दम और चुस्त ओ चाक़ था। न सर में गरानी थी न इंफ्लुयेंज़ा का नाम ओ निशान था। फ़ौरन बिजली का आलये-हरारत[2] काम में लाया और चाय दम दी। अब जाम ओ सुराही सामने धरे बैठा हूँ। आपको मुख़ातिब तसव्वुर करता हूँ और यह दास्ताने-बेसुतून ओ कोहकन सुना रहा हूँ।

शीरींतर अज़ हिकायते-मा नेस्त किस्सये
तारीख़े-रोज़गार सरापा नविश्ता अेम ![3]

महीनों से ऐसी गहरी और आसूदा[4] नींद नसीब नहीं हुई थी। ऐसा मालूम होता है कि कल सुबह बंबई से चलते हुये जो दामन झाड़ना पड़ा था तो अलाइक़[5] की गर्द के साथ महीनों की सारी थकन भी निकल गई थी। यग़माये-जुंदकी क्या ख़ूब कह गया है :

ग़लत गुफ़्ती "चरा सज्जादये-तक़वा गिरौ कर्दी ?"
ब जुहद आलूदा बूदम गर न मीकरदम च मीकरदम।[6]

यह उसी ग़ज़ल का शेर है जिसका एक और शेर जो मुज्तहिदे[7] काशान की निस्बत कहा था, बहुत मशहूर हो चुका है :

ज़ शेख़े शहर जां बुर्दम ब तज़वीरे-मुसलमानी
मुदारा गर ब ई काफ़िर न मीकरदम च मीकरदम ![8]

रदीफ़[9] का निभाना आसान न था, मगर देखिये किस तरह बोल रही है ? बोल नहीं रही है चीख़ रही है। मैं भी इस वक़्त चाय के फ़िंजान पर फ़िंजान लुंढाये जाता हूँ और उसका मतला दोहराता हूँ :

---

१. घात २. तापयंत्र ३. हमारी कहानी के समान कोई कहानी मधुर नहीं है हमने तो सारी दुनिया का इतिहास ही आदि से अन्त तक लिख दिया है। ४. चैन की ५. ताल्लुक़ और संबंध ६. तू यह बात ग़लत कहता है कि "क्यों संयम और तपस्या के आसन को रहन कर दिया ?" तपस्या की गंदगी में फँसा था अगर गिरौ नहीं करता तो क्या करता। ७. काशान के धर्माचार्य। ८. शहर के शेख़ से यह झूठ कह कर कि मैं मुसलमान हूँ जान बचाई; इस काफ़िर से सुलह नहीं करता तो क्या करता। ९. प्रास।

ब साग़र गर दिमाग़े तर न मीकरदम, च मीकरदम :[१]

ख़ुदारा दाद दीजिये। नज़र बहालाते-मौजूद यहाँ "च मीकरदम" क्या क़यामत ढा रहा है? गोया यह मिसरा ख़ास इसी मौक़े के लिये कहा गया था। मगर यूं पता नहीं चलेगा। "च मीकरदम" पर ज़्यादा से ज़्यादा ज़ोर देकर पढ़िये। फिर देखिये, सूरते-हाल की पूरी तसवीर किस तरह सामने नमूदार हो जाती है।

यह जो कुछ लिख रहा हूँ कलपतरा-गोई[२] और लातायल-नवीसी[३] से ज़्यादा नहीं है। यह भी नहीं मालूम, बहालते-मौजूदा मेरी सदायें[४] आप तक पहुँच भी सकेंगी या नहीं? ताहम क्या करूँ, अफ़साना सराई[५] से अपने आपको बाज़ नहीं रख सकता। यह वही हालत हुई जिसे मिरज़ा ग़ालिब ने ज़ौक़े-ख़ामाफ़रसा[६] की सितमज़दगी[७] से ताबीर[८] किया था :

मगर सितमज़दा हूँ ज़ौक़े-ख़ामाफ़रसा का[९]

अबुल कलाम

१. मैं अगर शराब के प्यालों से दिमाग़ तर नहीं करता तो क्या करता। २. बेहूदा बकवास ३. बेकार लिखना ४. आवाज़ें ५. कहानी कहना ६. लिखने की रुचि ७. क्रूरता ८. बयान करना ९. लिखने की इच्छा का मारा हुआ हूँ।

क़िलये-अहमदनगर
११ अगस्त, सन् १९४२ ई.

सदीक़े-मुकर्रम !

क़ैद बंद की ज़िन्दगी का यह छठा तजरुबा है। पहला तजरुबा सन् १९१६ में पेश आया था, जब मुसलसल[1] चार बरस तक क़ैद ओ बंद में रहा। फिर सन् १९२१, १९३१, सन् १९३२ और सन् १९४० में यके बाद दीगरे[2] यही मंज़िल पेश आती रही। और अब फिर उसी मंज़िल से क़ाफ़िलये-बाद पैमाये-उम्र[3] गुज़र रहा है।

बाज़ मीख़्वाहम ज़ सर गीरम रहे-पैमूदारा।[4]

पिछली पाँच गिरफ़्तारियों की अगर मजमूई मुद्दत शुमार की जाये तो सात बरस आठ महीने से ज़्यादा नहीं होगी। उम्र के तरेपन[5] बरस जो गुज़र चुके हैं उनसे यह मुद्दत वज़ा[6] करता हूं तो सातवें हिस्से के क़रीब पड़ती है। गोया ज़िन्दगी के हर सात दिन में एक दिन क़ैदख़ाने में गुज़रा। तौरात[7] के अहकामे-अशरा[8] में एक हुक्म सब्त[9] के लिए भी था। यानी हफ़्ते का सातवां दिन तातील[10] का मुक़द्दस[11] दिन समझा जाये। मसीहियत और इस्लाम ने भी यह तातील क़ायम रखी। सो हमारे हिस्से में भी सब्त का दिन आया मगर हमारी तातीलें इस तरह बसर हुईं गोया ख़्वाजा शीराज़ के दस्तूर उल अमल[12] पर कार[13] बंद रहे :

१. लगातार २. एक के बाद दूसरी ३. उम्र के क़ाफ़िले का हवा-मान यंत्र ४. फिर से चाहता हूं कि तै की हुई राह को सिरे से इख़्तियार करूं ५. यह मकतूब ११ अगस्त सन् १९४२ को लिखा था। इसके बाद क़ैद के दो बरस ग्यारह महीने और गुज़र गये और मजमूई मुद्दत सात बरस आठ महीने की जगह दस बरस सात माह हो गई। इस इज़ाफ़े के ख़िलाफ़ कोई शिकवा करना नहीं चाहता। अलबत्ता इसका अफ़सोस ज़रूर है कि वो सातवें हिस्से की बात मुख़्तल हो गई और सब्त की तातील का मामला हाथ से निकल गया ६. भाग देना ७. क़ुरान की तरह जो किताब हज़रत मूसा पर उतरी थी उसे तौरात या तौरेत कहते हैं ८. दस हुक्म ९. छुट्टी का दिन जिस दिन यहूदी लोग इबादत करते हैं यह शनीवार होता है। १०. छुट्टी ११. पवित्र १२. कार्यक्रम १३. काम।

न गोयमत कि हमा साल मयपरस्ती कुन
सिह माह मय खुर भो नुह माह पारसा मीबाश[1]

वक़्त के हालात पेशे-नज़र रखते हुए इस तनासुब[2] पर ग़ौर करता हूं तो ताज्जुब होता है। इस पर नहीं कि सात बरस आठ महीने क़ैद भो बंद में क्यों कटे ? इस पर कि सिर्फ़ सात बरस आठ महीने ही क्यों कटे ?

नाला अज बहरे-रिहाई न कुनद मुर्गे-असीर
खुरद अफ़सोस जमाने कि गिरफ़्तार न बूद।[3]

वक़्त के जो हालात हमें चारों तरफ़ से घेरे हुए हैं उनमें इस मुल्क के बाशिंदों के लिए ज़िन्दगी बसर करने की दो ही राहें रह गयी हैं। बेहिसी[4] की ज़िन्दगी बसर करें या अहसासे-हाल[5] की। पहली ज़िन्दगी हर हाल में और हर जगह बसर की जा सकती है, मगर दूसरी के लिए क़ैदख़ाने की कोठरी के सिवा और कहीं जगह न निकल सकी। हमारे सामने भी दोनों राहें खुली थीं। पहली हम इख़्तियार नहीं कर सकते थे नाचार दूसरी इख़्तियार करनी पड़ी :

रिंदे-हज़ार शेवारा ताअ़ते-हक़ गरां न बूद
लेक सनम ब सजदा दर नासिया मुश्तरक न ख्वास्त[6]

ज़िन्दगी में जितने जुर्म किये और उनकी सज़ायें पाईं, सोचता हूं तो उनसे कहीं ज़्यादा तादाद उन जुर्मों की थी जो न कर सके और जिनके करने की हसरत[7] दिल में रह गई। यहाँ कर्दा[8] जुर्मों की सज़ायें तो मिल जाती हैं लेकिन नाकर्दा जुर्मों की हसरतों का सिला[9] किससे माँगें ?

नाकर्दा गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद
या रब, अगर इन कर्दा गुनाहों की सज़ा है।

सन् १९१६ में जब यह मुआमला पेश आया तो मुझे पहली मर्तबा मौक़ा मिला कि अपनी तबीयत के तास्सुरात[10] का जायज़ा[11] लूं। उस वक़्त उम्र के सिर्फ़ सत्ताईस बरस गुज़रे थे। "अलहिलाल" "अलबलाग़" के नाम से जारी

---

१. मैं तुमसे यह नहीं कहता कि पूरे साल भर शराब पी बल्कि तीन महीने शराब पी और नौ महीने त्याग और संयम का जीवन बिता। २. आपसी सम्बंध या मुनासिबत ३. पिंजरे में बंद पंछी रिहाई के लिए चीख़-पुकार नहीं करता बल्कि इस बात का अफ़सोस करता है कि जिस ज़माने में आज़ाद था काश कि वो भी गिरफ़्तारी का ज़माना होता। ४. अनुभूतिहीन ५. परिस्थितियों की अनुभूति ६. अहलगुसी रिंद के लिए सत्य या ईश्वर की उपासना मुश्किल न थी लेकिन मुश्किल यह थी कि सनम सजदे या वंदन के साथ नतमस्तक होने में किसी को शामिल नहीं चाहता। ७. इच्छा ८. किये हुए ९. पुरस्कार १०. प्रभाव ११. जाँच।

था दार-उल-इरशाद क़ायम हो चुका था। जिन्दगी की गहरी मशग़ूलियतें चारों तरफ़ से घेरे हुए थीं। तरह-तरह की सरगर्मियों में दिल अटका हुआ था और इलाक़ों[1] और राबितों की गरानियों से बोझल था। अचानक एक दिन दामन झाड़कर उठ खड़ा होना पड़ा और मशग़ूलियत की डूबी हुई जिन्दगी की जगह क़ैद ओ बंद की तनहाई[2] और बेतअल्लुक़ी[3] इख्तियार कर लेनी पड़ी। बज़ाहिर इस नागहानी[4] इन्क़लाबे-हाल[5] में तबीयत के लिए बड़ी आजमाइश होनी थी। लेकिन वाक़या यह है कि नहीं हुई। आबाद घर छोड़ा और एक वीराने में जा बैठ रहा। *

नुक़सां नहीं जुनूं में, बला से हो घर ख़राब
दो गज़ ज़मीं के बदले, बयाबां गरां नहीं।

लेकिन फिर कुछ अर्से के बाद जब इस सूरते-हाल[6] का रद्दे-फ़ेल[7] शुरू हुआ तो मालूम हुआ कि मुआमला इतना सरल न था जितना इब्तदाये-हाल[8] की सरगर्मियों में महसूस हुआ था। और उसकी आज़माइशें अभी गुज़र नहीं चुकीं, बल्कि अब पेश आ रही हैं।

जब कभी इस तरह का मुआमला यकायक पेश आ जाता है, तो इब्तदा में उसकी सख्तियाँ पूरी तरह महसूस नहीं होतीं। क्योंकि तबीयत में मुक़ाविमत[9] का एक सख्त जज़्बा[10] पैदा हो जाता है। और वो नहीं चाहता कि सूरते-हाल से दब जाये। वो इसका ग़ालिबाना[11] मुक़ाबला करना चाहता है। नतीजा यह निकलता है कि एक पुरजोश नशे की सी हालत तारी हो जाती है। नशे की तेज़ी में कितनी सख्त चोट लगे उसकी तकलीफ़ महसूस नहीं होती। तकलीफ़ उस वक़्त महसूस होगी जब नशा उतरने लगेगा और जमाहियाँ आनी शुरू होंगी। उस वक़्त ऐसा मालूम होगा जैसे सारा जिस्म दर्द से चूर-चूर हो रहा हो। चुनांचे इस मुआमले में भी पहला दौर नशये-जज़्बात[12] की ख़ुद-फ़रामो-[13] शियों का गुज़रा। अलायक़[14] का फ़ौरी[15] इन्क़ताअ[16] कारोबार की नागहानी बरहमी[17] मशग़ूलियतों का यकक़लम[18] तअत्तुल[19], कोई बात भी दामने-दिल को

१. सम्बंधों २. एकांतता ३. सम्बंध विहीनता ४. अप्रत्याशित ५. परिस्थिति का परिवर्तन ६. परिस्थिति ७. प्रतिक्रिया ८. प्रारम्भिक परिस्थितियों में ९. विरोध १०. भाव ११. जबरदस्त १२. भावों का नशा १३. आत्म-विस्मृति १४. सम्बंध १५. तात्कालिक १६. कटना, टूटना १७. विशृंखलता १८. पूर्ण रूपेण १९. निष्क्रिय होना।

* ७ अप्रैल १९१६ को हुकूमते-बंगाल ने डिफेंस आर्डिनेंस के मातहत मुझे बंगाल से ख़ारिज कर दिया था। मैं राँची गया और शहर के बाहर मूर आबादी में मुक़ीम हो गया। फिर कुछ दिनों के बाद मरकज़ी (केंद्रीय) हुकूमत ने वहीं क़ैद कर दिया और उसका सिलसिला १९२० तक जारी रहा।

खींच न सकी। कलकत्ते से बइत्मीनाने-तमाम निकला और रांची में शहर के बाहर एक ग़ैर-आबाद हिस्से में मुक़ीम हो गया। लेकिन फिर ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गये तबीयत कीं बेपरवाइयाँ जवाब देने लगीं और सूरते-हाल का एक-एक काँटा पहलुये-दिल में चुभने लगा। यही वक़्त था जब मुझे अपनी तबीयत की इस इनफ़िआली[1] हालत का मुक़ाबला करना पड़ा और एक ख़ास तरह का साँचा उसके लिए ढालना पड़ा। उस वक़्त से लेकर आज तक कि छब्बीस बरस गुज़र चुके, वही साँचा काम दे रहा है, और अब इस क़दर पुख़्ता हो चुका है कि टूट जा सकता है मगर लचक नहीं खा सकता।

तालिबइल्मी के ज़माने से फ़िलसफ़ा मेरी दिलचस्पी का ख़ास मौज़ू[2] रहा है। उम्र के साथ-साथ यह दिलचस्पी भी बराबर बढ़ती गई। लेकिन तजरुबे से मालूम हुआ कि अमली ज़िन्दगी की तल्ख़ियाँ[3] गवारा[4] करने में फ़िलसफ़े से कुछ ज्यादा मदद नहीं मिल सकती। यह बिला शुबहा तबीयत में एक तरह की रवाक़ी (Stoical) बेपरवाई पैदा कर देता है और हम ज़िन्दगी के हवादिस ओ आलाम[5] को आम सतह से कुछ बुलंद होकर देखने लगते हैं। लेकिन इससे ज़िन्दगी के तबई[6] इन्फिआलात की गुत्थियाँ सुलझ नहीं सकतीं। यह हमें एक तरह की तसकीन[7] ज़रूर दे देता है लेकिन उसकी तसकीन सर-ता-सर सलबी[8] तसकीन होती है। ईजाबी[9] तसकीन से उसकी झोली हमेशा ख़ाली रही। यह फ़ुक़दान[10] का अफ़सोस कम कर देगा लेकिन हासिल की कोई उम्मीद नहीं दिलायेगा। अगर हमारी राहतें हमसे छीन ली गई हैं तो फ़िलसफ़ा हमें क़लैला ओ दमना (पंचतंत्र) की दानिश आमोज़ चिड़िया की तरह नसीहत करेगा "ला तास अला माफ़ात" जो कुछ खो चुका उस पर अफ़सोस न कर। लेकिन क्या इस खोने के साथ कुछ पाना भी है? इस बारे में वो हमें कुछ नहीं बतलाता। क्योंकि बतला सकता ही नहीं। और इसलिए ज़िन्दगी की तल्ख़ियाँ गवारा करने के लिए सिर्फ़ उसका सहारा काफ़ी न हुआ।

साइंस आलमे-महसूसात[11] की साबित शुदा[12] हक़ीक़तों से हमें आश्ना[13] करता है और माद्दी[14] ज़िंदगी की बेरहम जबरिय्यत[15] की ख़बर देता है। इसलिए अक़ीदे[16] की तसकीन उसके बाज़ार में भी नहीं मिल सकती। वो यक़ीन और उम्मीद के सारे पिछले चिराग़ गुल कर देगा मगर कोई नया चिराग़ रोशन नहीं करेगा।

---

१. प्रतिक्रिया २. विषय ३. कटुता ४. सहन करने में ५. दुख और पीड़ा ६. स्वाभाविक प्रतिक्रिया ७. ढाढ़स ८. नकारात्मक ९. स्वीकारात्मक १०. अभाव ११. चराचर जगत १२. प्रमाणित १३. परिचित १४. पार्थिव, जड़ १५. श्रद्धा १६. मजबूरी।

फिर अगर हम ज़िंदगी की नागवारियों में सहारे के लिये नज़र उठायें तो किसकी तरफ़ उठायें ?

कौन ऐसा है जिसे दस्त हो दिलसाज़ी में ?
शीशा टूटे तो करें लाख हुनर से पैवंद !

हमें मज़हब की तरफ़ देखना पड़ता है। यही दीवार है जिससे एक दुखती हुई पीठ टेक लगा सकती है :

दिले-शिकस्ता दरां कूचा मीकुनंद दुरुस्त
चुनां कि ख़ुद नशनासी कि अज़ कुजा बशिकस्त ।[1]

बिला शुबहा मज़हब की वो पुरानी दुनिया जिसकी माफ़ौक़लफ़ितरत[2] कारफ़रमाइयों का यक़ीन हमारे दिल ओ दिमाग़ पर छाया रहता था, अब हमारे लिये बाक़ी नहीं रही। अब मज़हब भी हमारे सामने आता है तो अक़लियत[3] और मंतिक़[4] की एक सादा और बेरंग चादर ओढ़कर आता है। और हमारे दिलों से ज्यादा हमारे दिमाग़ों को मुख़ातिब करना चाहता है। ताहम अब भी तसकीन और यक़ीन का सहारा मिल सकता है तो इसीसे मिल सकता है :

दरे-दीगरे बनुमा कि मन बकुजा रवम चु बर आनेम ?[5]

फ़िलसफ़ा शक का दरवाज़ा खोल देगा फिर उसे बंद नहीं कर सकेगा। साइंस सबूत दे देगा मगर अक़ीदा नहीं दे सकेगा। लेकिन मज़हब हमें अक़ीदा दे देता है अगरचे सबूत नहीं देता। और यहाँ ज़िंदगी बसर करने के लिये सिर्फ़ साबितशुदा हक़ीक़तों[6] ही की ज़रूरत नहीं है बल्कि अक़ीदे की भी ज़रूरत है। हम सिर्फ़ उन्हीं बातों पर क़नाअत[7] नहीं कर ले सकते जिन्हें साबित कर सकते हैं और इसलिये मान लेते हैं। हमें कुछ बातें ऐसी भी चाहियें जिन्हें साबित नहीं कर सकते मगर मान लेना पड़ता है।

By faith, and faith alone embrace
Believing, where we cannot prove.

आम हालात में मज़हब इंसान को उसके ख़ानदानी विरसे[8] के साथ मिलता है। और मुझे भी मिला। लेकिन मैं मौरूसी अक़ायद पर क़ानिअ[9] न रह सका। मेरी प्यास उससे ज़्यादा निकली जितनी सैराबी[10] वो दे सकते थे। मुझे पुरानी राहों से निकलकर ख़ुद अपनी नई राहें ढूंढनी पड़ीं। ज़िंदगी के अभी

---

१. टूटे हुये दिल उस कूचे में ठीक करते हैं और ऐसा ठीक करते हैं कि तुम ख़ुद नहीं पहचान सकते कि कहाँ से टूटा था। २. प्रकृति से ऊपर ३. बुद्धिवाद ४. तर्क ५. कोई दूसरा दरवाज़ा दिखा कि जब ऊपर आवें तो हम कहाँ जायें ? ६. तथ्य ७. संतोष ८. उत्तराधिकार ९. १०. तृप्ति ।

पंद्रह बरस भी पूरे नहीं हुये थे कि तबीयत नई ख़लिशों[1] और नई जुस्तजूओं से आश्ना हो गई थी और मौरूसी अक़ायद जिस शक्ल ओ सूरत में सामने आ खड़े हुये थे उन पर मुतमयिन[2] होने से इंकार करने लगी थी। पहले इस्लाम के अंदरूनी मज़ाहिब[3] के इख़्तलाफ़ात[4] सामने आये और उनके मुतारिज़[5] दावों और मुतसादिम[6] फ़ैसलों ने हैरान ओ सरगश्ता[7] कर दिया। फिर जब कुछ क़दम आगे बढ़े तो ख़ुद नफ़्से-मज़हब[8] की आलमगीर[9] निज़ाओं[10] सामने आ गईं और उन्होंने हैरानगी को शक तक और शक को इंकार तक पहुँचा दिया। फिर इसके बाद मज़हब और इल्म की बाहमी आवेज़िशों[11] का मैदान नमूदार हुआ और उसने रहा सहा ऐतक़ाद भी खो दिया। ज़िंदगी के वो बुनियादी सवाल जो आम हालात में बहुत कम हमें याद आते हैं, एक एक करके उभरे और दिल व दिमाग़ पर छा गये। हक़ीक़त क्या है और कहाँ है? और है भी या नहीं? अगर है और एक ही है क्योंकि एक से ज्यादा हक़ीक़तें हो नहीं सकतीं, तो फिर रास्ते मुख़्तलिफ़[12] क्यों हुये? क्यों सिर्फ़ मुख़्तलिफ़ ही नहीं हुये बल्कि बाहम मुतारिज़ और मुतसादम हुये? फिर यह क्या है कि ख़िलाफ़ ओ निज़ाअ की इन तमाम लड़ती हुई राहों के सामने इल्म अपने बेलचक फ़ैसलों और ठोस हक़ीक़तों का चिराग़ हाथ में लिये खड़ा है और उसकी बेरहम रोशनी में क़दामत[13] ओ रवायत[14] की वो तमाम पुर असरार[15] तारीकियाँ[16] जिन्हें नौए-इंसानी[17] अज़मत[18] ओ तक़दीस[19] की निगाह से देखने की ख़ूगर[20] हो गई थी, एक एक करके नाबूद हो रही हैं!

यह राह हमेशा शक से शुरू होती है और इंकार पर ख़त्म होती है। और अगर क़दम उसी पर रुक जाये तो फिर मायूसी[21] के सिवा और कुछ हाथ नहीं आता:

थक थक के हर मुक़ाम पर दो चार रह गये
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें!

मुझे भी इन मंज़िलों से गुज़रना पड़ा। मगर मैं रुका नहीं। मेरी प्यास मायूसी पर क़ानिअ[22] होना नहीं चाहती थी। बिल आख़िर हैरानगियों और सरगश्तियों के बहुत से मरहले[23] तै करने के बाद जो मुक़ाम नमूदार हुआ,

---

१. चुभन २. संतुष्ट ३. मज़हब का बहुवचन ४. विरोध ५. विरोधी, एक दूसरे से प्रतिकूल ६. विरोधी ७. परेशान ८. धर्म की आत्मा ९. विश्वव्यापी १०. झगड़े, लड़ाइयाँ ११. संबंध १२. भिन्न भिन्न १३. प्राचीनता १४. रूढ़ि १५. भेद भरी १६. अंधकार १७. मनुष्य १८. गरिमा १९. पाक पुनीत २०. अभ्यस्त २१. निराशा २२. संतुष्ट २३. मंज़िल।

उसने एक दूसरे ही आलम में पहुँचा दिया। मालूम हुआ कि इख़्तिलाफ़[1] ओ निज़ाअ की इन्हीं मुतारिज़[2] राहों और औहाम[3] ओ ख़यालात की इन्हीं गहरी तारीकियों के अंदर एक रोशन और क़तई राह भी मौजूद है जो यक़ीन और ऐतक़ाद[4] की मंज़िले-मक़सूद तक चली गई है। और अगर सुकून[5] ओ तमानियत[6] के सरचश्मे का सुराग़ मिल सकता है तो वहीं मिल सकता है। मैंने जो ऐतक़ाद हक़ीक़त की जुस्तजू में खो दिया था, वो उसी जुस्तजू के हाथों फिर वापिस मिल गया। मेरी बीमारी की जो इल्लत[7] थी वही बिलआख़िर दारूये-शिफ़ा[8] भी साबित हुई :

तदावैतु मिन् लैला बिलैला अनिलहवा
कमा मतदावि शारिबुल ख़म्रे बिलख़म्रि।[9]

अलबत्ता जो अक़ीदा[10] खो दिया था वो तक़लीदी[11] था और जो अक़ीदा अब पाया वो तहक़ीक़ी[12] था :

राहे कि ख़िज़्र दाश्त ज़ सरचश्मा दूर बूद
लबे-तश्नगी ज़ राहे दिगर बुर्दा अम मा![13]

जब तक मौरूसी अक़ायद[14] के जुमूद[15] और तक़लीदी[16] ईमान की चश्मबंदियों की पट्टियाँ हमारी आँखों पर बँधी रहती हैं हम उस राह का सुराग़ नहीं पा सकते। लेकिन ज्यों ही ये पट्टियाँ खुलने लगती हैं, साफ़ दिखाई देने लगता है कि राह न तो दूर थी और न खोई हुई थी। यह ख़ुद हमारी चश्मबंदी थी जिसने ऐन रोशनी में गुम कर दिया था :

बर वस्ले-आरज़ू न बुवद बीमे-दाम ओ दद[17]
राहें स्त ईं कि हम ज़ तू ख़ेज़द बलाये-तू।

---

१. विरोध और झगड़ा २. विरोधी ३. वहम का बहुवचन, संदेह ४. श्रद्धा ५. शांति ६. इत्मीनान, संतोष ७. बीमारी का कारण ८. स्वास्थ्यप्रद दवा ९. मैंने लैला के प्रेम के रोग की दवा लैला के प्रेम ही से की, जिस तरह शराब पीनेवाला अपनी दवा शराब ही से करता है। १०. विश्वास ११. अनुकरण का १२. समझ बूझ का, सच्चा। १३. ख़िज़्र एक पैगंबर का नाम है और कहते हैं कि वे अमर हैं। और यह भी किंवदंती है कि जिस राह से वे गुज़र जाते हैं उस राह को सरसब्ज़ कर देते हैं। शेर का मतलब है कि ख़िज़्र की राह स्रोत के उद्गम से दूर थी, लेकिन मेरी प्यास मुझे दूसरी राह ले गई। १४. विश्वास १५. जमाव १६. अनुकरण का। १७. आशारूपी वन में चरिंदों और दरिंदों का डर नहीं होता; यह तो वह राह है कि ख़ुद तुझसे ही तेरी बलायें पैदा होती हैं।

अब मालूम हुआ कि आज तक जिसे मज़हब समझते आये थे, वो मज़हब कहाँ था ? वो तो ख़ुद हमारी ही वहम परस्तियों[1] और ग़लत अंदेशियों[2] की एक सूरतगरी[3] थी :

ता बग़ायत मा हुनर पिंदाश्तेम
आशिक़ी हम नंग ओ आरे बूदा अस्त[4]

एक मज़हब तो मौरूसी मज़हब है कि बाप दादा जो कुछ मानते आये हैं मानते रहिये। एक जुग़राफ़ियायी मज़हब है कि ज़मीन के किसी ख़ास टुकड़े में एक शाहराहे-आम बन गई है। सब उसी पर चलते हैं, आप भी चलते रहिये। एक मर्दुमशुमारी का मज़हब है कि मर्दुमशुमारी के काग़ज़ात में एक ख़ाना मज़हब का होता है, उसमें इस्लाम दर्ज करा दीजिये। एक रस्मी मज़हब है कि रस्मों और तक़रीबों[5] का एक साँचा ढल गया है। उसे न छेड़िये और उसी में ढलते रहिये। लेकिन इन तमाम मज़हबों के अलावा भी मज़हब की एक हक़ीक़त बाक़ी रह जाती है। तारीफ़ ओ इम्तियाज़[6] के लिये उसे हक़ीक़ी मज़हब के नाम से पुकारना पड़ता है, और इसी की राह गुम हो जाती है :

हमीं वरक़ कि सियह गश्त, मुद्दआ ईं जा स्त ![7]

इसी मुक़ाम पर पहुँचकर यह हक़ीक़त भी बेनक़ाब हुई कि इल्म और मज़हब की जितनी निज़ाअ है फ़िलहक़ीक़त इल्म और मज़हब की नहीं हैं। मुद्दइयाने-इल्म[8] की ख़ामकारियों[9] और मुद्दइयाने-मज़हब की ज़ाहिर-परस्तियों[10] और क़वायद साज़ियों[11] की है। हक़ीक़ी इल्म और हक़ीक़ी मज़हब अगरचे चलते हैं अलग अलग रास्तों से मगर बिलआख़िर पहुँच जाते हैं एक ही मंज़िल पर :

इबारातुन शत्ता व हुस्नुक वाहिदुन
व कुल्लुन इला ज़ाकल जमालि युशिरु[12]

इल्म आलमे-महसूसात[13] से सरोकार रखता है, मज़हब मावराये-महसूसात[14] की ख़बर देता है। दोनों में दायरों का तअद्दुद[15] हुआ, मगर तआरुज़[16]

---

१. मिथ्या परायणता २. ग़लत धारणा ३. नक़्क़ाशी ४. हमने पूर्ण रूप से विद्या और हुनर सीखा तब तक इश्क़ भी लज्जा और शर्म का कारण बना हुआ था। ५. त्यौहार ६. पहचान ७. यही पृष्ठ जो कि काला पड़ गया है मुद्दे की बात यहीं पर है। ८. ज्ञान के झूठे हामी ९. कचाई १०. आडंबर पूजा ११. नियमादि बनाने की १२. भाषायें या बोलियाँ अनेक हैं और उसका रूप एक है, और सब अपनी-अपनी भाषा में उसी की तरफ़ इशारा कर रहे हैं। १३. अनुभूति की दुनिया १४. अनुभूति से परे या ज्ञानातीत १५. फ़र्क़ १६. विरोध।

नहीं हुआ। जो कुछ महसूसात से मावरा[1] है हम उसे महसूसात से मुआरिज़[2] समझ लेते हैं और यहीं से हमारे दीदये-कजअंदेश की सारी दरमांदगियां[3] शुरू हो जाती हैं :

बर चेहरये-हक़ीक़त अगर मांद पर्दये
जुर्मे-निगाहे-दीदये-सूरतपरस्ते-मा स्त[4]

बहर हाल ज़िंदगी की नागवारियों में मज़हब की तसकीन सिर्फ़ एक सलबी[5] तसकीन ही नहीं होती बल्कि ईजाबी[6] तसकीन होती है। क्योंकि वो हमें आमाल[7] के अख़लाक़ी अक़दार का यक़ीन दिलाता है, और यही यक़ीन है जिसकी रोशनी किसी दूसरी जगह से नहीं मिल सकती। वो हमें बतलाता है कि ज़िंदगी एक फ़रीज़ा[8] है जिसे अंजाम देना चाहिये, एक बोझ है जिसे उठाना चाहिये :

जलवये कारवाने-मा नेस्त बनालये-जरस
इश्क़े-तू राह मीबुरद, शौक़े-तो ज़ाद मीदिहद[9]

लेकिन क्या यह बोझ कांटों पर चले बग़ैर नहीं उठाया जा सकता ?

नहीं उठाया जा सकता। क्योंकि यहां ख़ुद ज़िंदगी के तक़ाज़े हुये जिनका हमें जवाब देना है, और ख़ुद ज़िंदगी के मक़ासिद हुये जिनके पीछे वालिहाना[10] दौड़ना है। जिन बातों को हम ज़िंदगी की राहतों और लज्ज़तों से ताबीर करते हैं वो हमारे लिये राहतें और लज्ज़तें ही कब रहेंगी अगर इन तक़ाज़ों और मक़सदों से मुंह मोड़ लें ? बिला शुबहा यहां ज़िंदगी का बोझ उठा के कांटों के फ़र्श पर दौड़ना पड़ा लेकिन इसलिये दौड़ना पड़ा कि दीबा[11] व मख़मल के फ़र्श पर चल कर उन तक़ाज़ों का जवाब दिया नहीं जा सकता था। कांटे कभी दामन में उलझेंगे, कभी तलवों में चुभेंगे लेकिन मक़सद की ख़लिश जो पहलुये-दिल में चुभती रहेगी, न दामने-तार तार की ख़बर लेने देगी, न ज़ख़्मी तलवों की :

१. परे २. विरोधी ३. परेशानियां ४. अगर हक़ीक़त के चेहरे पर एक पर्दा पड़ा रहा तो यह हमारी (बाह्य) रूप उपासक आँखों की दृष्टि का दोष है। ५. नकारात्मक ६. स्वीकारात्मक ७. कर्म ८. कर्तव्य ९. हमारे कारवां का प्रदर्शन उसके घंटे की आवाज़ से नहीं है बल्कि तेरा प्रेम ही हमें राह पर ले चलता है और तेरे लिये जो अटूट भक्ति है वही राह के संबल का काम देती है। १०. पागलों की तरह ११. एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा।

माशूक़ दर मयानये-आं मुद्दश्री कुजा स्त
गुल दर दिमाग़ मीदमद, ग्रासेबे-ख़ार चीस्त ?[१]

ग्रौर फिर ज़िंदगी की जिन हालतों को हम राहत ग्रो ग्रलम[२] से ताबीर करते हैं, उनकी हक़ीक़त भी इससे ज्यादा क्या हुई कि इज़ाफ़त[३] के करिश्मों की एक सूरतगरी है ? यहाँ न मुतलक़[४] राहत है, न मुतलक़ ग्रलम। हमारे तमाम ग्रहसासात[५] सर-ता-सर[६] इज़ाफ़ी[७] हैं :

दवीदन, रफ़्तन, इस्तादन, निशस्तन, ख़ुफ़्तन ग्रो मुर्दन[८] !

इज़ाफ़तें बदलते जाग्रो, राहत ग्रौर ग्रलम की नौग्रियतें[९] भी बदलती जायेंगी। यहाँ एक ही तराज़ू लेकर हर तबीयत ग्रौर हर हालत का ग्रहसास नहीं तोला जा सकता। एक दहक़ां[१०] की राहत ग्रो ग्रलम तौलने के लिये जिस तराज़ू से हम काम लेते हैं, उससे फ़नूने-लतीफ़ा[११] के एक माहिर[१२] का मैयारे-राहत[१३] ग्रो ग्रलम नहीं तौल सकेंगे। एक रियाज़ीदां[१४] को रियाज़ी का एक मसला हल करने में जो लज्ज़त मिलती है वो एक हवस-परस्त[१५] को शबिस्ताने-इशरत[१६] की सियह्-मस्तियों[१७] में कब मिल सकेगी ? कभी ऐसा होता है कि हम फूलों की सेज पर लोटते हैं ग्रौर राहत नहीं पाते, कभी ऐसा होता है कि काँटों पर दौड़ते हैं ग्रौर उसकी हर चुभन में राहत ग्रो सुरूर[१८] की एक नई लज्ज़त पाने लगते हैं :

बहरे-यक गुल ज़हमते-सद ख़ार मीबायद कशीद ![१९]

राहत ग्रो ग्रलम का ग्रहसास हमें बाहर से लाकर कोई नहीं दे दिया करता। यह ख़ुद हमारा ही ग्रहसास है जो कभी ज़ख़्म लगाता है, कभी मरहम बन जाता है। तलब ग्रो सग्री[२०] की ज़िंदगी बजाये-ख़ुद[२१] ज़िंदगी की सबसे बड़ी लज्ज़त है, बशर्ते कि किसी मतलूब[२२] की राह में हो :

१. माशूक़ तो प्राणों में बसी हुई है उसका मुद्दग्री याने दावेदार कहाँ है, फूल तो दिमाग में उग रहा है फिर काँटे की पीड़ा कैसी ? २. पीड़ा ३. सापेक्षता ४. पूर्ण ५. ग्रनुभूतियाँ ६. ग्रादि से ग्रंत तक ७. सापेक्ष ८. दौड़ना, चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना ग्रौर मर जाना यही ज़िंदगी है। ९. प्रकार १०. ग्रामीण ११. ललित कला १२. प्रवीण १३. सुख दुख का स्तर १४. गणितज्ञ १५. विषय लोलुप १६. ऐश ग्रो इशरत की हरमसरा १७. रंगरलियाँ १८. ग्रानंद १९. एक फूल के लिये सौ काँटों की ज़हमत या पीड़ा भुगतनी पड़ती है। २०. प्राप्ति ग्रौर प्रयत्न २१. ग्रपने ग्राप में २२. उद्देश्य।

रहरवांरा ख़स्तगीये-राह नेस्त
इश्क़ हम राह स्त ओ हम ख़ुद मंज़िल स्त ![1]

और यह जो कुछ कह रहा हूँ फ़िलसफ़ा नहीं है। ज़िंदगी के आम वारदात हैं। इश्क़ ओ मुहब्बत के वारदात का मैं हवाला नहीं दूंगा। क्योंकि वो हर शख़्स के हिस्से में नहीं आ सकते। लेकिन रिंदी[2] और हवसनाकी[3] के कूचों की ख़बर रखनेवाले तो बहुत निकलेंगे, वो ख़ुद अपने दिल से पूछ देखें कि किसी राह में रंज ओ अलम की तल्ख़ियों ने कभी ख़ुशगवारियों के मज़े भी दिये थे या नहीं ?

हरीफ़े - काविशे - मिज़गाने - ख़ूंरेज़श नई नासह
बदस्त आवर रगे-जाने ओ निश्तर रा तमाशा कुन ![4]

ज़िंदगी बग़ैर किसी मक़सद के बसर नहीं की जा सकती। कोई अटकाव, कोई लगाव, कोइ बंधन होना चाहिये जिसकी ख़ातिर ज़िंदगी के दिन काटे जा सकें। यह मक़सद मुख़्तलिफ़ तबीयतों के सामने मुख़्तलिफ़ शक्लों में आता है।

ज़ाहिद बनमाज़ ओ रोज़ा ज़ब्ते दारद
सरमद ब मय ओ पयाला रब्ते दारद।[5]

कोई ज़िंदगी की कारबरदारियों[6] ही को मक़सदे-ज़िंदगी समझकर उन पर क़ानिअ[7] हो जाता है। कोई उन पर क़ानिअ नहीं हो सकता। जो क़ानिअ नहीं हो सकते उनकी हालतें भी मुख़्तलिफ़ हुईं। अकसरों की प्यास ऐसे मक़सदों से सैराब[8] हो जाती है जो उन्हें मशग़ूल[9] रख सकें। लेकिन कुछ तबीयतें ऐसी भी होती हैं जिनके लिये मशग़ूलियत काफ़ी नहीं हो सकती। वो ज़िंदगी का इज़्तिराब[10] भी चाहती है :

न दाग़े-ताज़ा मीकारद, न-ज़ख़्मे कुहना मीख़ारद
बिदह या रब दिले कीं सूरते-बेजां नमीख़्वाहम।[11]

---

१. (प्रेम) पथगामियों के लिये पथ की थकन नहीं है, प्रेम ख़ुद राह भी है और गंतव्य भी है २. उच्छृंखलता ३. विषय लोलुपता ४. ओ उपदेशक ! तू उसकी ख़ूंरेज़ पलकों की खोज करनेवाला साथी नहीं है। अपनी जान की एक रग हाथ में ले और फिर नश्तर का तमाशा देख कि पीड़ा में क्या आनंद है। ५. ज़ाहिद नमाज़ और रोज़े से ताल्लुक़ रखता है और सरमद शराब और प्याले से संबंध रखता है ६. कर्मठता ७. संतुष्ट ८. तृप्त ९. प्रवृत्त १०. तड़प ११. न तो कोई नया दाग़ लगता है और कोई पुराना ज़ख़्म खुजाता है; अय मेरे मालिक एक दिल दे कि इस प्राणहीन स्थिति को नहीं चाहता।

पहलों के लिये जो दिलबस्तगी[1] इसमें हुई कि मशगूल रहें, दूसरों के लिये इसमें हुई कि मुज़्तरिब रहें :

दरीं चमन कि हवा दाग़े-शबनम[2] आराई स्त
तसल्लिये[3] ब हज़ार इज़्तिराब मीबाफ़ंद !

एक खुनक[4] और नाम्राश्नाये-शोरिश मक़सद[5] से उनकी प्यास नहीं बुझ सकती। उन्हें ऐसा मक़सद चाहिए जो इज़्तिराब के अंगारों से दहक रहा हो, जो उनके अंदर शोरिश ओ सरमस्ती का एक तहलका मचा दे। जिसके दामने-नाज़[6] को पकड़ने के लिये वह हमेशा अपना गरेबाने-वहशत[6] चाक करते रहें :

दामन उसका तो भला दूर है अय दस्ते-जुनूं[7]
क्यों है बेकार, गरेबां तो मिरा दूर नहीं।

एक ऐसा बलाये-जां मक़सद, जिसके पीछे उन्हें दीवानावार दौड़ना पड़े। जो दौड़नेवालों को हमेशा नज़दीक भी दिखाई दे और हमेशा दूर भी होता रहे। नज़दीक इतना कि जब चाहें हाथ बढ़ाकर पकड़ लें। दूर इतना कि उसकी गर्दे-राह का भी सुराग़ न पा सकें :

बा मन आवेज़िशे—ऊ उल्फ़ते-मौज स्त ओ कनार
दम बदम बा मन, ओ हर लहज़ा गुरेज़ां अज़ मन ![8]

फिर नफ़्सयाती[9] नुक़्ते-निगाह[10] से देखिये तो मुआमले का एक और पहलू भी है जिसे सिर्फ़ तह-रस[11] निगाहें ही देख सकती हैं। यकसानी[12] अगरचे, सुकून ओ राहत[13] की हो, यकसानी हुई। और यकसानी बजाये-खुद ज़िंदगी की सबसे बड़ी बेनमकी[14] है। तबदीली अगरचे सुकून से इज़्तिराब[15] की हो, मगर फिर तबदीली है, और तबदीली बजाये-खुद ज़िंदगी की एक बड़ी लज़्ज़त हुई। अरबी में कहते हैं "हम्मिजू मजालिसकुम" अपनी मजलिसों का ज़ायक़ा बदलते रहो।

१. दिल लगाव २. इस चमन या दुनिया में हवा पर भी शबनम या ओस पैदा करने का दाग़ है। यहाँ पर तसल्ली को भी हज़ारों परेशानियों से बुनते हैं। अर्थात तसल्ली यही है कि किसी काम में मशग़ूल रहें। ३. ठंडी ४. जोश से अपरिचित उद्देश्य ५. नाज़ का पल्ला ६. पागलपन का गरेबान ७. पागल हाथ ८. मेरे साथ उसका संबंध उसी प्रकार का है जैसा कि लहर और किनारे की उल्फ़त है। हर क्षण वह मेरे साथ भी है और हर क्षण मुझ से दूर भी है। ९. मानस शास्त्र १०. दृष्टिकोण ११. सूक्ष्मदर्शी, तह तक पहुँचने वाली। १२. Monotony १३. शांति और सुख १४. नीरसता १५. बेचैनी।

सो यहाँ ज़िंदगी का मज़ा भी उन्हीं को मिल सकता है जो उसकी शीरीनियों[1] के साथ उसकी तल्ख़ियों के भी घूँट लेते रहते हैं, और इस तरह ज़िंदगी का ज़ायक़ा बदलते रहते हैं। वरना वो ज़िंदगी ही क्या जो एक ही तरह की सुबहों और एक ही तरह की शामों में बसर होती रहे? ख़्वाजा दर्द क्या ख़ूब कह गये हैं :

आ आये ऐसे जीने से अपना तो जी बतंग
आख़िर जीयेगा कब तलक अय ख़िज़्र[2]? मर कहीं!

यहाँ पाने का मज़ा उन्हीं को मिल सकता है जो खोना जानते हैं। जिन्होंने कुछ खोया ही नहीं उन्हें क्या मालूम कि पाने के मानी क्या होते हैं? नज़ीरी की नज़र इसी हक़ीक़त की तरफ़ गई थी :

आं कि ऊ बर कल्बये-अहज़ां पिसर गुमकर्दा, याफ़्त
तू कि चीज़े गुम न कर्दी, अज़ कुजा पैदा शवद![3]

और फिर ग़ौर ओ फ़िक्र का एक क़दम और आगे बढ़ाइये तो ख़ुद हमारी ज़िंदगी की हक़ीक़त भी हरकत ओ इज़्तिराब के एक तसलसुल[4] के सिवा और क्या है? जिस हालत को हम सुकून से ताबीर करते हैं अगर चाहें तो उसीको मौत से भी ताबीर कर सकते हैं। मौज[5] जब तक मुज़्तरिब[6] है ज़िंदा है। आसूदा[7] हुई और मादूम[8] हुई। फ़ारसी के एक शायर ने दो मिसरों के अंदर सारा फ़िलसफ़ये-हयात[9] ख़त्म कर दिया था :

मौजेम कि आसूदगीये - मा अदमे - मा स्त
मा ज़िंदा अज़ीनेम कि आराम न गीरेम![10]

और फिर यह राह इस तरह भी तय नहीं की जा सकती कि उसके अटकाव के साथ दूसरे लगाव भी लगाये रखिये। राहे-मक़सद की ख़ाक बड़ी ही ग़य्यूर[11] वाक़े हुई है। वह रहरौ[12] की जबीने-नियाज़[13] के सारे सजदे[14] इस तरह खींच लेती है कि फिर किसी दूसरी चौखट के लिए कुछ बाक़ी ही नहीं रहता। देखिये मैंने यह ताबीर ग़ालिब से मुस्तआर ली है :

१. मिठास २. ख़िज़्र एक पैगम्बर का नाम है और कहते हैं कि वो सदा अमर हैं ३. जिन्होंने कि दुख की मढैया में अपना बेटा खो दिया उन्होंने पा लिया। तूने तो कोई चीज़ भी गुम नहीं की फिर कहाँ से मिले। ४. सिलसिला, प्रवाह ५. लहर ६. बेचैन, बेक़रार ७. शांत ८. विनष्ट ९. जीवन-दर्शन १०. हम लहर हैं हमारे लिए शांति मौत है हम इसलिये ज़िंदा हैं कि आराम नहीं करते ११. अभिमानी १२. बटोही १३. श्रद्धापूर्ण पेशानी या मस्तक १४. वंदन।

ख़ाके-कूयश ख़ुद पसंद उफ़्ताद दर अक़्ले-सुजूद
सजदा अज़ बहरे-हरम न गुज़ाश्त बर सीमाये-मन ।[1]

मक़सूद इस तमाम दराज़ नफ़सी से यह था कि आज अपने औराक़े-फ़िक्रे परेशां[2] का एक सफ़हा आपके सामने खोल दूं :

लख़्ते ज़ हाले-ख़्वेश बसीमा नविश्ता अेम ![3]

इस मैक़दये-हज़ार शेवा व रंग[4] में हर गिरफ़्तारे-दामे-तख़य्युल[5] ने अपनी ख़ुदफ़रामोशियों[6] के लिये कोई न कोई जामे-सरशारी[7] सामने रख लिया है और उसी में बेख़ुद रहता है :

साक़ी बहमा बादा बयक ख़ुम दिहद, अम्मा ?
दर मजलिसे-ऊ मस्तिये-हरयक ज़ शराबे स्त[8]

कोई अपना दामन फूलों से भरना चाहता है, कोई कांटों से । और दोनों में से कोई भी पसंद नहीं करेगा कि तिही दामन[9] रहे । जब लोग कामजोइयों[10] और ख़ुशवक़्तियों[11] के फूल चुन रहे थे तो हमारे हिस्से में तमन्नाओं[12] और हसरतों के कांटे आये । उन्होंने फूल चुन लिये और कांटे छोड़ दिये, हमने कांटे चुन लिये और फूल छोड़ दिये :

ज़ ख़ारख़ारे-मुहब्बत बिले-तुरा च ख़बर
कि गुल बजेब न गुंजद क़बाये-तंग तुरा ![13]

अबुलकलाम

१. उसके कूचे की ख़ाक ने ही वंदन की भावना पैदा कर दी फिर मेरे मस्तक में हरम के लिये नतमस्तक होने का भाव तक न छोड़ा २. परेशान फ़िक्रों का पृष्ठ ३. अपनी हक़ीक़त का थोड़ा सा हाल हमने पेशानी पर लिखा है । ४. हज़ार रंग ओ रूप का मयख़ाना अर्थात् दुनिया ५. चिंतन के जाल में फँसा हुआ ६. आत्मविस्मृति ७. लबालब प्याला ८. साक़ी सबको शराब एक ही मटके से देता है, लेकिन उसकी मजलिस में प्रत्येक व्यक्ति की मस्ती और आनंद एक और ही शराब से है । ९. ख़ाली दामन १०. उद्देश्य पूर्ति ११. सौभाग्यशीलता, ख़ुशनसीबी १२. कामनाओं १३. तेरे दिल को मुहब्बत के कँटीले कांटों की क्या ख़बर- क्योंकि तेरी तंग अचकन की जेब में फूल नहीं समाते ।

क़िलआ-अहमदनगर
१५, अगस्त सन् १९४२ ई.

मारा ज़बाने-शिकवा ज़ बेदादे-चर्ख़ नेस्त
अज़ मा ख़ते बमुहरे ख़मोशी गिरफ़्ता अंद[1]

सदीक़े-मुकरम,

वही सुबह चार बजे का जांफ़िज़ा वक़्त है। सुराही लबरेज़ है और जाम आमादा। एक दौर ख़त्म कर चुका हूँ, दूसरे के लिये हाथ बढ़ा रहा हूँ :

दरीं ज़माना रफ़ीक़े कि ख़ाली अज़ ख़लल स्त
सुराहिये-मये-नाब ओ सफ़ीनये-ग़ज़ल स्त
जरीदा रौ कि गुज़रगाहे-आफ़ियत तंग स्त
पयाला गीर, कि उम्रे-अज़ीज़ बेबदल स्त[2]

तबीयत वक़्त की कशाकश[3] से यकक़लम फ़ारिग़[4] और दिल फ़िक्रे-ईं ओ आं[5] से बकुल्ली आसूदा[6] है। अपनी हालत देखता हूँ तो वो आलम दिखाई देता है जिसकी ख़बर ख़्वाजये-शीराज़ ने छह सौ साल पहले दे दी थी। ज़िंदगी के चालीस साल तरह तरह की काविशों[8] में बसर हो गये। मगर अब देखा तो मालूम हुआ कि सारी काविशों का हल इसके सिवा कुछ न था कि सुबह का जांफ़िज़ा वक़्त हो और चीन की बेहतरीन चाय के पै दर पै[9] फ़िंजान[10] !

चल साल रंज ओ ग़ुस्सा कशीदम, ओ आक़बत
तदबीरे-मा बदस्ते-शराबे-दो साला बूद ![11]

१. मुझे बेरहम आसमान से कोई शिकायत नहीं है, मुझसे तो ख़ामोशी की मुहर लगा कर एक सीमा-रेखा खींच दी है। २. इस समय ऐसा कोई साथी जो ख़लल से ख़ाली हो तो वह पवित्र शराब की सुराही और ग़ज़ल की पुस्तिका है। ऐसे में अकेला चल क्योंकि आनन्द की राह बड़ी सकरी है और शराब का प्याला ले कि यह प्यारा जीवन अपरिवर्तनीय है। ३. खींचतान ४. मुक्त ५. इस और उसकी चिंताओं से ६. पूर्णरूपेण ७. निश्चित ८. जुस्तजू, तलाश ९. एक के बाद एक १०. प्याले ११. चालीस साल तक रंज और दुख सहता रहा और आख़िरकार मेरा इलाज दो साल पुरानी शराब के हाथ है यह मालूम हुआ।

आज तीन बजे से कुछ पहले आँख खुल गई थी। सहन में निकला तो हर तरफ़ सन्नाटा था। सिर्फ़ अहाते के बाहर से पहरेदार की गश्त ओ बाज़-गश्त की आवाज़ें आ रही थीं। यहाँ रात को अहाते के अंदर वार्डरों का तीन-तीन घंटे का पहरा लगा करता है, मगर बहुत कम जागते हुये पाये जाते हैं। उस वक़्त भी सामने के बरामदे में एक वार्डर कम्मल बिछाये लेटा था और ज़ोर ज़ोर से ख़र्राटे ले रहा था। बेइख़्तियार मोमिनख़ां का शेर याद आ गया :

है ऐतमाद[1] मिरे बख़्ते-ख़ुफ़्ता पर क्या क्या
वगर ना ख़्वाब कहाँ चश्मे-पासबां[2] के लिये

ज़िंदानियों[3] के इस क़ाफ़िले में कोई नहीं जो सहरख़ेज़ी[4] के मुआमले में मेरा शरीके-हाल[5] हो। सब बेख़बर सो रहे हैं और इसी वक़्त मीठी नींद के मज़े लेते हैं :

दायम कसे बक़ाफ़ला बूदा स्त पासबां
बेदार शौ कि चश्मे-रफ़ीक़ां बख़्वाब शुद[6]

सोचता हूँ तो ज़िंदगी की बहुत सी बातों की तरह इस मआमले में भी सारी दुनिया से उल्टी ही चाल मेरे हिस्से में आई। दुनिया के लिये सोने का जो वक़्त सबसे बेहतर हुआ वही मेरे लिये बेदारी[7] की असली पूंजी हुई। लोग इन घड़ियों को इसलिये अज़ीज़[8] रखते हैं कि मीठी नींद के मज़े लें। मैं इसलिये अज़ीज़ रखता हूं कि बेदारी की तल्ख़कामियों[9] से लज़्ज़तयाब[10] होता रहूं :

ख़ल्क़रा बेदार बायद बूद ज़ आबे-चश्मे-मन
वीं अजब कां दम कि मीगिरियम कसे बेदार नेस्त[11]

एक बड़ा फ़ायदा इस आदत से यह हुआ कि मेरी तनहाई[12] में अब कोई ख़लल नहीं डाल सकता। मैंने दुनिया को ऐसी जुरअतों[13] का सिरे से मौक़ा ही नहीं दिया। वो जब जागती है तो मैं सो रहता हूँ, जब सो जाती है तो उठ बैठता हूँ :

---

१. भरोसा, आशा २. पहरेदार की आंख ३. क़ैदी ४. प्रातः जल्दी उठना ५. साथी ६. क़ाफ़िले में सदा सर्वदा के लिये कोई निगरानी करने वाला हुआ है? इसलिये जागता रह क्योंकि साथियों की आंखें निद्रित हो गई हैं। ७. जागरण ८. प्रिय ९. कटुता १०. आनन्द लेना ११. मेरी आंखों के आंसू से दुनिया को जाग जाना चाहिये था। लेकिन यह अजीब है कि जिस वक़्त मैं रोता चिल्लाता हूँ तो कोई नहीं जाग रहा है। १२. एकांतता १३. हिम्मत।

ख़्वाबे-ग़फ़लत हमारा बुर्दा ओ बेदार यके स्त ![1]

ख़लायक़[2] के कितने ही हुजूम[3] में हूँ लेकिन अपना वक़्त साफ़ बचा ले जाता हूँ। क्योंकि मेरी इस "ख़िलवत-दर अंजुमन"[4] पर कोई हाथ डाल ही नहीं सकता। मेरे ऐश ओ तरब[5] की बज़्म[6] उस वक़्त आरास्ता[7] होती है जब न कोई आँख देखने वाली होती है, न कोई कान सुनने वाला। रज़ी दानिश ने मेरी ज़बान से कहा था :

ख़ुश ज़मज़मये-गोशाये-तनहाइये-ख़ेशम
अज़ जोश ओ ख़रोशे-गुल ओ बुलबुल ख़बरम नेस्त।[8]

एक बड़ा फ़ायदा इससे यह हुआ कि दिल की अँगीठी हमेशा गर्म रहने लगी। सुबह की इस मोहलत में थोड़ी सी आग जो सुलग जाती है उसकी चिंगारियाँ बुझने नहीं पातीं। राख के तले दबी दबाई काम करती रहती हैं :

अज़ां ब देरे-मुग़ानम अज़ीज़ मीदारंद
कि आतिशे कि न मीरद, हमेशा दर दिले-मा स्त[9]

दिन भर अगर सोज़ ओ तपिश[10] का सामान न भी मिले, जब भी चूल्हे के ठंडे पड़ जाने का अंदेशा न रहा। उरफ़ी क्या ख़ूब बात कह गया है :

सीनये गर्म न दारी म-तलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नेस्त चु दर मुजमराअत ऊद म-ख़र।[11]

इस सहरख़ेज़ी की आदत के लिये वालिद मरहूम का मिन्नत-गुज़ार[12] हूँ। उनका मामूल[13] था कि रात की पिछली पहर हमेशा बेदारी में बसर करते। बीमारी की हालत भी इस मामूल में फ़र्क़ नहीं डाल सकती थी। फ़रमाया करते थे कि रात को जल्द सोना और सुबह जल्द उठना ज़िंदगी की सआदत[14] की पहली अलामत[15] है। अपनी तालिबइल्मी[16] के हालात सुनाते कि देहली में

---

१. ग़फ़लत की नींद सबको ले गई और सिर्फ़ एक ही व्यक्ति जाग रहा है। २ सृष्टि, दुनिया ३. भीड़ ४. जग के बीच अकेलापन ५. ख़ुशी और आनन्द ६. महफ़िल ७. सजती है ८. मेरी तनहाई याने एकांतता के कोने का संगीत भी क्या ख़ूब है कि मुझे गुल और बुलबुल के जोश ओ ख़रोश की कुछ भी ख़बर नहीं है ९. मेरे गुरु के आस्ताने में मुझे इसलिये प्रिय समझते हैं कि मेरे दिल में वो आग है जो कभी नहीं बुझती १०. जलने और तापने का ११. तेरा सीना ही गरम नहीं है इसलिये प्रेम की सोहबत की इच्छा मत कर क्योंकि जब तेरी अँगीठी में आग ही नहीं है तब ऊद मत ख़रीद १२. कृतज्ञ १३. नित्य का नियम १४. नेकी १५. पहचान १६. विद्यार्थी जीवन।

मुफ़्ती सदरुद्दीन मरहूम से सुबह की सुन्नत और फ़र्ज़ के दरमियान सबक़ लिया करता था और इस इम्तियाज़[1] पर नाज़ां रहता था। क्योंकि वो चाहते थे, मुझे ख़ुसूसियत[2] के साथ औरों से अलहदा सबक़ दें और इसके लिये सिर्फ़ वही वक़्त निकल सकता था। यह भी फ़रमाते कि यह फ़ैज़[3] मुझे अपने नाना रुक्नुल्मुदर्रसीन से मिला। वो भी शाह अब्दुल अज़ीज़ से अलस्सबाह[4] सबक़ लिया करते थे और पिछले पहर से उठकर इसकी तैयारी में लग जाते थे। फिर ख़्वाजा शीराज़ का यह मक़ता ज़ौक़[5] ले लेकर पढ़ते :

मरौ बख़्वाब कि हाफ़िज़ ब बारगाहे क़ुबूल
ज़ विरदे-नीम शब ओ दर्से-सुबहगाह रसीद[7]

मेरी अभी दस ग्यारह बरस की उम्र होगी कि ये बातें काम कर गई थीं। बचपने की नींद सर पर सवार रहती थी मगर मैं उससे लड़ता रहता। सुबह अँधेरे में उठता और शमादान रोशन करके अपना सबक़ याद करता। बहनों से मिन्नतें किया करता था कि सुबह आँख खुले तो मुझे जगा देना। वो कहती थीं यह नयी शरारत क्या सूझी है। इस ख़याल से कि मेरी सिहत[8] को नुक़सान न पहुँचे, वालिद मरहूम रोकते। लेकिन मुझे कुछ ऐसा शौक़ पड़ गया था कि जिस दिन देर से आँख खुलती दिन भर पशेमां[9] सा रहता था। आने वाली ज़िंदगी में जो मुआमलात पेश आने वाले थे यह उनसे मेरा पहला साबिक़ा था[10] :

अतानी हवाहा क़बल अन्न आरफ़ल हवा
फ़सादफ़ क़ल्बन फ़ारिग़न फ़तमक्कना[11]

देखिये यहाँ "पहला साबिक़ा" लिखते हुये मैंने अरबी की तरकीब "कान अव्वल अहदी बिहा[12]" का बिला क़स्द[13] तरजुमा कर दिया कि दिमाग़ में बसी हुई थी। ये सतरें लिख रहा हूँ और आलमे-तनहाई[14] की ख़िलवत अंदोज़ियों[15] का पूरा पूरा लुत्फ़ उठा रहा हूँ। गोया सारी दुनिया में इस वक़्त मेरे सिवा कोई नहीं बसता। कह नहीं सकता, तनहाई का यह अहसास मेरी

१. फ़र्क़ २. गौरव अनुभव करता था ३. ख़ास तौर से ४. गुण ५. सुबह सबेरे ६. रुचि के साथ ७. ग़फ़लत की नींद में मत सोओ क्योंकि हाफ़िज़ क़बूलियत के दरबार में आधी रात के जप और सुबह के पाठ से पहुँचा है। ८. स्वास्थ ९. खिन्न १०. संबंध ११. मेरी प्रेमिका का प्रेम उस समय मेरे दिल में जागा जब मैं प्रेम को जानता ही नहीं था, तब इस प्रेम ने दिल ख़ाली पाया तो वहीं जम कर बैठ गया १२. पहली मुलाक़ात १३. अनजाने, अनिच्छा से १४. एकांत दुनिया १५. एकांतता।

तबाम्रे-ख़िलवत-परस्त[1] की जौलानियों[2] को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया करता है। बेदिल की खयाल-बंदियों का ग़ुलू[3] बेकैफ़[4] हो लेकिन उसकी बहरे-तवील की बाज़ बाज़ ग़ज़ले कैफ़ से खाली नहीं हैं।

सितम स्त गर हवसत कशद कि ब सैरे-सर्व व समन दर ग्रा
तू ज़ ग़ुंचा कम न दमीदाई, दरे-दिल कुशा, व चमन दर ग्रा
पये-नाफ़हाये ख़ुजिस्ता बू, मपसंद ज़हमते-जुस्तजू
ब ख़याले-हलक़ये-ज़ुल्फ़े-ऊ, गिरहे-ख़ुर ग्रो बख़ुतन दर ग्रा[5]

पांच बजे से क़िले में टैंकों के चलाने की मश्क़[6] शुरू होती है और घर-घर की आवाज़ आने लगती है, मगर उसमें अभी देर है। चार बजे दूध की लारी आती है और चंद लमहों के लिये सुब्ह का सुकून हंगामे से बदल देती है। वो अभी चंद मिनट हुये आई थी और वापस गई अगर इस वक़्त के सन्नाटे में कोई आवाज़ मुख़िल[7] हो रही है तो वो सिर्फ़ जवाहरलाल के हल्के खर्राटों की आवाज़ है। वो हमसाये[8] में सो रहे हैं। सिर्फ़ लकड़ी का एक पर्दा हायल है। खर्राटे जब थमते हैं तो हस्बे-मामूल[9] नींद में बड़बड़ाने लगते हैं। यह बड़बड़ाना हमेशा अंग्रेज़ी में होता है :

यारे-मा ईं दारद ग्रो ग्रां नीज़ हम ![10]

मौतमनुद्दौला इसहाक़ ख़ां शूस्तरी मुहम्मदशाही उमरा में से था। उसका एक मतला आपने तज़किरों में देखा होगा। ज़िलाजुगत की सनग्रतगरी[11] के सिवा कुछ नहीं है। मगर जब कभी जवाहरलाल को अंग्रेज़ी में बड़बड़ाते हुए सुनता हूँ तो बेइख़्तियार याद आ जाता है :

ज़ बस कि दर दिले-तंगम ख़याले-ग्रां गुल बूद
नफ़ीरे-ख़्वाबे-मन इमशब सफ़ीरे बुलबुल बूद[12]

---

१. एकांत प्रियता की प्रकृति २. उमंग ३. अतिशयोक्ति ४. बेमज़ा ५. यह कितने अफ़सोस की बात है कि अगर तेरी यह इच्छा तुझे सर्व और समन की सैर के लिये खींच रही है तू खुद कली से कम नहीं है, तू दिल का दरवाज़ा खोल और उस चमन की सैर कर। उस तेज़ गंध मृगनाभि की खोज के लिये मेहनत मत कर, (बल्कि) उस प्रीतम की ज़ुल्फ़ों के हल्के के खयाल में एक गाँठ बना और खुतन में आ। खुतन एक शहर का नाम है जहाँ से कस्तूरी आती है ६. अभ्यास ७. खलल अंदाज़ ८. पड़ौस ९. हमेशा की रीति की तरह १०. मेरे यार में ये गुण हैं और वो गुण भी हैं ११. कारीगरी १२. मेरे तंग दिल में उस प्रीतम का (गुल) बेहद खयाल था इसीलिये आज की रात मेरे ख़्वाब की नफ़ीरी से बुलबुल की आवाज़ें आ रही थीं।

यह नींद में बड़बड़ाने की हालत भी अजीब है। यह अमूमन[1] उन्हीं तबीयतों पर तारी[2] होती है जिनमें दिमाग़ से ज़्यादा जज़बात[3] काम किया करते हैं। जवाहरलाल की तबीयत भी स-ता-सर[4] जज़बाती वाक़े हुई है। इसलिए ख़्वाब और बेदारी दोनों हालतों में जज़बात काम करते रहते हैं।

यहाँ आये हुए एक हफ़्ते से ज़्यादा हो गया है। फ़ौजी सीग़े[5] ने हमारा चार्ज ले लिया, दाख़िले के वक़्त फ़हरिस्त से मुक़ाबला कर लिया, हमारी हिफ़ाजत का और दुनिया से बेतअल्लुक़ी का जिस क़दर बंदोबस्त किया जा सकता था, वो भी कर लिया। लेकिन इससे ज़्यादा उन्हें हमारे मुआमलात से कोई सरोकार मालूम नहीं होता। अंदर का तमाम इंतज़ाम गवर्नमेंट बम्बई के होम डिपार्टमेंट ने बराहे-रास्त[6] अपने हाथ में रखा है। और असली रिश्तये-कार[7] मरकज़ी[8] हुकूमत के हाथ में है।

हमें यहाँ रखने के लिए जो इब्तदाई[9] इंतज़ाम किया गया था, वो यह था कि गिरफ़्तारी से एक दिन पहले याने ८ अगस्त को यरवदा सेंट्रल जेल पूना से एक सीनियर जेलर यहाँ भेज दिया गया। दस जेल के वार्डर और पंद्रह क़ैदी कामकाज के लिए उसके साथ आये। जेलर को कुछ मालूम न था कि क्या सूरते-हाल[10] पेश आने वाली है। सिर्फ़ इतनी बात बतलाई गई थी कि एक डिटेंशन कैम्प खुल रहा है। चंद दिनों के लिए देख भाल करनी होगी। हम पहुँचे तो मुआमला एक दूसरी ही शक्ल में नुमायां[11] हुआ और बेचारा सरासीमा[12] होकर रह गया। चूँकि मैंने यहाँ आते ही अपना गुस्सा उस ग़रीब पर निकाला था इसलिए कई दिन तक मुँह छिपाये फिरता रहा। जब और कुछ न बनती तो ज़िले के कलक्टर के पास दौड़ा हुआ जाता। वो उससे ज़्यादा बेख़बर था।

दरे-हर कस कि ज़दम, बेख़बर ओ ग़ाफ़िल बूद[13]

दूसरे दिन कलक्टर और सिविल सर्जन आये और माज़रत[14] करके चले गये। सिविल सर्जन हर शख़्स का सीना ठोक बजाकर देखता रहा कि क्या आवाज़ निकलती है? मालूम नहीं फेफड़ों की हालत मालूम करना चाहता था या दिलों की। मुझसे भी मुआयने की दरख़्वास्त की। मैंने कहा—मेरा सीना देखना बेसूद[15] है। अगर दिमाग़ के देखने का कोई आला[16] साथ है तो उसे काम में लाइये :

---

१. आम तौर पर २. छाना ३. भावनायें ४. आदि से अंत तक। ५. विभाग ६. सीधे ७. काम का सम्बंध ८. केंद्रीय ९. प्रारंभिक १०. वस्तुस्थिति ११. प्रकट हुआ १२. परेशान १३. जिस किसी का भी दरवाज़ा मैंने खटखटाया वह बेख़बर और ग़ाफ़िल था १४. हीला हवाला १५. बेफ़ायदा १६. यंत्र।

बगुज़र मसीह् अज़ सरे-मा कुश्तगाने-इश्क़
यक ज़िंदा करदने-तू बसद ख़ूं बराबर स्त[1]

बहर हाल चौथे दिन इंसपेक्टर जनरल आफ़ प्रिज़न आया और गवर्नमेंट के अहकाम[2] का परचा हवाले किया। किसी से मुलाक़ात नहीं की जा सकती। किसी से ख़त ओ किताबत नहीं की जा सकती। कोई अख़बार नहीं आ सकता। इन बातों के अलावा अगर किसी और बात की शिकायत हो तो हुकूमत उस पर ग़ौर करने के लिए तैयार है। अब इन बातों के बाद और कौन सी बात रह गयी थी जिसकी शिकायत की जाती और हुकूमत अज़ राहे-इनायत[3] उसे दूर कर देती ?

ज़बां जलाई, किये क़ता[4] हाथ पहुँचों से
ये बंदोबस्त हुए हैं मेरी दुआ के लिये !

इंस्पेक्टर जनरल ने कहा—अगर आप किताबें या कोई और सामान घर से मंगवाना चाहें तो उनकी फ़हरिस्त लिखकर मुझे दे दें। गवर्नमेंट अपने तौर पर मंगवाकर आपको पहुँचा देगी। चूंकि गिरफ़्तारी सफ़र की हालत में हुई थी इसलिये मेरे पास दो किताबों के सिवा जो राह में देखने के लिए साथ रख ली थीं मुताले[5] का कोई सामान न था। ख़याल हुआ अगर मकान से बाज़[6] मसविदात[7] और कुछ किताबें आ जायें तो क़ैद ओ बंद की यह फ़ुरसत काम में लाई जाये। बज़ाहिर इस ख़्वाहिश में कोई बुराई मालूम नहीं हुई—दुनियारा बउम्मीद ख़ुर्दा अंद, आरज़ू ऐब नदारद[8] :

नक़ाबे-चेहरये-उम्मीद बाशद गर्दे-नौमीदी
ग़ुबारे-दीदये-याक़ूब आख़िर तूतिया गरदद[9]

मैंने मतलूबा[10] आशिया[11] का एक परचा लिखकर उसके हवाले किया और वो लेकर चला गया। लेकिन उसके जाने के बाद जब सूरते-हाल पर ज़्यादा ग़ौर करने का मौक़ा मिला तो तबीअत में एक ख़लिश[12] सी महसूस होने लगी।

---

१. अय मसीह् मेरे सिरहाने से हट जा कि मैं इश्क़ का मारा हुआ हूं तेरा एक को ज़िंदा करना सौ ख़ून करने के बराबर है २. हुक्म का बहुवचन ३. मेहरबानी करके ४. काट डाले ५. पढ़ने का ६. कुछ ७. मसौदा, पांडुलिपियां ८. दुनिया को किसी उम्मीद से पकड़ा है, और आरज़ू में कोई बुराई नहीं है ९. आशा के चेहरे की नक़ाब पर निराशा की गर्द रहती है याक़ूब की आँखों का ग़ुबार अंत में सुरमा बन जाता है ७. इच्छित ८. शै का बहुवचन, चीज़ें ९. चुभन।

मालूम हुआ कि यह भी दर असल तबीयत की एक कमज़ोरी थी कि हुकूमत की इस रियायत से फ़ायदा उठाने पर राज़ी हो गई जब अज़ीज और अक़रबा[1] से भी मिलने और ख़त ओ किताबत करने की इजाज़त नहीं दी गई जिसका हक़ मुजरिमों और क़ातिलों तक से छीना नहीं जाता तो फिर यह तवक़्क़ो[2] क्यों रखी जाये कि वही हुकूमत घर से सामान मंगवाकर फ़राहम[3] कर देगी ? ऐसी हालत में इज़्ज़ते-नफ़स[4] का तक़ाज़ा सिर्फ़ यही हो सकता है कि न तो कोई आरज़ू की जाये और न कोई तवक़्क़ो रखी जाये।

ज़ तेग़े-बेनियाज़ी ता तवानी क़त्ए हस्ती कुन
फ़लक ता अफ़गनद अज़ पा तुरा, ख़ुद पेशदस्ती कुन[5]

मैंने दूसरे ही दिन इंस्पेक्टर जनरल को ख़त लिख दिया कि फ़हरिस्त का परचा वापस कर दिया जाये। जब तक गवर्नमेंट का मौजूदा तर्ज़े-अमल[6] क़ायम रहता है मैं कोई चीज़ मकान से मंगवाना नहीं चाहता। यहाँ और साथियों ने भी यही तर्ज़े-अमल इख़्तियार किया :

दामन उसका तो भला दूर है अय दस्ते-जुनूं
क्यों है बेकार ? गरेबां तो मेरा दूर नहीं !

अब चाय के तीसरे फ़िंजान के लिए कि हमेशा इस दौरे-सबूही[7] का आख़िरी जाम होता है हाथ बढ़ाता हूँ और यह अफ़साना सराई[8] ख़त्म करता हूँ—यादश बख़ैर[9]—ख़्वाजये-शीराज़ के पीरे-मय-फ़रोश की मवाज़त[10] भी वक़्त पर क्या काम दे गई है :

दी पीरे-मयफ़रोश कि ज़िक्रश बख़ैर बाद
गुफ़्ता "शराब नोश ओ ग़मे-दिल ज़िबर ज़ याद"
गुफ़्तम "बबाद मी दिहदम बादा नाम ओ नंग"
गुफ़्ता "क़बूल कुन सुख़न ओ हर च बाद बाद
बे ख़ार गुल न बाशद ओ बेनैश नोश हम
तदबीर चीस्त ? वज़ए-जहां ईं चुनीं फ़ताद

१. निकट सम्बंधी २. आशा ३. दे देगी ४. आत्मसम्मान ५. जहाँ तक हो सके निष्कामता की तलवार से अपनी हस्ती को काट डाल। आसमान या दुर्भाग्य जब तक तुझे तेरे पांवों से गिराये तब तक तू ख़ुद पेशदस्ती कर ६. कार्य पद्धति ७. शराब का दौर ८. कहानी कहना ९. उसकी याद भी क्या ख़ूब आई है १०. उपदेश।

पुर कुन ज़ बावा जामे दमादम बगोशे-होश
बशनौ अज़ ओ हिकायते-जमशेद ओ कैकुबाद"[1]

अबुलकलाम

१. कल शराब बेचने वाला पीर कि उसका ज़िक्र भी क्या ख़ूब है मुझसे बोला कि : "शराब पी और दिल का ग़म याद से निकाल दे।" मैंने कहा : मैंने शराब, इज्जत और लोकलाज सब कुछ छोड़ दी है। उसने कहा कि मेरी बात मान और फिर जो कुछ हो सो होने दे। बिना कांटे के फूल नहीं होता और बिना चुभन के सुरापान नहीं होता, क्या किया जाय? दुनिया की रीति ही ऐसी है। इसलिये शराब से प्याले को भर और अपने होश के कानों से लगातार उससे जमशेद और कैकुबाद की कहानियाँ सुन।

क़िलअ़-ए-अहमदनगर
१६, अगस्त, सन् १६४२ ई.

चु तुख्मे-अश्क बकुल्फ़त सरिश्ताअंद मरा
ब नाउमीदिये-जावेद कुश्ताअंद मरा
ज आह् बेअसरम दाग़े-खामकारीये-ख्वेश
ज आतिशे कि नदारम, बिरिश्ताअंद मरा[1]

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुब्ह् चार बजे का वक़्त है, चाय सामने धरी है। जी चाहता है आपको मुखातिब तसव्वुर करूँ और कुछ लिखूं। मगर लिखूं तो क्या लिखूं। मिरज़ा ग़ालिब ने रंजे-गरांनशीन[2] की हिकायतें लिखी थीं, सब्रे-गुरेज़पा[3] की शिकायतें की थीं :

कभी हिकायते-रंजे-गरांनशीं लिखिये
कभी शिकायते-सब्रे-गुरेज़पा कहिये !

लेकिन यहाँ न रंज की गरांनशीनियाँ हैं कि लिखूं, न सब्र की गुरेज़पाइयाँ हैं कि सुनाऊँ। रंज की जगह सब्र की गरांनशीनियों का खूगर[4] हो चुका हूँ। सब्र की जगह रंज की गुरेज़पाइयों का तमाशाई[5] रहता हूँ। उरफ़ी का वो शेर क्या खूब है जो नासिरअली ने उसके तमाम कलाम में से चुना था :

मन अज़ीं रंजे-गरांबार च लज़्ज़त याबम
कि ब अंदाज़ये-आं सब्र ओ सबातम दादंद ![6]

अगर इस शेर को अपनी हालत पर ढालने की कोशिश करूँ तो यह एक तरह की खुदस्ताई[7] और खेश्तन-बीनी[8] की बेसर्फ़गी[9] समझी जायेगी। लेकिन

१. आँसुओं के दानों की तरह रंज और ग़म से मेरा संबंध कर दिया है, और शाश्वत निराशा से मुझे मार डाला है, मेरी बेअसर आह से मेरी खामकारी पर दाग़ हैं। मुझे उस आग से भूना है जो मुझमें नहीं है। २. भारी ग़म ३. कठिन सब्र ४. आदी ५. दर्शक ६. मैंने इस भारी शोक से क्या मज़ा पाया है कि उसी के अंदाज़ से लोग मुझे सब्र और ढाढ़स देते हैं। ७. अपने आप मियाँ मिट्ठू बनना ८. आत्म श्लाघा ९. अपव्ययता।

यह कहने में क्या ऐब है कि इस मुक़ाम की लज्जतशनासी[1] से बेबहरा[2] नहीं हूँ और इसका आरज़ूमंद रहता हूँ ? इसी उरफ़ी ने यह भी तो कहा है :

मुनकिर न तवां गश्त, अगर दम जनम अज़ इश्क़
ईं नश्शा बमन गर न बुवद, बा दिगरे हस्त[3]

यहाँ पहुँचने के बाद चंद दिनों तक तो सिर्फ़ जेलर ही से साबिक़ा रहा। एक दो मर्तबा कलक्टर और सिविल सर्जन भी आये। फिर जिस दिन इंस्पेक्टर जनरल आया उसी दिन एक और शख़्स भी उसके हमराह[4] आया। मालूम हुआ आई एम एस से ताल्लुक़ रखता है। मेजर एम सेंडक (Sendak) नाम है और यहाँ के लिये सुपरिंटेंडेंट मुक़र्रर हुआ है। मैंने जी में कहा यह सेंडक बेंडक कौन कहे ? कोई और नाम होना चाहिये जो ज़रा मानूस[5] और रवां हो। मअन[6] हाफ़िज़े[7] ने याद दिलाया कहीं नज़र से गुज़रा था कि चाँद बीबी के ज़माने में इस क़िले का क़िलेदार चीताख़ां नामी एक हब्शी था। मैंने इन हज़रत का नाम भी चीताख़ां रख दिया कि अव्वल ता आख़िर निस्बते दारद[8] :

नाम उसका आसमां ठहरा लिया तहरीर में !

अभी दो चार दिन भी नहीं गुज़रे थे कि यहाँ हर शख़्स की ज़बान पर चीताख़ां था। क़ैदी और वार्डर्ज़ भी इसी नाम से पुकारने लगे। कल जेलर कहता था कि आज चीताख़ां वक़्त से पहले घर चला गया। मैंने कहा चीताख़ां कौन ? कहने लगा—मेजर, और कौन ?

मा हेच न गुफ़्तेम ओ हिकायत बदर उफ़्ताद[9]

बहर हाल ग़रीब जेलर की जान छुटी। अब साबिक़ा चीताख़ां से रहता है। जब जापानियों ने अंडेमीन पर क़ब्ज़ा किया था तो यह वहीं मुतय्यन[10] था। उसका तमाम सामान ग़ारत[11] गया। अपनी बरबादियों की कहानियाँ यहाँ लोगों को सुनाता रहता है :

अगर मा दर्दे-दिल दारम ज़ाहिद दर्दे-दीं दारद[12]

इस मर्तबा सबसे ज़्यादा इंतज़ाम इस बात का किया गया है कि ज़िंदानियों का कोई ताल्लुक़ बाहर की दुनिया से न रहे। हत्ता[13] कि बाहर की

---

१. स्वाद २. अनजान ३. अगर प्रेम का दम भरता हूँ तो कोई इससे इंकार नहीं कर सकता। यह गुण अगर मुझ में नहीं है तो दूसरे में है। ४. साथ ५. परिचित सा ६. फ़ौरन ७. स्मृति ८. आदि से अंत तक उसीसे संबंध रखता है ९. मैंने कुछ नहीं कहा और बात बाहर फैल गई १०. तैनात ११. बरबाद १२. अगर मुझे दिल का दर्द है तो ज़ाहिद को दीन का दर्द है १३. यहाँ तक कि।

परछाईं भी यहाँ न पड़ने पाये। ग़ालिबन हमारा महल्ले-क़याम[1] भी पोशीदा रखा गया है। अब गोया अहमदनगर भी जंग के पुर असरार[2] मुक़ामात की तरह (Somewhere in India) के हुक्म में दाख़िल हो गया। देखिये नासिख़ का एक फ़रसूदा[3] शेर यहाँ क्या काम दे गया है:

हमसा कोई गुमनाम ज़माने में न होगा
गुम हो वो नगीं जिस पै खुदे नाम हमारा

क़िले की जिस इमारत में हम रखे गये हैं, यहाँ ग़ालिबन छावनी के अफ़सर रहा करते थे। गाह गाह[4] जंगी क़ैदियों के लिये भी इसे काम में लाया गया है। जंगे-बोअर के ज़माने में जो क़ैदी हिन्दुस्तान लाये गये थे उनके अफ़सरों का एक गिरोह यहीं रखा गया था। गुज़श्ता जंग में भी हिन्दुस्तान के जरमन भी यहीं नज़रबंद किये गये, और मौजूदा जंग में भी इतालवी अफ़सरों का एक गिरोह जो मिसर से लायो गया था यहीं नज़रबंद रहा।

चीताख़ां कहता है कि हमारे आने से पहले यहाँ फ़ौजी अफ़सरों के ट्रेनिंग की एक क्लास खोली गई थी। कल मेरे कमरे में अलमारी हटाकर उसने दिखाया कि एक बड़ा सियाह बोर्ड दीवार पर बना है। मैंने जी में कहा—ग़ालिबन इसीलिये हमें यहाँ लाकर रखा गया है कि अभी दर्सगाहे-जुनूं[5] ओ वहशत के कुछ सबक़ बाक़ी रह गये थे:

दरीं तालीम शुद उम्र ओ हिनोज़ अबजद हमीख़्वानम
न दानम कै सबक़ आमोज़ ख़्वाहम शुद ब दीवानश![6]

अहाते के मग़रिबी[7] रुख़ पर जो कमरे हैं और जो हमें रहने के लिये दिये गये हैं उनकी खिड़कियाँ क़िले के अहाते में खुलती हैं खिड़कियों के ऊपर रोशनदान भी हैं। इस ख़याल से कि हमारी तरह हमारी निगाहें भी बाहर न जा सकें तमाम खिड़कियाँ दीवारें चुनकर बंद कर दी गयी हैं। दीवारें हमारे आने से एक दिन पहले चुनी गई होंगी, क्योंकि जब हम आये थे तो सफ़ेदी ख़ुश्क नहीं हुई थी। हाथ पड़ जाता तो अपना नक़्श बिठा देता और नक़्श इस तरह बैठता कि फिर उठता नहीं:

हर दाग़े-मआसी[8] मिरा इस दामने तर से
ज्यूं हर्फ़े-सरे-काग़ज़े-नम उठ नहीं सकता

१. ठहरने का स्थान २. रहस्य भरे स्थानों की तरह ३. जीर्ण-शीर्ण, पुराना ४. कभी-कभी ५. पागलपन और वहशत की पाठशाला ६. इसी तालीम में सारी उम्र बीत गई और अभी ककहरा ही पढ़ रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि उसके दीवान का सबक़ कब पूरा होगा। ७. पश्चिमी ८. गुनाहों का दाग़।

दीवारें इस तरह चुनी हैं कि ऊपर तले दहने बायें कोई रखना[1] बाक़ी नहीं छोड़ा। रोशनदान तक छुप गये। यह ज़ाहिर है कि अगर खिड़कियाँ खुली भी होतीं तो कौन सा मैदान सामने खुल जाता। ज़्यादा से ज़्यादा यह कि क़िले की संगी दीवारों तक निगाहें जातीं और टकराकर वापस आ जातीं। लेकिन हमारी निगाहों की इतनी रसाई[2] भी ख़तरनाक समझी गई। रोशनदान के आईने तक बंद कर दिये गये :

हवसे-गुल[3] का तसव्वुर[4] में भी खटका न रहा
अजब आराम दिया बेपरो बाली ने मुझे

क़िले के दरवाज़े की शब ओ रोज़[5] पासबानी की जाती है और क़िले के अंदर भी मुसल्लह[6] संतरी चारों तरफ़ फिरते रहते हैं। फिर भी हमारी हिफ़ाज़त के लिये मज़ीद[7] रोक थाम ज़रूरी समझी गई। हमारे अहाते का शुमाली[8] रुख़ पहले खुला था, अब दस-दस फुट ऊँची दीवारें खींच दी गई हैं और उनमें दरवाज़ा बनाया गया है, और उस दरवाज़े पर भी रात दिन मुसल्लह फ़ौजी पहरा रहता है। फ़ौज यहाँ तमामतर अंग्रेज़ सिपाहियों की है। वही ड्यूटी पर लगाये जाते हैं। जेलर और एक वार्डर के सिवा जिसे बाज़ार से सौदा सुलफ़ लाने के लिए निकलना पड़ता है, और कोई शख़्स बाहर नहीं जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि जो कोई दरवाज़े से गुज़रे संतरी को जामा-तलाशी[9] दे। वार्डर को हर मर्तबा बरहना[10] होकर तलाशी देनी पड़ती है। वो जेलर के पास जा-जाकर रोता है मगर कोई सुनवाई नहीं होती। पहले दिन जेलर निकला था तो उससे भी जामातलाशी का मुतालबा[11] किया गया था कि "ईं हम बच्चये शुतर स्त[12]।"

बाज़ार से सौदा सुलफ़ लाने का इन्तज़ाम यों किया गया है कि क़िले के दरवाज़े के पास फ़ौजी इदारे[13] का एक दफ़्तर है। यहाँ के सुपरिंटेंडेंट का आफ़िस टेलीफोन के ज़रिये उससे जोड़ दिया गया है। जब बाज़ार से कोई चीज़ आती है तो पहले वहाँ रोकी जाती है और उसकी देखभाल होती है। फिर वहाँ का मुतय्यन अफ़सर सुपरिंटेंडेंट को फ़ोन करता है कि फलां चीज़ इस तरह की और इस शक्ल में आई है। मसलन टोकरी में है या रूमाल में बँधी है या टीन का डब्बा है। इस इत्तला के मिलने पर यहाँ से जेलर अहाते के दरवाज़े पर जाता है और निशानज़दा[14] सामान सुपरिंटेंडेंट के आफ़िस में

---

१. खाली जगह २. पहुँच ३. पुष्प की चाह ४. ख़्याल ५. रात दिन ६. हथियार बंद ७. ज़्यादा ८. उत्तरी ९. नंगा झोरी १०. नंगा ११. तलब १२. यह भी ऊँट का बच्चा है १३. विभाग १४. निशान लगा।

उठवा ले जाता है। अब यहाँ दुबारा देखभाल की जाती है। अगर टोकरी है तो उसे खाली करके उसका हर हिस्सा अच्छी तरह देख लिया जायेगा कि इधर-उधर कोई परचा तो छुपा हुआ नहीं है। शकर और आटे की खास तौर पर देखभाल की जाती है। क्योंकि उनकी तह में बहुत कुछ छिपाकर रख दिया जा सकता है।

वार्डर जो पूना से यहाँ लाये गये हैं, वो आये तो थे क़ैदियों की निगरानी करने मगर अब खुद क़ैदी बन गये हैं। न तो अहाते से बाहर क़दम निकाल सकते हैं न घर से खत ओ किताबत कर सकते हैं। जेलर को भी घर खत लिखने की इजाज़त नहीं। क्योंकि हो सकता है इन्हीं राहों से कोई खबर बाहर पहुँच जाए। वो रोता रहता है कि मुझे सिर्फ़ एक दिन की छुट्टी ही मिल जाये कि पूना हो आऊं। मगर कोई सुनवाई नहीं होती। यहाँ जिसे देखो हाय हाय कर रहा है।

शबनम खराबे-मिहर, कितां सीना चाके-माह[1]
लो और भी सितमज़दये-रोज़गार हैं!

इस सूरते-हाल[2] ने यहाँ की ज़रूरियात की फ़राहमी[3] में अजीब अजीब उलझाव डाल दिये हैं। चीताखां जब देखो किसी न किसी गिरह के खोलने में उलझा हुआ है। मगर गिरहें हैं कि खुलने का नाम नहीं लेतीं। सबसे पहला मसला बावरची का पेश आना था, और पेश आया। बाहर का कोई आदमी रखा नहीं जा सकता क्योंकि वो क़ैदी बनकर रहने क्यों लगा? और क़ैदियों में ज़रूरी नहीं कि बावरची निकल आये। क़ैदी बावरची जभी मिल सकता है कि पहले कोई क़रीने[4] का बावरची ज़ौक़े-जरायमपेशगी[5] में इतनी तरक़्क़ी करे कि पकड़ा जाये। और पकड़ा भी जाये किसी अच्छे खासे जुर्म में कि अच्छी मुद्दत के लिये सज़ा दी जा सके। लेकिन ऐसा हुस्ने-इत्तिफ़ाक़[6] गाह-गाह ही पेश आ सकता है। और आजकल तो सूये-इत्तिफ़ाक़[7] से ऐसा मालूम होता है कि इस इलाक़े के बावरचियों में कोई मर्दे-मैदान रहा ही नहीं। इंस्पेक्टर जनरल जब आया था तो कहता था, यरवदा जेल में हर गिरोह और पेशे के क़ैदी मौजूद हैं मगर बावरचियों का काल है। नहीं मालूम कमबख्तों को क्या हो गया है।

१. शबनम सूरज से खत्म हो जाती है और कितां नाम का कपड़ा चांदनी में फट जाता है। कहते हैं कि कितां नाम का एक कपड़ा होता है जो चांदनी पड़ने से फट जाता है। २. वस्तु स्थिति ३. प्राप्ति ४. ढंग का ५. जरायमपेशा की रुचि में ६. संजोग ७. दुर्भाग्य से।

कस नदारद ज़ौक़े-मस्ती, मय गुसारांरा च शुद[1]

जो क़ैदी यहां चुनकर काम करने के लिये भेजे गये हैं उनमें से दो क़ैदियों पर बावरची होने की तोहमत लगाई गई है :

सितम रसीदा यके, नाउम्मीदवार यके ![2]

हालांकि दोनों इस इल्ज़ाम से बिल्कुल मासूम वाक़े हुये हैं और ज़बाने-हाल से नज़ीरी का यह शेर दोहरा रहे हैं। दाद दीजियेगा कि बात कहां लाकर डाली है और क्या बरमहल[3] बैठी है :

ता मुन्फ़इल ज़ रंजिशे-बेजा न बीनमश
मीआरम ऐतराफ़े - गुनाहे - नबूदा रा[4]

चीताखां आते ही इस उक़्दये-लायनहल[5] के पीछे पड़ गया था। रोज़ अपनी तलब ओ जुस्तजू की नाकामियों की कहानियाँ सुनाता :

अगर दस्ते कुनम पैदा, न मीयाबम गरेबां रा[6]

एक दिन खुश खुश आया और यह खबर सुनाई कि एक बहुत अच्छे बावरची का शहर में इंतजाम हो गया है। कलक्टर ने अभी फ़ोन के ज़रिये खबर दी है कि कल से काम पर लग जायेगा :

सबा ब खुशख़बरी हुदहुदे-सुलेमान स्त
कि मुज़दये-तरब अज़ गुलशने-सबा आवुर्द[7]

दूसरे दिन क्या देखता हूं कि वाक़ई एक जीता-जागता आदमी अंदर लाया गया है। मालूम हुआ तब्बाख़े-मौऊ़द[8] यही है :

आख़िर आमद ज़ पसे-पर्दये-तक़दीर पदीद ![9]

मगर नहीं मालूम इस ग़रीब पर क्या बीती थी कि आने को तो आ गया, लेकिन कुछ ऐसा खोया हुआ और सरासीमा[10] हाल था जैसे मुसीबतों का

---

१. किसी में भी आनंद और मस्ती की रुचि नहीं है, पियक्कड़ों को क्या हो गया। २. एक तो भाग्य का मारा है और एक नाउम्मीदी का मारा है। ३. ठीक जगह पर ४. ताकि मैं उसे अनुचित खिन्नता से परेशान न देखूं इसलिये अपने न किये हुये अपराधों को भी स्वीकार कर लेता हूँ। ५. हल न होने वाली समस्या ६. अगर मेरे हाथ हों भी तो मैं गरेबां को नहीं पाता। ७. प्रातः समीर खुशखबरी के मारे सुलेमान की हुदहुद चिड़िया हो रही है क्योंकि खुशी की खबर मुल्क सबा के गुलशन से लाई है। ८. निमंत्रित बावरची ९. अंत में पर्दे के पीछे से भाग्य चमका १०. परेशान।

पहाड़ सर पर टूट पड़ा हो। वो खाना क्या पकाता अपने होश ओ हवास का मसाला कूटने लगा :

उड़ने से पेश्तर ही मेरा रंग ज़र्द था!

बाद को इस मामले की जो तफ़सीलात[1] खुलीं, उनसे मालूम हुआ कि यह शिकार वाक़ई कलक्टर के जाल में फँसा था। कुछ तो उसके ज़ोरे-हुकूमत ने काम दिया, कुछ साठ रुपये माहाना तनखा की तरग़ीब[2] ने। और यह अजल-रसीदा[3] दाम में फँस गया। अगर उसे बआफ़ियत[4] क़िले में फ़ौरन पहुँचा दिया जाता, तो मुमकिन है कुछ दिनों तक जाल में फँसा रहता। लेकिन अब एक और मुश्किल पेश आ गई। यहाँ के कमांडिंग आफ़ीसर से बावरची रखने के बारे में अभी बातचीत खतम नहीं हुई थी। वो पूना के सदर दफ़्तर की हिदायत का इंतज़ार कर रहा था और इसलिये इस शिकार को फ़ौरन क़िले के अंदर ले नहीं सकता था। अब अगर उसे अपने घर जाने का मौक़ा दिया जाता है तो अंदेशा है कि शहर में चरचा फैल जायेगा, और बहुत मुमकिन है कोई मौक़ातलब इस मुआमले से बरवक़्त फ़ायदा उठाकर बावरची को नामा ओ पयाम का ज़रिया बना ले। अगर रोक लिया जाता है, तो फिर रखा कहाँ जाये कि ज़्यादा से ज़्यादा महफ़ूज़[5] जगह हो, और बाहर का कोई आदमी वहाँ तक पहुँच न सके ?

यह बाद अज इंफ़साल[6] अब और ही झगड़ा निकल आया

इसे कलक्टर के याराने-तरीक़त[7] की अक़लमंदी समझिये या बेवक़ूफ़ी कि उसे बहला-फुसलाकर यहाँ के मुक़ामी क़ैदखाने में भेज दिया। क्योंकि उनके ख्याल में क़िले के अलावा अगर कोई और महफ़ूज़ जगह हो सकती थी तो वो क़ैदखाने की कोठरी ही थी। क़ैदखाने में जो उसे एक रात दिन क़ैद ओ बंद के तवे पर सेंका गया तो भूनने तलने की सारी तरक़ीबें भूल गया। उस अहमक़ को क्या मालूम था कि साठ रुपये के इश्क़ में ये पापड़ बेलने पड़ेंगे ? इस इब्तदाये-इश्क़ ही ने कचूमर निकाल दिया था, क़िले तक पहुँचते पहुँचते क़लिया भी तैयार हो गया :

कि इश्क़ आसाँ नमूद अव्वल वले उफ़्ताद मुश्किलहा[8]।

बहरहाल दो दिन तो उसने किसी न किसी तरह निकाल दिये। तीसरे दिन होश ओ हवास की तरह सब्र ओ क़रार ने भी जवाब दे दिया। मैं सुबह के वक़्त कमरे के अंदर बैठा लिख रहा था कि अचानक क्या सुनता हूँ जैसे

१. ब्यौरा २. प्रोत्साहन ३. काल का मारा ४. आराम से ५. सुरक्षित ६. फ़ैसला ७. रास्ते के साथी ८. प्रेम प्रथम आसान दिखाई दिया था लेकिन कई मुश्किलें पड़ीं। ९. मिश्रित।

बाहर एक अ़जीब तरह का मख़लूत[१] शोर ओ ग़ुल हो रहा हो। "मख़लूत" इसलिये कहना पड़ा कि सिर्फ़ आवाज़ों ही का ग़ुल नहीं था, रोने की चीख़ें भी मिली हुई थीं। ऐसा मालूम होता था जैसे कोई आदमी दम घुटी हुई आवाज़ में कुछ कहता जाता है और फिर बीच में रोता भी जाता है। गोया वो सूरते-हाल है जो ख़ुसरू ने सख़्ती[१]कशाने-इश्क़ की सुनाई थी कि :

क़दरे गिरियद् ओ हम बर सरे अफ़साना रवद ![२]

बाहर निकला तो सामने के बरामदे में एक अ़जीब मंज़र दिखाई दिया। चीताख़ाँ दीवार से टेक लगाये खड़ा है, सामने बावरची ज़मीन पर लोट रहा है, तमाम वार्डर्ज़ हलक़ा[३] बांधे खड़े हैं, क़ैदियों की क़तारें सहन में सफ़बस्ता[४] हो रही है, और हमारे क़ाफ़िले के तमाम ज़िंदानी एक-एक करके कमरों से निकल रहे हैं। गोया इस ख़राबे की सारी आबादी वहीं सिमट आई है :

आबाद एक घर है जहाने-ख़राब में !

चीताखां कह रहा है—तुम्हें कोई इख़्तियार नहीं कि यहां से निकलो। बावरची चीख़ता है कि मुझे पूरा इख़्तियार है, तुम्हें कोई इख़्तियार नहीं कि मुझे रोको। जब्र ओ इख़्तियार का यह मनाज़िरा[५] सुनकर मुझे बेइख़्तियार नैमतखां आली का वो क़तआ़ याद आ गया जो उसने मुख़्तारखां की हिजो[६] में कहा था और जिसकी शरह[७] लिखने में साहबे-ख़ज़ाना आमरा ने बड़ी मग़ज़-पाशी[८] की है :

ईं दलील अज़ जब्र मी आवुर्द ऊ अज़ इख़्तियार
ईं सुख़न हम दरमियां मांदा स्त अमरे बैन बैन[९]

बावरची उन लोगों में मालूम होता था जिनकी निस्बत कहा गया है कि :

क़ौमे ब जद्दोजहद गिरफ़्तंद वस्ले-दोस्त[१०]

मगर चीताख़ां इस पर ज़ोर देता था कि :

क़ौमे-दिगर हवाला बतक़दीर मीकुनंद[११] !

---

१. कष्ट भोगे हुये २. थोड़ा रोता और साथ ही साथ कुछ कहता भी जाता। ३. घेरा ४. पंक्तिबद्ध ५. बहस ६. निंदा ७. टीका ८. सिर पच्ची ९. यह तो जब्र याने शक्ति की दलील लाया और दूसरा अधिकार की। इस प्रकार यह बात भी बीच ही में लटकी रही। १०. एक तो उस जाति के लोग होते हैं जो अपने मक़सद या उद्देश्य को पाने के लिये प्रयत्न और पुरुषार्थ करते हैं। ११. दूसरी जाति के मनुष्य सब कुछ भाग्य के भरोसे छोड़ बैठे हैं।

जेलर ने ख़याल किया कि हक़ीक़ते-हाल कुछ ही हो मगर "बैन ल जबरि ब लइख़्तियार[1]" का मज़हब इख़्तियार किये बग़ैर चारा नहीं। उसकी नज़र अशाअ़रा के "कस्ब" और शोपनहार के "इरादे" पर गई :

गुनाह गरचे न बूद इख़्तियारे-मा हाफ़िज़
तू दर तरीक़े-अदब कोश ओ गो गुनाहे-मन स्त[2]

उसने बावरची को समझाने की कोशिश की कि इस तरह की हठ ठीक नहीं। किसी न किसी तरह एक महीना निकाल दो। फिर तुम्हें घर जाने की इजाज़त मिल जायगी :

मुर्ग़े-ज़ीरक चूं बदाम उफ़्तद तहम्मुल बायदश[3]

लेकिन उसका मआ़मला अब नसीहत[4] पज़ीरियों की हद से गुज़र चुका था :

निकल चुका है वो कोसों दियारे-हिरमां से !

एक महीने की बात जो उसने सुनी तो और कपड़े फाड़ने लगा :

दिल से दीवाने को मत छेड़, यह ज़ंजीर न खींच

शाम को चीताखाँ उस तरफ़ आया तो मैंने उससे कहा कि इस तरह मजबूर करके किसी आदमी को रखना ठीक नहीं। फ़ौरन रुख़सत कर दिया जाये। अगर उसे जबरन रखा गया तो हम उसका पकाया हुआ खाना छूने वाले नहीं। चुनांचे दूसरे दिन उसे रिहाई मिल गई। इतवार के दिन हस्बे-मामूल कलक्टर आया तो मालूम हुआ, जिस दिन छूटा था उसी दिन उसने अपना बोरिया

१. याने "डिटरमिनिज़म" और "फ्री विल" के दरम्यान राह निकालने का मज़हब जैसा कि मुसलमान मुतकल्लिमों में अशाअ़रा ने इख़्तियार किया। वो कहते हैं अगरचे इंसान ख़ुदा की क़ुदरत के अहाते से बाहर नहीं निकल सकता मगर उसे "कस्ब" की क़ुव्वत हासिल है। याने इरादे के साथ काम करने और उसके असरात कस्ब करने की क़ुव्वत हासिल है अगरचे उसका इरादा भी ख़ुद उसके बस की चीज़ नहीं। दर असल अशाअ़रा का कस्ब भी मज़हबे-जब्र की ही एक दूसरी ताबीर है। शापेनहोर ने इसी ऐतक़ाद को यों ताबीर किया कि हमारे तमाम अफ़आ़ल की तह में हमारा इरादा काम करता है अगरचे हमारा इरादा हमारे इख़्तियार में नहीं। २. गुनाह करना यद्यपि हमारे अधिकार में नहीं था लेकिन फिर भी तूं अदब की राह पर चल और कह कि मेरा गुनाह है। ३. अक़लमंद पंछी अगर फंदे में फंस जाये तो उसे बरदाश्त और सहनशीलता से काम लेना चाहिये। ४. सीख और उपदेश के असर से।

बिस्तर सँभाला और सीधा रेलवे स्टेशन का रुख़ किया। पीछे मुड़कर देखा तक नहीं :

कर्दाअम तोबा, ओ अज़ तोबा पशेमां शुदाअम
काफ़िरम, बाज़ न गोई कि मुसलमां शुदा अम[1]

यह बावरची की सरगुज़श्त हुई। लेकिन यहाँ कोई दिन नहीं जाता कि कोई न कोई नई सरगुज़श्त पेश न आती हो। बावरची के बाद हज्जाम का मसला पेश आया। अभी वो हल नहीं हुआ था कि धोबी के सवाल ने सर उठाया। चीतारवां का सारा वक़्त नाख़ून तेज़ करने में बसर होता है। मगर रिश्तये-कार[2] में कुछ ऐसी गाँठें पड़ गई हैं कि खुलने का नाम नहीं लेतीं। यह वही ग़ालिब वाला हाल हुआ कि :

पहले डाली है सरेरिश्तये-उम्मीद में गाँठ
पीछे ठोंकी है बुने-नाख़ुने[3]-तदबीर में कील

अबुलकलाम

---

१. मैंने तोबा कर ली है और अपनी तोबा से शर्मिंदा हूँ। मैं काफ़िर हूँ, फ़िर न कहना कि मुसलमान हुआ हूँ। २. कार्य सूत्र। ३. तदबीर के नाख़ून की जड़।

हिकायते-बादा ओ तिरयाक

क़िलअ-अहमदनगर
२७ अगस्त, सन् १६४२ ई.

सदीके-मुकर्रम

इंसान अपनी एक ज़िंदगी के अंदर कितनी ही मुख़्तलिफ़[1] ज़िंदगियां बसर करता है। मुझे भी अपनी ज़िंदगी की दो क़िस्में कर देनी पड़ीं। एक क़ैदख़ाने से बाहर की, एक अंदर की।

हम समंदर बाश ओ हम माही कि दर अक़लीमे-इश्क़
रोये-दरिया सलसबील ओ क़ारे-दरिया आतिश स्त !

दोनों ज़िंदगियों के मुरक़्क़ो[2] की अलग अलग रंग ओ रोग़न से नक़्शआराई[3] हुई है। आप शायद एक को देखकर दूसरी को पहचान न सकें :

लिबासे-सूरत अगर वाज़गूं कुनम बीनंद
कि ख़िरक़ये-ख़शनम मायये-तिलाबाफ़ स्त[4]

क़ैद से बाहर की ज़िंदगी में अपनी तबीयत की उफ़्ताद[5] बदल नहीं सकता। ख़ुदरफ़्तगी[6] और ख़ुदमशग़ूली[7] मिज़ाज पर छाई रहती है। दिमाग़ अपनी फ़िक्रों से बाहर आना नहीं चाहता और दिल अपनी नक़्शआराइयों[8] का गोशा[9] छोड़ना नहीं चाहता। बज़्म ओ अंजुमन[10] के लिये बारे-ख़ातिर[11] नहीं होता लेकिन यारे-शातिर[12] भी बहुत कम बन सकता हूँ :

ता के चु मौजे-बहर बहर सू शताफ़्तन
दर ऐने-बहर पाये चु गर्दाब बंद कुन ![13]

लेकिन ज्यों ही हालात की रफ़्तार क़ैद ओ बंद का पयाम[14] लाती है, मैं कोशिश करने लगता हूं कि अपने आपको यकक़लम[15] बदल दूं। मैं अपना पिछला दिमाग़ सर से निकाल देता हूँ और एक नये दिमाग़ से उसकी ख़ाली जगह भरनी

१. भिन्न भिन्न २. चित्र-पोथी जिसे अंग्रेज़ी में अलबम कहते हैं। ३. आलेखन, चित्रण ४. अगर यह बाहरी भेष उलट दूं तो देखोगे कि मेरी खुरदरी गुदड़ी अंदर से ज़रबफ़्त की याने स्वर्णखचित है। ५. ढंग, रुझान ६. आत्मविस्मृति ७. आत्मप्रवृत्ति ८. कल्पनाओं ९. कोना १०. महफ़िल और सभा ११. अनुपयुक्त, नागवार १२. गहरा दोस्त १३. कब तक दरिया की लहर की तरह हर तरफ़ भागते रहोगे, ऐन दरिया में भँवर की तरह अपने पैर बंद कर ले यानी स्थिर हो जा। १४. ख़बर १५. पूर्ण रूपेण।

चाहता हूँ। हरीमे-दिल[1] के ताक़ों को देखता हूँ कि ख़ाली हो गये तो कोशिश करता हूँ कि नये नये नक़्श ओ निगार[2] बनाऊं और उन्हें फिर से आरास्ता[3] कर दूं :

वक़्त स्त बिगर बुतकदा साज़ंद हरमरा ![4]

इस तहव्वुले-सूरत (metamorphism) के अमल में कहाँ तक मुझे कामयाबी होती है इसका फ़ैसला तो दूसरों ही की निगाहें कर सकेंगी। लेकिन खुद मेरे फ़रेबे-हाल[5] के लिए इतनी कामयाबी बस करती है कि अकसर औक़ात अपनी पिछली ज़िंदगी को भूला रहता हूँ और जब तक उसके सुराग़ में न निकलूं, उसे वापस नहीं ला सकता :

दिल कि जमा स्त, ग़म अज़ बेसरो सामानी नेस्त
फ़िक्रे-जमीयत अगर नेस्त, परेशानी नेस्त[6]

अगर आप मुझे उस आलम में देखें तो खयाल करें, मेरी पिछली ज़िंदगी मुझे क़ैदखाने के दरवाज़े तक पहुँचाकर वापस चली गई। और अब एक दूसरी ही ज़िंदगी से साबिका[7] पड़ा है, जो ज़िंदगी कल तक अपनी हालतों में गुम और खुशकामियों[8] और दिलशिगुफ़्तियों[9] से बहुत कम आश्ना[10] थी आज अचानक एक ऐसी ज़िंदगी के क़ालिब[11] में ढल गई जो शिगुफ़्ता मिज़ाजियों[12] और खंदा-रूइयों[13] के सिवा और किसी बात से आश्ना ही नहीं। "हर वक़्त खुश रहो और हर नागवार हालत को खुशगवार बनाओ।" जिसका दस्तूरउल अमल है[14] :

हासिले-कारगहे-कौन ओ मकां ईं हमा नेस्त
बादा पेश आर, कि असबाबे-जहां ईं हमा नेस्त !
पंज रोज़े कि दरीं मरहला मोहलत दारी
खुश बयासाये ज़माने कि ज़मां ईं हमा नेस्त ![15]

१. दिल का अंतःपुर २. चित्र ३. सजा दूं ४. वक़्त आ गया है कि काबे को दुबारा बुतकदा याने देवालय बना दें ५. आत्मविस्मृति। ६. दिल अगर संतुष्ट है तो अकिंचनता का कोई ग़म नहीं है, अगर संग्रह करने की फ़िक्र नहीं है तो फिर कोई परेशानी नहीं है। ७. वास्ता ८. तृप्ति ९. प्रसन्नता, उल्लास १०. परिचित ११. कलेवर १२. प्रसन्नचित्तता १३. प्रसन्नमुद्रा १४. कार्य-पद्धति १५. सृष्टि के कारखाने का हासिल यह सब जो दृष्टिगोचर है यह नहीं है। शराब सामने ला कि दुनिया का असबाब यह सब नहीं है। इस दुनिया में तुझे जो पाँच रोज़ की मोहलत मिली है थोड़ी देर खुश रह, ज़माना यह सब नहीं है।

मैंने क़ैदख़ाने की ज़िंदगी को दो मुतज़ाद[1] फ़िलसफ़ों से तरकीब दी है। इसमें एक जुज़ रवाक़िया (stoics) का है, एक लज़्ज़तिया (Epicureans) का।

पुंबारा ग्रातशी ईं जा ब शरार उफ़्ताद स्त[2] !

जहाँ तक हालात की नागवारियों का ताल्लुक़ है रवाक़िय्यत से उनके ज़ख़्मों पर मरहम लगाता हूँ और उनकी चुभन भूल जाने की कोशिश करता हूँ।

हर वक़्ते-बद कि रूये विहद ग्राबे-सैल दां
हर नक़्शे-ख़ुश कि जलवा कुनद, मौजे-ग्राब गीर[3] !

जहाँ तक ज़िंदगी की ख़ुशगवारियों का ताल्लुक़ है लज़्ज़तिया का ज़ावियये-निगाह[4] काम में लाता हूँ और ख़ुश रहता हूँ :

हर वक़्ते-ख़ुश कि दस्त विहद मुग़तनम शुमार
कसरा वक़ूफ़ नेस्त कि अंजामे-कार चीस्त[5] ?

मैंने अपने काक तेल (cock tail) जाम में दोनों बोतलें उँडेल दीं। मेरा ज़ौक़े-बादा-आशामी[6] बग़ैर इस जामे-मुरक्कब[7] के तसकीन[8] नहीं पा सकता था। इसे क़दीम ताबीर में यूं समझिये कि गोया हिकायते-बादा ओ तिरयाक[9] मैंने ताज़ा कर दी है :

चुनां अफ़यून साक़ी दर मय अफ़गंद
हरीफ़ां रा न सर मांद ओ न दस्तार ![10]

अलबत्ता काकतेल का यह नुस्ख़ये-ख़ास[11] हर ख़ामकार के बस की चीज़ नहीं है। सिर्फ़ बादागुसाराने[12]-कुहन मश्क़ ही इसे काम में ला सकते हैं। वरमूथ (Vermuth) और जिन (Gin) का मुरक्कब पीनेवाले इस रतले-गरां[13] के मुतहमिल[14] नहीं हो सकेंगे। मौलानाये-रूम ने ऐसे ही मुआमलात की तरफ़ इशारा किया था :

१. भिन्न २. रूई के गाले का यहाँ चिंगारी से मेल हुआ है। ३. हर बुरा वक़्त जो पेश आता है उसे बाढ़ का पानी समझ, और हर ख़ुशी की बात को जो कि सामने आती है पानी की लहर जान। ४. दृष्टिकोण ५. जो वक़्त भी ख़ुशहाली का आ जाये उसे ग़नीमत समझ। यहाँ किसी को यह जानकारी नहीं है कि काम का परिणाम क्या है। ६. शराब पीने की पसंद ७. मिश्रित जाम ८. शांति ९. शराब और अफ़ीम की कहानी, हिन्दुस्तानी पियक्कड़ों की भाषा में इसे क़िस्सा भांग धतूरे का कह सकते हैं। १०. साक़ी ने शराब में ऐसी अफ़ीम मिलाई कि साथियों का न तो सर ही ठिकाने रहा न पगड़ी ही। ११. ख़ास नुस्ख़ा १२. पुराने पियक्कड़ १३. बड़ा पैमाना १४. सहन करने वाले।

बादये-ग्रां दर ख़ुरे हर होश नेस्त
हलक़ये ग्रां गुज़रये हर गोश नेस्त ![1]

ग्राप कहेंगे क़ैदख़ाने की ज़िंदगी रवाक़िय्यत के लिये तो मौज़ूं हुई कि ज़िंदगी के रंज ग्रो राहत से बेपरवा बना देना चाहती है। लेकिन लज्ज़तिया की इशरत ग्रंदोज़ियों[2] का वहां क्या मौक़ा हुग्रा ? जो नामुराद[3] क़ैदख़ाने से बाहर की ग्राज़ादियों में भी ज़िंदगी की ऐश कोशियों[4] से तिहीदस्त[5] रहते हैं, उन्हें क़ैद ग्रो बंद की महरूम[6] ज़िंदगी में इसका सरो सामान कहां मयस्सर ग्रा सकता है। लेकिन मैं ग्रापको याद दिलाऊँगा कि इंसान का ग्रसली ऐश दिमाग़ का ऐश है, जिस्म का नहीं है। मैं लज्ज़तिया से उनका दिमाग़ ले लेता हूँ, जिस्म उनके लिये छोड़ देता हूँ। दाग़ मरहूम ने नासह से सिर्फ़ उसकी ज़बान ले लेनी चाही थी :

मिले जो हश्र में, ले लूं ज़बान नासह की
ग्रजीब चीज़ है यह तूले-मुद्दग्रा के लिये

ग्रौर ग़ौर कीजिये तो यह भी हमारे वहम ग्रो ख़याल का एक फ़रेब ही है कि सरो सामाने-कार[7] हमेशा ग्रपने से बाहर ढूंढ़ते रहते हैं। ग्रगर यह पर्दये-फ़रेब हटाकर देखें तो साफ़ नज़र ग्रा जाये कि वो हमसे बाहर नहीं है। ख़ुद हमारे ग्रंदर ही मौजूद है। ऐश ग्रो मसर्रत[8] की जिन गुलशिगुफ़्तगियों[9] को हम चारों तरफ़ ढूंढ़ते हैं ग्रौर नहीं पाते वो हमारे निहांख़ानये-दिल[10] के चमनज़ारों में हमेशा खिलते ग्रौर मुरझाते रहते हैं। लेकिन महरूमी[11] सारी यह हुई कि हमें चारों तरफ़ की ख़बर है मगर ख़ुद ग्रपनी ख़बर नहीं।

कहीं तुझको न पाया गरचे हमने इक जहां ढूंढ़ा
फिर ग्राख़िर दिल ही में पाया, बग़ल ही में से तू निकला !

जंगल के मोर को कभी बाग़ ग्रो चमन की जुस्तजू नहीं हुई। उसका चमन ख़ुद उसकी बग़ल में मौजूद रहता है। जहां कहीं ग्रपने पर खोल देगा एक चमनिस्ताने-बूक़लमूं[12] खिल जायेगा :

१. वो शराब प्रत्येक ग्रादमी के होश की चीज़ नहीं है ग्रौर न उसकी बातों का हल्क़ा हर कान के योग्य है याने उसकी बातों को तो कोई बिरला ही समझ सकता है। २. रंगरलियां ३. ग्रभागा ४. मज़ा लेने में ५. ख़ाली हाथ ६. वंचित ७. कार्य पूर्ति के ग्रसबाब ८. ग्रानंद ग्रौर ख़ुशी ९. प्रफुल्लताग्रों के पुष्प १०. ग्रंतर के एकांत कोने की वाटिका में ११. दुर्भाग्य, वंचना १२. रंग बिरंग का बाग़।

न बा सहरा सरे दारम, न बा गुलज़ार सौदाये
ब हर जा मीरवम, अज़ ख़ेश मीजोशद तमाशाये[1] !

क़ैदख़ाने की चारदीवारी के अंदर भी सूरज हर रोज़ चमकता रहता है, और चाँदनी रातों ने कभी क़ैदी और ग़ैर क़ैदी में इम्तियाज़[2] नहीं किया। अँधेरी रातों में जब आसमान की क़ंदीलें रोशन हो जाती हैं तो वे सिर्फ़ क़ैदख़ाने के बाहर ही नहीं चमकतीं। असीराने-क़ैद[3] ओ मिहन को भी अपनी जलवा-फ़रोशियों[4] का पयाम भेजती रहती हैं। सुबह जब तबाशीर[5] बखेरती हुई आयेगी और शाम जब शफ़क़[6] की गुलगूं[7] चादरें फैलाने लगेगी तो सिर्फ़ इशरत सराओं[8] के दरीचों[9] ही से उनका नज़ारा नहीं किया जायेगा। क़ैदख़ाने के रोज़नों[10] से लगी हुई निगाहें भी उन्हें देख लिया करेंगी। फ़ितरत ने इंसान की तरह कभी यह नहीं किया कि किसी को शादकाम[11] रखे किसी को महरूम[12] कर दे। वो जब कभी अपने चेहरे से नक़ाब उलटती है तो सबको यकसां तौर पर नज़्ज़ारये-हुस्न[13] की दावत देती है। यह हमारी ग़फ़लत अंदेशी[14] है कि नज़र उठा कर देखते नहीं और सिर्फ़ अपने गिर्द ओ पेश[15] ही में खोये रहते हैं :

महरम[16] नहीं है तू ही नवाहाये-राज़का[17]
यां, वरना जो हिजाब[18] है, पर्दा है साज़ का !

जिस क़ैदख़ाने में सुबह हर रोज़ मुस्कुराती हो, जहाँ शाम हर रोज़ पर्दये-शब[19] में छिप जाती हो, जिसकी रातें कभी सितारों की क़ंदीलों से जगमगाने लगती हों, कभी चाँदनी की हुस्न-अफ़रोज़ियों[20] से जहाँताब[21] रहती हों, जहाँ दोपहर हर रोज़ चमके, शफ़क़ हर रोज़ निखरे, परिंदे हर सुबह ओ शाम चहकें उसे क़ैदख़ाना होने पर भी ऐश ओ मसर्रत के सामानों से ख़ाली क्यों समझ लिया जाये ? यहाँ सरो सामाने-कार की तो इतनी फ़रावानी[22] हुई कि किसी गोशे में भी गुम नहीं हो सकता। मुसीबत सारी यह है कि ख़ुद हमारा

१. न तो मुझे जंगल की इच्छा है और पुष्पवाटिका की चाह है। मैं तो जहाँ जाता हूँ ख़ुद अपने आप में से एक तमाशा जोश में आता है। २. फ़र्क़ ३. जेलख़ाने के क़ैदियों को ४. रूप प्रदर्शन ५. तबाशीर बंशलोचन को कहते हैं, सुबह के वक़्त चारों तरफ़ उजाला हो जाता है इसे बंशलोचन से उपमा दी है। ६. गोधूलि ७. पुष्परंजित, सुर्ख़ ८. भोगविलास के महलों के ९. वातायन १०. सूराख़ ११. ख़ुश १२. बंचित १३. सौंदर्य-दर्शन १४. अकर्मण्यता १५. आसपास १६. राज़दां १७. रहस्य की बातों का १८. पर्दा १९. रात का पर्दा २० रूप दीप्ति २१. जगत प्रकाशक २२. आधिक्य।

दिल ओ दिमाग़ ही गुम हो जाता है। हम अपने से बाहर सारी चीजें ढूँढ़ते रहेंगे, मगर अपने खोये दिल को कभी नहीं ढूँढ़ेंगे। हालाँकि अगर उसे ढूँढ़ निकालें तो ऐश ओ मसर्रत का सारा सामान उसी कोठरी में सिमटा हुआ मिल जाये :

बग़ैरे-दिल हमा नक़्श ओ निगार बेमानी स्त
हमीं वरक़ कि सियह गश्त, मुद्दआ ईंजा स्त ![1]

ऐवान[2] ओ महल न हों तो किसी दरख़्त के साये से काम ले लें। दीबा ओ मख़मल का फ़र्श न मिले तो सब्ज़ये-ख़ुद[3]रौके फ़र्श पर जा बैठें। अगर बरक़ी रोशनी[4] के कँवल मयस्सर नहीं हैं तो आसमान की क़ंदीलों को कौन बुझा सकता है? अगर दुनिया की सारी मसनुई[5] ख़ुशनुमाइयाँ[6] ओझल हो गई हैं तो हो जायें। सुबह अब भी हर रोज़ मुस्कुरायेगी। चाँदनी अब भी हमेशा जलवा फ़रोशियाँ[7] करेगी। लेकिन अगर दिले-ज़िंदा पहलू में न रहे तो ख़ुदारा[8] बतलाइये इसका बदल कहाँ ढूँढ़ें? उसकी ख़ाली जगह भरने के लिये किस चूल्हे के अंगारे काम देंगे?

मुझे यह डर है, दिले-ज़िंदा ! तू न मर जाये
कि ज़िंदगानी इबारत है तेरे जीने से।

मैं आपको बतलाऊँ, इस राह में मेरी कामरानियों[9] का राज़ क्या है? मैं अपने दिल को मरने नहीं देता। कोई हालत हो, कोई जगह हो, उसकी तड़प कभी धीमी नहीं पड़ेगी। मैं जानता हूँ कि जहाने-ज़िंदगी की सारी रौनक़ें इसी मैकदये-ख़िलवत[10] के दम से हैं। यह उजड़ा और सारी दुनिया उजड़ गई :

अज़ सद सख़ुने-पीरम यक हर्फ़ मरा याद स्त
"आलम न शवद वीरां ता मैकदा आबाद स्त[11] !"

बाहर के सारे साज़ ओ सामाने-इशरत[12] मुझसे छिन जायें, लेकिन जब तक यह नहीं छिनता, मेरे ऐश ओ तरब की सरमस्तियाँ कौन छीन सकता है?

१. बिना दिल के तमाम साज़ ओ सामान बेमानी हैं। यही पृष्ठ जो कि काला पड़ गया है मुद्दे की बात यहीं पर है। २. महल ३. जंगल की घास जो अपने आप उग आती है ४. बिजली की रोशनी ५. झूठी ६. सौंदर्य-प्रदर्शन की चीज़ें ७. रूप- प्रदर्शन ८. ख़ुदा के वास्ते। ९. सफलता १०. सुनसान मयख़ाना ११. मुझे मेरे गुरु की सौ बातों में से सिर्फ़ एक हर्फ़ याद है कि दुनिया तब तक वीरान नहीं होगी जब तक मयख़ाना आबाद है। १२. ख़ुशी के उपकरण।

दमीदश ख़ुर्रम ओ ख़ंदां क़दहे-बादा बदस्त
वां दरां आईना सदगूना तमाशा मीकर्द
गुफ़्तम-"ईं जामे-जहांबीं ब तू कै दाद हकीम ?"
गुफ़्त-"आं रोज़ कि ईं गुंबदे-मीना मीकर्द[1] !"

आपको मालूम है, मैं हमेशा सुबह तीन से चार बजे के अंदर उठता हूँ और चाय के पैहम[2] फ़िंजानों से जामे-सबूही[3] का काम लिया करता हूँ। ख़्वाजये शीराज़ की तरह मेरी सदाये-हाल[4] भी यह होती है कि :

ख़ुरशेदे-मय ज़ मशरिक़े-साग़र तुलूअ़ कर्द
गर बर्गे-ऐश मीतलबी तर्के-ख़्वाब कुन[5] !

यह वक़्त हमेशा मेरे औक़ाते-ज़िंदगी[6] का सबसे ज़्यादा पुरकैफ़[7] वक़्त होता है। लेकिन क़ैदख़ाने की ज़िंदगी में तो इसकी सरमस्तियाँ और ख़ुदफ़रामोशियाँ एक दूसरा ही आलम पैदा कर देती हैं। यहाँ कोई आदमी ऐसा नहीं होता जो उस वक़्त ख़्वाब-आलूदा[8] आँखें लिये हुये उठे और क़रीने[9] से चाय मेरे सामने धर दे। इसलिये ख़ुद अपने ही दस्ते-शौक़[10] की सरगर्मियों से काम लेना पड़ता है। मैं उस वक़्त बादये-कुहन[11] के शीशे की जगह चीनी चाय का ताज़ा डब्बा खोलता हूँ और एक माहिरे-फ़न[12] की दकीक़ासंजियों[13] के साथ दम देता हूँ। फिर जाम ओ सुराही को मेज़ पर दहनी तरफ़ जगह दूंगा कि उसकी अव्वलियत[14] इसीकी मुस्तहक़[15] हुई। क़लम ओ काग़ज़ को बाईं तरफ़ रखूँगा कि सरोसामाने-कार में उनकी जगह दूसरी हुई। फिर कुर्सी पर बैठ जाऊँगा। और कुछ न पूछिये कि बैठते ही किस आलम में पहुँच जाऊँगा ? किसी बादागुसार[16] ने शाम्पेन और बोरडो के सदसाला[17] तहख़ानों के अर्क़े-कुहन-साल[18]

---

१. वो जोश मार रहा था और ख़ुश था, हँस रहा था और हाथ में शराब का प्याला था और उस आईने में सौ तरह के तमाशे देख रहा था। मैंने पूछा कि ख़ुदाताला ने तुझे यह विश्वदर्शी प्याला कब उपहार में दिया तो उसने कहा कि उस रोज़ दिया जिस दिन कि उसने यह नीला आसमान का प्याला बनाया। २. लगातार ३. शराब के जाम ४. वक़्त का तराना ५. शराब का सूरज प्यालारूपी पूर्व दिशा से निकला है अगर तुझे ऐश का सामान चाहिये तो निद्रा त्याग। ६. औक़ात वक़्त का बहुवचन है, औक़ाते-ज़िंदगी यानें जीवनकाल। ७. आनंद भरा ८. नींद में डूबी हुई ९. ढंग से १०. तलब के हाथों की ११. पुरानी शराब १२. कला के मर्मज्ञ १३. सूक्ष्म दृष्टि १४. प्राथमिकता १५. अधिकारी १६. पियक्कड़ १७. सौ साला १८. कई साल पुरानी शराब।

में भी वो कैफ़ ओ सुरूर कहाँ पाया होगा जो चाय के इस दौरे-सुबहगाही का हर घूंट मेरे लिये मुहय्या कर देता है।

मा दर पयाला अक्से-रुख़े-यार दीदा ऐम
अय बेख़बर ज़ लज़्ज़ते-शुरबे-मदामे-मा ![1]

आपको मालूम है कि मैं चाय के लिये रूसी फ़िंजान काम में लाता हूँ। ये चाय की मामूली प्यालियों से बहुत छोटे होते हैं। अगर बेज़ौक़ी[2] के साथ पीजिये तो दो घूंट में ख़त्म हो जायें। मगर ख़ुदा न ख़ास्ता[3] मैं ऐसी बेज़ौक़ी का मुर्तकिब[4] क्यों होने लगा ? मैं जुरअे-कशाने-कुहन-मश्क़[5] की तरह ठहर ठहर कर पीऊँगा, और छोटे छोटे घूंट लूंगा। फिर जब पहला फ़िंजान ख़त्म हो जायेगा तो कुछ देर के लिये रुक जाऊँगा और इस दरमियानी वक़्फ़े[6] को इम्तिदादे-कैफ़[7] के लिये जितना तूल[8] दे सकता हूँ तूल दूंगा। फिर दूसरे और तीसरे के लिये हाथ बढ़ाऊँगा और फिर दुनिया को और उसके सारे कारख़ानये-सूद ओ ज़ियाँ[9] को यकक़लम फ़रामोश कर दूंगा :

ख़ुशतर अज़ फ़िक्रे-मय ओ जाम च ख़्वाहिद बूदन
ता बबीनेम, सर अंजाम च ख़्वाहिद बूदन[10] !

इस वक़्त भी कि ये सतरें बेइख़्तियार नोके-क़लम से निकल रही हैं, उसी आलम में हूँ और नहीं जानता कि ९ अगस्त की सुबह के बाद से दुनिया का क्या हाल हुआ, और अब क्या हो रहा है ?

शराबे-तल्ख़ दिह साक़ी कि मर्द अफ़गन बुवद ज़ोरश
कि ता यक दम बयासायम ज़ दुनिया ओ शर ओ शोरिश
कमंदे-सैदे-बहरामी बयफ़गन, जामे-मय बरदार
कि मन पैमूदम ईं सहरा न बहराम स्त ने गोरश[11]

---

१. मैंने प्याले में अपने प्रीतम के मुखड़े की परछाइं देखी है, अय बेख़बर तू मेरी इस शाश्वत शराब का मज़ा क्या जाने। २. गँवारपन ३. ईश्वर न करे ४. करने वाला ५. पुराने अभ्यस्त पीने वाले की तरह ६. अंतर को ७. मज़े को बढ़ाने के लिये ८. लंबाई ९. नफ़ा नुकसान के कारख़ाने को याने दुनिया को। १०. शराब और प्याले की चिंता के सिवा और क्या चीज़ सुखद होगी ताकि देखें कि काम का परिणाम क्या होगा। ११. अय साक़ी तेज़ शराब दे कि उसका नशा मर्द को पछाड़ने वाला हो ताकि एक क्षण के लिये दुनिया और उसके शोरशराबे से आराम पाऊं। बहराम के शिकार करने की कमंद हाथ से अलग फेंक दे, और शराब का प्याला ला क्योंकि मैंने यह सारा जंगल छान डाला है यहाँ न तो बहराम है और न उसका शिकार गोर ख़र।

मेरा दूसरा पुर कैफ़ वक़्त दोपहर का होता है या ज्यादा सिहते-तअय्युन[१] के साथ कहूँ कि ज़वाल[२] का होता है। लिखते लिखते थक जाता हूँ तो थोड़ी देर के लिए लेट जाता हूँ। फिर उठता हूँ, ग़ुसल[३] करता हूँ, चाय का दौर ताजा करता हूँ और ताज़ादम होकर फिर अपनी मशग़ूलियतों[४] में गुम हो जाता हूँ। उस वक़्त आसमान की बेदाग़ नीलगूनी[५] और सूरज की बेनक़ाब दरख़्शंदगी[६] का जी भर के नज़्ज़ारा करूंगा और रवाक़े-दिल[७] का एक एक दरीचा[८] खोल दूंगा। गोशहाये-ख़ातिर[९] अफ़सुर्दगियों[१०] और गिरफ़्तगियों[११] से कितने ही गुबार आलूद[१२] हों लेकिन आसमान की कुशादा-पेशानी[१३] और सूरज की चमकती हुई ख़ंदा-रूई[१४] देखकर मुमकिन नहीं कि अचानक रोशन न हो जायें :

बाजम ब कुलबा कीस्त, न शमा ओ न आफ़ताब
बाम ओ दरम ज ज़र्रा ओ परवाना पुर शुदा स्त ![१५]

लोग हमेशा इस खोज में लगे रहते हैं कि ज़िंदगी को बड़े बड़े कामों के लिये काम में लायें। लेकिन नहीं जानते कि यहाँ एक सबसे बड़ा काम खुद ज़िंदगी हुई, याने ज़िंदगी को हँसी ख़ुशी काट देना। यहाँ इससे सहज काम कोई न हुआ कि मर जाइये और इससे ज्यादा मुश्किल काम कोई न हुआ कि ज़िंदा रहिये। जिसने यह मुश्किल हल कर ली उसने ज़िंदगी का सबसे बड़ा काम अंजाम दे दिया।

नासहम गुफ़्त कि जुज़ ग़म च हुनर दारद इश्क़ ?
गुफ़्तम "अय ख़्वाजये-आक़िल ! हुनरे बेहतर अज़ीं !"[१६]

ग़ालिबन[१७] क़दीम[१८] चीनियों ने ज़िंदगी के मसले को दूसरी क़ौमों से बेहतर समझा था। एक पुराने चीनी मक़ूले[१९] में सवाल किया गया है—"सबसे ज्यादा दानिशमंद आदमी कौन है ?" फिर जवाब दिया है— "जो सबसे

१. बिल्कुल सही तौर पर २. उतार ३. स्नान ४. प्रवृत्तियों में ५. नीलिमा ६. चमक ७. दिल का कमरा ८. वातायन ९. दिल का कोना १०. उदासीनता ११. अकड़ १२. मलिन और खिन्न १३. विशाल मस्तक १४. प्रसन्न मुद्रा १५. अपनी अँधेरी कोठरी में देखता हूँ तो क्या है, न शमा है और न आफ़ताब लेकिन अटारी और दरवाज़े पर ज़र्रों और परवानों का ढेर लग गया है। १६. धर्मोपदेशक ने मुझसे कहा कि इश्क़ में सिवा ग़म के और क्या गुण है ? मैंने कहा—अय अक़्लमंद ! इससे बढ़कर गुण कौन सा है ! १७. संभवतः १८. पुराने १९. उक्ति।

ज़्यादा ख़ुश रहता है ?" इससे हम चीनी फ़िलसफ़ये-ज़िंदगी का ज़ावियये-निगाह[1] मालूम कर ले सकते हैं। और इसमें शक नहीं कि यह बिल्कुल सच है :

न हर दरख़्त तहम्मुल कुनद जफ़ाये-ख़िज़ां
ग़ुलामे-हिम्मते-सरवम कि ईं क़दम दारद ![2]

अगर आपने यहाँ हर हाल में ख़ुश रहने का हुनर सीख लिया है तो यक़ीन कीजिये कि ज़िंदगी का सबसे बड़ा काम सीख लिया। अब इसके बाद इस सवाल की गुंजाइश ही नहीं रही कि आपने और क्या क्या सीखा ? ख़ुद भी ख़ुश रहिये और दूसरों से भी कहते रहिये कि अपने चेहरों को ग़मगीन न बनायें.

चु महमाने-ख़राबाती ब इशरत बाश बा रिंदां
कि दर्द-सर कशी जानां, गर ईं मस्ती ख़ुमार आरद[3]

ज़मानये-हाल के एक फ़रांसीसी अहले-क़लम[4] आंद्री ज़ीद (Andre Gide) की एक बात मुझे बहुत पसंद आई जो उसने अपनी ख़ुदनविश्ता[5] सवानह[6] में लिखी है। ख़ुश रहना महज़[7] एक तबई[8] एहतियाज[9] ही नहीं है बल्कि एक अख़लाक़ी[10] ज़िम्मेदारी है। यानी हमारी इंफ़रादी[11] ज़िंदगी की नौइयत[12] का असर सिर्फ़ हम ही तक महदूद[13] नहीं रहता वो दूसरों तक मुतअद्दी[14] होता है। या यों कहिये कि हमारी हर हालत की छूत दूसरों को भी लगती है। इसलिये हमारा अख़लाक़ी फ़र्ज़ हुआ कि ख़ुद अफ़सुर्दा ख़ातिर[15] होकर दूसरों को अफ़सुर्दा ख़ातिर न बनायें :

अफ़सुर्दा दिल अफ़सुर्दा कुनद अंजुमनेरा ![16]

हमारी ज़िंदगी एक आईनाख़ाना[17] है। यहाँ हर चेहरे का अक्स बयकवक़्त[18] सैकड़ों आईनों में पड़ने लगता है। अगर एक चेहरे पर भी ग़ुबार आ जायेगा तो सैकड़ों चेहरे ग़ुबारआलूद हो जायेंगे। हममें से हर फ़र्द की ज़िंदगी महज़ एक इंफ़रादी वाक़ा नहीं है, वो पूरे मजमूअ[19] का हादिसा[20] है। दरिया की

१. दृष्टिकोण २. प्रत्येक पेड़ ख़िज़ां की सख़्तियों को सहन नहीं कर सकते। मैं तो सर्व की हिम्मत का ग़ुलाम हूँ कि उसमें यह गुण है ३. मयख़ाने के मेहमानों की तरह मस्त रिंदों के साथ आनंदमग्न रह, अगर इस मस्ती में ख़ुमार आया तो प्यारे फिर दर्दसर उठाना पड़ेगा ४. लेखक, कलम का धनी ५. स्वलिखित ६. जीवनी ७. सिर्फ़ ८. स्वाभाविक ९. ज़रूरत १०. नैतिक ११. व्यक्तिगत १२. क़िस्म १३. सीमित १४. लगने वाला १५. उदास, खिन्नमन १६. उदास मन सारी जमात को उदास कर देता है १७. शीशे की कोठरी, शीश महल १८. एक ही समय १९. जमात २०. घटना।

सतह पर एक लहर तनहा उठती है लेकिन उसी एक लहर से बेशुमार लहरें बनती चली जाती हैं। यहाँ हमारी कोई बात भी सिर्फ़ हमारी नहीं हुई। हम जो कुछ अपने लिए करते हैं, उसमें भी दूसरों का हिस्सा होता है। हमारी कोई ख़ुशी भी हमें ख़ुश नहीं कर सकेगी अगर हमारे चारों तरफ़ ग़मनाक चेहरे इकट्ठे हो जायेंगे। हम ख़ुद ख़ुश रहकर दूसरों को ख़ुश करते हैं और दूसरों को ख़ुश देखकर ख़ुद ख़ुश होने लगते हैं। यही हक़ीक़त है जिसे उरफ़ी ने अपने शायराना पैराये में अदा किया था :

बदीदारे-तू दिल शादंद बा हम दोस्ताने-तू
तुरा हम शादमां ख़्वाहम चु रूये-दोस्तां बीनी ![1]

यह अजीब बात है कि मज़हब, फ़िलसफ़ा और अख़लाक़ तीनों ने ज़िंदगी का मसला हल करना चाहा और तीनों में ख़ुद ज़िंदगी के ख़िलाफ़ रुझान पैदा हो गया। आम तौर पर समझा जाता है कि एक आदमी जितना ज़्यादा बुझा दिल और सूखा चेहरा लेकर फिरेगा उतना ही ज़्यादा मज़हबी, फ़िलसफ़ी, और अख़लाक़ी क़िस्म का होगा। गोया इल्म और तक़द्दुस[2] दोनों के लिये यहाँ मातमी ज़िंदगी ज़रूरी हुई। ज़िंदगी की तहक़ीर[3] और तौहीन सिर्फ़ यूनान के कलबिया ही का शिआर[4] न था, बल्कि रवाक़ी (stoics) और मश्शाई (peripatetic) नुक़्तेनिगाह में भी इसके अनासिर[5] बराबर काम करते रहे। नतीजा यह निकला कि रफ़्ता रफ़्ता अफ़सुर्दादिली[6] और तुर्शरूई[7] फ़िलसफ़ियाना मिज़ाज का एक नुमायां[8] ख़त ओ ख़ाल[9] बन गई। अख़लाक़ से अगर उसके मज़हबे-तमानियत ओ मसर्रत (Eudamonism) और माद्दियाती मज़हबे-इशरत (Hedonism) के तसव्वुरात मुस्तस्ना[10] कर दीजिये तो उसका आम तबई[11] मिज़ाज फ़िलसफ़ियाना सिरकारूई[12] से ख़ाली नहीं मिलेगा। मज़हब और रूहानियात[13] की दुनिया में तो ज़ोहदे-ख़ुश्क[14] और तबए-ख़ुनक[15] की इतनी गरम बाज़ारी हुई कि अब ज़ोहद-मज़ाजी[16] और हक़-आगाही[17] के साथ किसी हँसते हुए चेहरे का तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता। दीनदारी[18] और सक़ालते-तबा[19] तक़रीबन मरादिफ़[20] लफ़्ज़ बन गये हैं। यहाँ तक कि क़ाआनी को

१. तेरे दर्शन से दिल ख़ुश करते हैं और तेरे दोस्तों से भी। हम चाहते हैं कि तू भी जब दोस्तों को देखे तो ख़ुश दिखाई देना २. पवित्रता ३. उपेक्षा ४. गुण ५. तत्व ६. मन की खिन्नता ७. चेहरे की कटुता ८. ज़ाहिरा ९. नखसिख १०. अलग ११. मानसिक स्वभाव। १२. उदास चेहरा १३. अध्यात्म १४. कठिन तपस्या १५. ठंडे स्वभाव की १६. तापसी स्वभाव १७. सत्यद्रष्टा १८. धार्मिकता १९. स्वभाव की कठोरता २०. पर्यायवाची।

असबाबे-तरबरा बिबर अज मजलिस बेरूं
ज़ां पेश कि नागाह सक़ीले रसद अज दर[1]

आप जानते हैं कि अहले-ज़ौक़[2] की मजलिसे-तरब[3] तंग दिलों के गोशये-ख़ातिर[4] की तरह तंग नहीं होती, उसकी वुसअत[5] में बड़ी समाई है। निज़ामी गंजवी ने इसकी तसवीर खींची थी :

हर च दर जुमला ब आफ़ाक़ दरीं जा हाज़िर
मोमिन ओ अरमनी ओ गब्र ओ नसारा ओ यहूद![6]

लेकिन इतनी समाई होने पर भी अगर किसी चीज़ की वहाँ गुंजाइश न निकल सकी तो वो ज़ाहिदाने-ख़ुश्क के ज़ख़ीम[7] और गुंबदनुमा अमामे[8] थे। एक अमामा भी पहुँच जाता है तो पूरी मजलिस तंग हो जाती है। इसीलिये बाज़ याराने-बेतकल्लुफ़ को कहना पड़ा था :

दर मजलिसे-मा ज़ाहिद! ज़िनहार तकल्लुफ़ नेस्त
अलबत्ता तो मीगुंजी, अम्मामा न मीगुंजद![9]

यह सच है कि जिन मसलों को दुनिया सैकड़ों बरस की काविशों[10] से भी हल न कर सकी, आज हम अपनी ख़ुश तबई[11] के चंद लतीफ़ों से उन्हें हल नहीं कर दे सकते। ताहम[12] यह मानना पड़ेगा कि यहाँ एक हक़ीक़त से इंकार नहीं किया जा सकता। एक फ़िलसफ़ी, एक ज़ाहिद, एक साधू का ख़ुश्क चेहरा बनाकर हम उस मुरक़्क़े में खप नहीं सकते जो नक़्क़ाशे-फ़ितरत के मूक़लम[13] ने यहाँ खींच दिया है। जिस मुरक़्क़े में सूरज की चमकती हुई पेशानी, चाँद का हँसता हुआ चेहरा, सितारों की चश्मक[14], दरख़्तों का रक़्स[15], परिंदों का नग़मा, आबे-रवां[16] का तरन्नुम[17] और फूलों की रंगीन अदायें अपनी अपनी जलवा-तराज़ियां[18] रखती हों, उसमें हम एक बुझे हुए दिल और सूखे हुए चेहरे के साथ जगह पाने के यक़ीनन मुस्तहक़[19] नहीं हो सकते। फ़ितरत[20] की इस

---

१. ख़ुशी के सामानों को मजलिस से बाहर कर दो इससे पहले कि अचानक दरवाज़े से कोई भारी चेहरे का आदमी आये। २. रुचि वाले लोग ३. आनंद की बैठक ४. दिल का कोना ५. विस्तार ६. जो कुछ सारी दुनिया में है वो सब मस्तों की मंडली में यहाँ हाज़िर है, मोमिन, आरमीनिया वासी अग्निपूजक, नसारी और यहूदी यहाँ सभी मौजूद हैं। ७. बड़े, विशाल ८. पगड़ ९. अय ज़ाहिद! मेरी मजलिस में हरगिज़ तकल्लुफ़ नहीं है। हाँ इसमें तू समा सकता है लेकिन तेरी पगड़ी नहीं समा सकती। १०. जुस्तजू ११. प्रसन्नचित्तता, स्वभाव की प्रसन्नता १२. फिर भी १३. तूलिका १४. जगमग १५. नृत्य १६. बहते हुए पानी १७. तराना १८. रूपप्रदर्शन १९. अधिकारी २०. प्रकृति।

बज़्मे-निशात[1] में तो वही ज़िंदगी सज सकती है जो एक दहकता हुआ दिल पहलू में और चमकती हुई पेशानी चेहरे पर रखती हो। और जो चाँदनी में चाँद की तरह निखर कर, सितारों की छाँव में सितारों की तरह चमककर, फूलों की सफ़[2] में फूलों की तरह खिलकर अपनी जगह निकाल ले सकती हो। सायब क्या खूब कह गया है :

दरीं दो हफ़्ता कि चूं गुल दरीं गुलिस्तानी
कुशादा रूयेतर अज राजहाये-मस्तां बाश !
तमीजे-नेक ओ बदे-रोजगार कारे-तू नेस्त
चु चश्मे-आईना, दर खूब ओ जश्त हैरां बाश ![3]

१. आनन्द सभा २. क़तार ३. इस वाटिका में पुष्प की तरह दो हफ़्ते के लिए तू अगर है तो मस्तों की तरह प्रसन्न मुद्रा होकर रह। दुनिया के भले-बुरे की नुक़्ताचीनी करना यह तेरा काम नहीं है तू तो दर्पण की आँख की तरह दुनिया के बुरे भले को देख कर हैरान रह।

क़िलअ-ग्रहमदनगर
२६, ग्रगस्त, सन् १६४२ ई.

ईं रस्म ग्रो राहे-ताजा ज़ हिरमाने-ग्रहदे-मा स्त
ग्रन्क़ा बरोज़गार कसे नामावर न बूद[1]

सदीक़े–मुकर्रम

वही चार बजे सुबह का जांफ़िज़ा वक़्त है। चाय का फ़िंजान सामने धरा है ग्रौर तबीयत दराज़-नफ़्सी के लिए बहाने ढूंढ़ रही है। जानता हूँ कि मेरी सदायें ग्राप तक नहीं पहुँच सकेंगी, ताहम तबग्रे-नाला-संज[2] को क्या करूँ कि फ़रयाद व शेवन[3] के बग़ैर रह नहीं सकती। ग्राप सुन रहे हों या न सुन रहे हों, मेरे ज़ौक़े-मुख़ातिबत के लिए यह ख़याल बस करता है कि रूये-सुख़न ग्राप की तरफ़ है :

ग्रगर न दीदी तपीदने-दिल, शुनीदनी बूद नालये-मा ![4]

बांसरी ग्रंदर से ख़ाली होती है, मगर फ़रयादों से भरी होती है। यही हाल मेरा है :

ब फ़सानये-हवसे-तरब, तिही ग्रज़ ख़ुद ग्रेम ग्रो पुर ग्रज़ तलब
च दमद ज़ रख़्नते-सिफ़्रे-नै बजुज़ ईं कि नाला फ़ुज़ूं कुनद[5]

क़ैद ग्रो बंद के जितने तजरुबे इस वक़्त तक हुए थे, मौजूदा तजरुबा उन सबसे कई बातों में नई क़िस्म का हुग्रा। ग्रब तक यह सूरत रहती थी कि क़ैदख़ाने के क़वायद के मातहत ग्रज़ीज़ों ग्रौर दोस्तों से मिलने का मौक़ा मिल जाया करता था। निज की ख़त ग्रो किताबत रोकी नहीं जाती थी। ग्रख़बारात दिये जाते थे, ग्रौर ग्रपने ख़र्च से मँगवाने की भी इजाज़त होती थी। ख़ास-ख़ास हालतों में इससे भी ज़्यादा दरवाज़ा खुला रहता था। चुनांचे जहाँ तक ख़त ग्रो किताबत ग्रौर मुलाक़ातों का ताल्लुक़ है मुझे हमेशा ज़्यादा सहूलियतें हासिल

---

१. पहले ग्रा चुका है २. फ़रियाद करने की मनोवृत्ति ३. शिकायतों के ४. ग्रगर तुझे मेरे दिल का तड़पना नहीं दिखाई दिया तो मेरा रोना तो सुनने लायक था। ५. ख़ुशी की चाह की कहानी से मैं ग्रपने ग्रापमें रिक्त ग्रौर कामनाग्रों से भरा हूँ। बाँसरी के सूराख़ों से क्या निकलेगा सिवा इसके कि चीख़ को तेज़ कर देगी।

रहीं। इस सूरते-हाल का नतीजा यह था कि गो हाथों में ज़ंजीरें और पावों में बेड़ियाँ पड़ जाती थीं लेकिन कान बंद नहीं हो जाते थे और आँखों पर पट्टियाँ नहीं बँधती थीं। क़ैद ओ बंद की सारी रुकावटों के साथ भी आदमी महसूस करता था कि अभी तक उसी दुनिया में बस रहा है जहाँ गिरफ़्तारी से पहले रहा करता था :

ज़िंदाँ में भी ख़याल बयाबाँ-निवर्द था ![1]

खाने-पीने और साज़ ओ सामान की तकलीफ़ें उन लोगों को परेशान नहीं कर सकतीं जो जिस्म की जगह दिमाग़ की ज़िंदगी बसर करने के आदी हो जाते हैं। आदमी अपने आपको अहसासात[2] की आम सतह से ज़रा भी ऊँचा कर ले तो फिर जिस्म की आसाइशों[3] का फ़ुक़दान[4] उसे परेशान नहीं कर सकेगा। हर तरह की जिस्मानी राहतों से महरूम रहकर भी एक मुतमयिन[5] ज़िंदगी बसर कर दी जा सकती है। और ज़िंदगी बहरहाल बसर हो ही जाती है :

रग़बते-जाह च ओ नफ़रते-असबाब कुदाम ?
ज़ीं हवसहा बगुज़र या न गुज़र, मीगुज़रद ![6]

यह हालत इक़ताअ़ ओ तजर्रुद[7] का एक नक़्शा बनाती थी। मगर नक़्शा अधूरा होता था। क्योंकि न तो बाहर के इलाक़े पूरी तरह मुन्क़ता हो जाते थे, न बाहर की सदाओं को ज़िंदान की दीवारें रोक सकती थीं :

क़ैद में भी तिरे वहशी को रही ज़ुल्फ़ की याद
हाँ, कुछ इक रंज गिराँबारिये-ज़ंजीर भी था

लेकिन इस मर्तबा जो हालत पेश आई उसने एक दूसरी ही तरह का नक़्शा खींच दिया। बाहर की न सिर्फ़ तमाम सूरतें ही यकक़लम नज़रों से ओझल हो गईं, बल्कि सदायें भी बयक दफ़ा रुक गईं। असहाबे-कहफ़[8] की निस्बत कहा गया है :

कान लम यकुन बैनल हुजूनि इलस्सफ़ा
अनीसुन व लम यस्मुर बिमक्कत सामिर[9]

अचानक एक नई दुनिया में लाकर बंद कर दिये गये जिसका पूरा जुग़राफ़िया एक सौ गज़ से ज़्यादा फ़ैलाव नहीं रखता, और जिसकी सारी मर्दुमशुमारी पंद्रह

---

१. क़ैदख़ाने में भी ख़याल जंगल में भटक रहा था। २. अनुभूति ३. आराम, सुख चैन ४. कमी ५. संतुष्ट ६. कैसी तो किसी पद की इच्छा या कैसी सरो सामान से घृणा ? इस तृष्णाओं से दूर हो या न हो लेकिन ये गुज़र ही जाती हैं। ७. विच्छेद और विरक्ति की स्थिति ८. गुफा में रहने वाले ९. गोया हुजून और सफ़ा के पहाड़ों के बीच कोई दोस्त नहीं है और मक्के में कोई कहानी कहने वाला नहीं रहा।

ज़िंदा शक्लों से ज़्यादा नहीं। इसी दुनिया में हर सुबह् की रोशनी तुलूअ़[1] होने लगी। इसीमें हर शाम की तारीकी[2] फैलने लगी :

गोया न वो ज़मीं है न वो आसमां है अब !

अगर कहूँ कि इस नागहानी सूरते-ह़ाल से तबीयत का सुकून[3] मुतासिर[4] नहीं हुआ तो यह सरीह्[5] बनावट होगी। वाक़ा यह है कि तबीयत मुतासिर हुई और तेज़ी और सिद्दत[6] के साथ हुई, लेकिन यह भी वाक़ा है कि इस ह़ालत की उम्र चंद घंटों से ज़्यादा न थी। चुनांचे गिरफ़्तारी के दूसरे ही दिन जब ह़स्बे-मामूल अलस्सबाह्[7] उठा और जाम और मीना का दौर गर्दिश में आया तो ऐसा महसूस होने लगा जैसे तबीयत का सारा इंक़बाज़[8] अचानक दूर हो रहा हो और अफ़सुर्दगी[9] व तंगी की जगह् इंशराह्[10] ओ शिगुफ़्तगी[11] दिल के दरवाज़े पर दस्तक दे रही हो। हा मुख़लिस खां आलमगीरी ने क्या ख़ूब लफ़्फ़ ओ नशर[12] मुरत्तब किया है। इस ज़ौके-सुख़नमें मेरा साथ दीजिये :

ख़ुमारे-मा, व दरे-तोबा व दिले-साक़ी
बयक तबस्सुमे-मीना शिकस्त ओ बस्त ओ कुशाद ![13]

अब मालूम हुआ कि अगरचे निगाहों और कानों की एक महदूद दुनिया खोई गई है। मगर फ़िक्र ओ तसव्वुर की कितनी ही नई दुनियायें अपनी सारी पहनाइयों[14] और बे कनारियों के साथ सामने आ खड़ी हुई हैं। अगर एक दरवाज़े के बंद होने पर इतने दरवाज़े खुल जा सकते हैं तो कौन ऐसा ज़याने-अक़्ल[15] होगा जो इस सौदे पर गिलमंद[16] हो :

नुक़सां नहीं जुनूं में, बला से हो घर ख़राब
वो गज़ ज़मीं के बदले बयाबां गरां नहीं !

बाक़ी रही क़ैद ओ बंद की तनहाई[17] और अलायक़[18] का इंक़ताअ़[19], तो ह़क़ीक़त यह है कि यह ह़ालत कभी मेरे लिये मूजिबे-शिकायत न हो सकी। मैं इससे

---

१. उदय होना २. अँधेरा ३. शांति ४. प्रभावित ५. बिल्कुल ६ ज़ोर के साथ ७. सुबह् सबेरे ८. घुटन ९. उदासी १०. प्रफुल्लता ११. प्रसन्नता १२. लफ़्फ़ ओ नशर का ततलब है लपेटना और फैलाना। जहाँ पद्य में पहले कोई बात लपेटी जाय फिर उसी को फैलाया जाय इसे लफ़्फ़ ओ नशर कहते हैं। १३. मेरा ख़ुमार, तोबा का दरवाज़ा और साक़ी का दिल, शराब की सुराही की एक मुस्कुराहट से ख़ुमार टूट गया, तोबा का दरवाज़ा बंद हो गया, साक़ी का दिल खुल गया १४. विस्तृति १५. अक़्ल का मारा १६. शिकायत करने वाला १७. अकेलापन १८. सम्बन्ध १९. कट जाना।

गुरेजां[1] नहीं रहता, इसका आरजूमंद रहता हूँ। तनहाई ख्वाह किसी हालत में आये और किसी शक्ल में, मेरे दिल का दरवाजा हमेशा खुला पायेगी—बातिनुहु फ़िहिर्रहमतु व ज़ाहिरुहु मिन्क़िब्लतिल अज़ाबि[2]।

इब्तदा ही से तबीयत की उफ़्ताद कुछ ऐसी वाक़े हुई थी कि खिलवत[3] का ख्वाहां और जलवत[4] से गुरेजां रहता था। यह ज़ाहिर है कि ज़िंदगी की मशग़ूलियतों के तक़ाज़े इस तबअ़-वहशत-सरिश्त[5] के साथ निभाये नहीं जा सकते इसलिये बतकल्लुफ़ खुद को अंजुमन आराइयों[6] का खूगर[7] बनाना पड़ता है। मगर दिल की तलब हमेशा बहाने ढूंढ़ती रहती है। जूंही जरूरत के तक़ाज़ों से मोहलत मिली और वो अपनी कामजोइयों[8] में लग गई :

दर खराबातम न दीदस्ती खराब
बादा पिंदारी कि पिनहां मीज़नम[9]

लोग लड़कपन का ज़माना खेल कूद में बसर करते हैं। मगर बारह तेरह बरस की उम्र में मेरा यह हाल था कि किताब लेकर किसी गोशे में जा बैठता और कोशिश करता कि लोगों की नज़रों से ओझल हूँ। कलकत्ते में आपने डलहौज़ी स्क्वायर जरूर देखा होगा। जनरल पोस्टआफ़िस के सामने वाक़े है। इसे आम तौर पर लालडिग्गी कहा करते थे। इसमें दरख्तों का एक झुंड था कि बाहर से देखिये तो दरख्त ही दरख्त हैं, अन्दर जाइये तो अच्छी खासी जगह है और एक बेंच भी बिछी हुई है। मालूम नहीं अब भी यह झुंड है कि नहीं। मैं जब सैर के लिये निकलता तो किताब साथ ले जाता और इस झुंड के अन्दर बैठ कर मुताले में ग़र्क़ हो जाता। वालिद मरहूम के खादिमे-खास हाफ़िज़ वलीउल्ला मरहूम साथ हुआ करते थे। वो बाहर टहलते रहते और झुँझला झुँझला कर कहते "अगर तुझे किताब ही पढ़नी थी तो घर से निकला क्यों?" ये सतरें लिख रहा हूँ और उनकी आवाज़ कानों में गूंज रही है। दरिया के किनारे ईडन गार्डन में भी इस तरह के कई झुंड थे। एक झुंड जो बरमी पगोडा के पास मसनूई[10] नहर के किनारे था और शायद अब भी हो, मैंने चुन लिया था। क्योंकि इस तरफ़ लोगों का गुज़र बहुत कम होता था। अकसर सिह पहर[11] के वक्त किताब लेकर निकल जाता और शाम तक उसके अन्दर गुम रहता। अब वो ज़माना याद आ जाता है तो दिल का अजीब हाल होता है।

१. नफ़रत करना २. अन्तर में सुखदाई और बाहर से कष्टप्रद दिखाई देती है। ३. एकांत ४. दिखावा ५. एकांतप्रिय प्रकृति ६, सभा सोसाइटी ७. अभ्यासी ८. प्रवृति ९. तूने मुझे खराबात में खराब नहीं देखा है तो यही समझ कि मैं छिपकर शराब पीता हूँ १०. कृत्रिम ११. तीसरे पहर।

आलमे-बेख़बरी तुर्फ़ा बहिश्ते बूद स्त
हैफ़ सद हैफ़ कि मा देर ख़बरदार शुदेम[1]

कुछ यह बात न थी कि खेलकूद और सैर ओ तफ़रीह के वसायल[2] की कमी हो। मेरे चारों तरफ़ इनकी तरग़ीबात[3] फैली हुई थी और कलकत्ता जैसा हंगामा गरमकुन शहर था। लेकिन मैं तबियत ही कुछ ऐसी लेकर आया था कि खेल कूद की तरफ़ रुख़ ही नहीं करती थी।

हमा शहर पुर ज़ ख़ूबां मनम ओ ख़याले-माहे
च कुनम कि चश्मे-बदख़ू न कुनद ब कस निगाहे[4]

वालिद मरहूम मेरे इस शौक़े-इल्म से ख़ुश होते मगर फ़रमाते यह लड़का अपनी तनदुरुस्ती बिगाड़ देगा। मालूम नहीं जिस्म की तनदुरुस्ती बिगड़ी या सँवरी मगर दिल को तो ऐसा रोग लग गया कि फिर कभी पनप न सका।

कँ गुफ़्ता बूद कि दर्दश दवापज़ीर मबाद[5] !

मेरी पैदाइश एक ऐसे ख़ानदान में हुई जो इल्म ओ मशीख़त[6] की बुज़ुर्गी और मरजईयत[7] रखता था। इसलिये ख़लक़त का जो हुजूम[8] ओ एहतराम[9] आजकल सियासी लीडरों के उरूज[10] का कमाले-मर्तबा[11] समझा जाता है, वो मुझे मज़हबी अक़ीदत मंदियों[12] की शक्ल में बग़ैर तलब ओ सई[13] के मिल गया था। मैंने अभी होश भी नहीं सँभाला था कि लोग पीरज़ादा समझ कर मेरे हाथ पाँव चूमते थे और हाथ बाँध कर सामने खड़े रहते थे। ख़ानदानी पेशवाई और मशीख़त की इस हालत में नौ उम्र तबीयतों के लिये बड़ी ही आज़माइश होती है। अकसर हालतों में ऐसा होता है कि इब्तदा ही से तबीयतें बरख़ुद[14] ग़लत हो जाती हैं और नस्ली ग़ुरूर और पैदाइशी ख़ुदपरस्ती का वही रोग लग जाता है जो ख़ानदानी अमीरज़ादों की तबाही का बायस[15] हुआ करता है। मुमकिन है, उसके कुछ न कुछ असरात मेरे हिस्से में भी आये हों। क्योंकि अपनी चोरियाँ पकड़ने के लिये ख़ुद अपने कमीनमें[16] बैठना जैसा कि उरफ़ी ने कहा है, आसान नहीं

१. आत्मविस्मृति का ज़माना और ही स्वर्ग हो गया है लेकिन अफ़सोस है और सद अफ़सोस है कि हम देर से चेते। २. वसीले, उपकरण ३. प्रेरणायें ४. सारा शहर रूपसियों से भरा है और मैं चाँद के ख़्याल में हूँ। क्या करूँ प्रकृति ही कुछ ऐसी ख़राब है कि किसी की तरफ़ निगाह ही नहीं करती। ५. कब कहा था कि उसका रोग औषधि के योग्य न हूजियो ६. शेख़पन, गुरुता ७. रुजू होना, रुझान ८. भीड़ ९. सम्मान १०. उत्कर्ष ११. चरम सीमा १२. धार्मिक श्रद्धा और भक्ति १३. चाह और कोशिश १४. अपने आप पर १५. हेतु १६. घात में।

ख्वाही कि ऐबहाये-तू रोशन शवद तुरा
यक दम मुनाफ़िक़ाना नशीं दर कमीने-ख़ेश[1] !

लेकिन जहाँ तक अपनी हालत का जायज़ा ले सकता हूँ। मुझे यह कहने में ताम्मुल[2] नहीं कि मेरी तबीयत की क़ुदरती उफ़्ताद मुझे बिल्कुल दूसरी ही तरफ़ ले जा रही थी। मैं ख़ानदानी मुरीदों[3] की इन अक़ीदतमंदाना[4] परस्तारियों[5] से खुश नहीं होता था। बल्कि तबीयत में एक तरह का इन्क़बाज़[6] और तवहहुश[7] रहता था। मैं चाहता था कोई ऐसी राह निकल आये कि इस फ़ज़ा[8] से बिल्कुल अलग हो जाऊँ और कोई आदमी आकर मेरे हाथ पाँव न चूमे। लोग यह कमयाब जिस ढूंढ़ते हैं और मिलती नहीं, मुझे घर बैठे मिली और उसका क़दर-शनास[9] न हो सका :

दोनों जहाँ देके वो समझे यह ख़ुश रहा
यां आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करें !

अलबत्ता अब सोचता हूँ तो यह मआमला भी फ़ायदे से ख़ाली न था, और यहाँ का कौन सा मआमला है जो फ़ायदे से ख़ाली होता है? यही फ़ायदा क्या कम है कि जिस गिज़ा के लिये दुनिया की तबीयतें ललचाती रहती हैं, उससे पहले ही दिन अपना जी सैर हो गया और तबीयत में ललचाहट बाक़ी न रही। फ़ैज़ी ने एक शेर ऐसा कहा है कि अगर और कुछ न कहता जब भी फ़ैज़ी था :

काबा रा वीरां मकुन अय इश्क़ कांजा यक नफ़स
गहगहे पस मांदगाने-राह मंज़िल मीकुनंद[10] !

तबीयत की इस उफ़्ताद ने एक बड़ा काम यह दिया कि ज़माने के बहुत से हरबे[11] मेरे लिये बेकार हो गये। लोग अगर मेरी तरफ़ से रुख़ फेरते हैं तो बजाये इसके कि दिल गिलामंद[12] हो और ज़्यादा मिन्नतगुज़ार[13] होने लगता है। क्योंकि उनका जो हुजूम लोगों को ख़ुशहाल करता है, मेरे लिये बसा[14] औक़ात नाक़ाबिले-बरदाश्त हो जाता है। मैं अगर अवाम[15] का रजूअ[16] व हुजूम

---

१. अगर तू चाहता है कि तेरी बुराइयाँ तुझ पर ज़ाहिर हों तो क्षण भर के लिये विरोधी की तरह अपनी ही घात में बैठ २. संकोच ३. भक्त ४. श्रद्धापूर्ण ५. पूजा भक्ति ६. घुटन ७. वहशत, घबराहट ८. वातावरण ९. क़दर पहचानेवाला १०. काबे को नष्ट मत कर अय इश्क़ कि वहाँ क्षण भर को कभी कभी राह के थके मांदे अपना पड़ाव करते हैं। ११. हथियार १२. शिकायत करनेवाला १३. कृतज्ञ १४. बहुत बार १५. लोगों का १६. झुकाव।

गवारा करता हूँ तो यह मेरे इख़्तियार की पसन्द नहीं होती, इज़्तिरार[1] ओ तकल्लुफ़ की मजबूरी होती है। मैंने सियासी ज़िंदगी के हंगामों को नहीं ढूँढ़ा था, सियासी ज़िंदगी के हंगामों ने मुझे ढूँढ़ निकाला। मेरा मआमला सियासी ज़िंदगी के साथ वो हुआ जो ग़ालिब का शायरी के साथ हुआ था :

मा न बूदेम बदीं मर्तबा राज़ी ग़ालिब
शेर ख़ुद ख़्वाहिश आं कर्द कि गरदद फ़न्ने-मा[2]

इसी तरह अगर हालात की रफ़्तार क़ैद ओ बंद का बायस होती है तो इस हालत की जो रुकावटें और पाबंदियाँ दूसरों के लिये अज़ीयत[3] का मूजिब[4] होती हैं, मेरे लिये यकसूयी[5] और बख़ुद मशग़ूली का ज़रिया बन जाती हैं और किसी तरह भी तबीयत को अफ़सुर्दा[6] नहीं कर सकतीं। मैं जब कभी क़ैदख़ाने में सुना करता हूँ कि फ़ुलां क़ैदी को क़ैदे-तनहाई की सज़ा दी गई है तो हैरान रह जाता हूँ कि तनहाई की हालत आदमी के लिये सज़ा कैसे हो सकती है? अगर दुनिया इसी को सज़ा समझती है तो काश ऐसी सज़ायें उम्र भर के लिये हासिल की जा सकें :

हसदे - तोहमते - आज़ादीये - सरवम बगुदाख़्त
कीं मुरादेस्त कि बर तोहमते-आं हम हसद स्त ![7]

एक मर्तबा क़ैद की हालत में ऐसा हुआ कि एक साहब ने जो मेरे आराम ओ राहत का बहुत ख़याल रखना चाहते थे, मुझे एक कोठड़ी में तनहा देखकर सुपरिंटेंडेंट से इसकी शिकायत की। सुपरिंटेंडेंट फ़ौरन तैयार हो गया कि मुझे ऐसी जगह रखे जहाँ और लोग भी रखे जा सकें और तनहाई की हालत बाक़ी न रहे। मुझे मालूम हुआ तो मैंने उन हज़रत से कहा — आपने मुझे राहत पहुंचानी चाही, मगर आपको मालूम नहीं कि जो थोड़ी सी राहत हासिल थी वो भी आपकी वजह से अब छीनी जा रही है। यह तो वही ग़ालिब वाला मआमला हुआ कि :

की हम नफ़सों[8] ने असरे-गिरिया[9] में तक़रीर
अच्छे रहे आप उससे मगर मुझको डुबो आये !

मैं अपनी तबीयत की इस उफ़्ताद से ख़ुश नहीं हूँ। न इसे हुस्न ओ ख़ूबी की कोई बात समझता हूँ। यह एक नुक़्स है कि आदमी बज़्म ओ अंजुमन का

१. बेइख़्तियारी २. मैं इस पद के लिये राज़ी नहीं था, ख़ुद शेर ने यह इच्छा की कि वह मेरा फ़न बन जाय ३. कष्ट ४. कारण ५. तन्मयता ६. उदास ७. सरो के दरख़्त की आज़ादी की ईर्ष्या की तोहमत ने मुझे गला दिया। लेकिन यह एक ऐसी इच्छा है कि जिसकी तोहमत पर भी ईर्ष्या होती है ८. साथी ९. रोते हुये।

हरीफ़[1] न हुआ और सोहबत और इजतिमाअ[2] की जगह ख़िलवत ओ तनहाई में राहत महसूस करे :

हरीफ़े-साफ़ी ओ दुर्दे नई ख़ता ईं जा स्त
तमीज़े-नाख़ुश ओ ख़ुश मीकुनी बला ईं जा स्त[3]

लेकिन अब तबीयत का सांचा इतना पुख़्ता हो चुका है कि उसे तोड़ा जा सकता है, मगर मोड़ा नहीं जा सकता :

क़तरा अज़ तशवीशे-मौज आख़िर निहां शुद दर सदफ़
गोशागीरीहाये - ख़ल्क़ अज़ इनफ़िआले-सोहबत स्त[4] ।

इस उफ़्तादे-तबीयत के हाथों हमेशा तरह तरह की बदगुमानियों का मौरिद[5] रहता हूँ और लोगों को हक़ीक़ते-हाल समझा नहीं सकता। लोग इस हालत को ग़रूर ओ पिंदार[6] पर महमूल[7] करते हैं और समझते हैं मैं दूसरों को सुबकसर[8] तसव्वुर करता हूँ, इसलिए उनकी तरफ़ बढ़ता नहीं। हालांकि मुझे ख़ुद अपना ही बोझ उठने नहीं देता, दूसरों की फ़िक्र में कहां रह सकता हूँ ? ग़नी कश्मीरी ने एक शेर क्या ख़ूब कहा है :

ताक़ते-बरख़ास्तन अज़ गर्दे-नमनाकम न मांद
ख़ल्क़ पिंदारद कि मय ख़ुर्दस्त ओ मस्त उफ़्तादा अस्त[9]

सरख़ुश ने कलमात उश्शुअरा में जो शेर नक़ल किया है, उसमें "ख़ल्क मीदानद" है। मगर मैं ख़याल करता हूँ यह महल "दानिस्तन[10]" का नहीं है "पिंदाश्तन" का है, इसलिए "पिंदारद" ज्यादा मौज़ूं होगा और अजब नहीं असल में ऐसा ही हो।

बहर हाल जो सूरते-हाल पेश आई है उससे जो कुछ भी इन्क़बाज़े-ख़ातिर[11] हुआ था वो सिर्फ़ इसलिए हुआ था कि बाहर के अलायक़[12] अचानक यकक़लम[13] क़ता[14] हो गये और रेडियो सेट और अख़बार तक रोक दिये गये। वर्ना क़ैद ओ बंद की तनहाई का कोई शिकवा न पहले हुआ है न अब है :

---

१. साथी २. जमाव, गोष्ठी ३. निर्मलता और तलछट दोनों का साथी नहीं है बुराई यहीं है। इष्ट और अनिष्ट का फ़र्क़ करता है बुराई यहीं है। ४, बूंद लहरों की परेशानी और थपेड़ों से (घबराकर) आख़िर सीप में छिप गयी। दुनिया से (अलग हटकर) एकांत सेवन यह सोहबत की बुराइयों के कारण है। ५. पात्र, भाजन ६. अहंकार ७. गुमान करना ८. तुच्छ ९. मेरे आस पास के कीचड़ से मुझ में उठने की ताक़त नहीं रही और दुनिया समझती है कि शराब पीये हुये है और मस्त पड़ा है १०. दानिस्तन का मतलब जानना और पिंदाश्तन का मतलब समझना है ११. दिल की घुटन या खिन्नता १२. संबंध १३. बिल्कुल १४. कट गये थे।

दिमाग़-इत्रे-पैराहन नहीं है
ग़मे - आवारगीहाये - सबा क्या ?

और फिर जो कुछ भी ज़बाने-क़लम पर तारी हुआ, सूरते-हाल की हिकायत[1] थी, शिकायत न थी। क्योंकि इस राह में शिकवा ओ शिकायत की गुंजाइश ही नहीं होती। अगर हमें इख़्तियार है कि अपना सर टकराते रहें, तो दूसरे को भी इख़्तियार है कि नई-नई दीवारें चुनता रहे। बेदिल का यह शेर मौजूदा सूरते-हाल पर क्या चस्पां हुआ है :

दूरिये-वस्लश तिलिस्मे-ऐतबारे-मा शिकस्त
वर्ना ईं अज्ज़े कि मीबीनी, ग़ुबारे-नाज़ बूद ![2]

अगरचे यहाँ तनहा नहीं हूँ, ग्यारह रफ़ीक़[3] साथ हैं। लेकिन चूँकि उनमें से हर शख़्स अज़ राहे-इनायत[4] मेरे मामूलात का लिहाज़ रखता है, इसलिए हस्बे-दिलख़्वाह[5] यकसूई और मशग़ूलियत की ज़िंदगी बसर कर रहा हूँ। दिन भर में सिर्फ़ चार मर्तबा कमरे से निकलना पड़ता है। क्योंकि खाने का कमरा क़तार का आख़िरी कमरा है और चाय और खाने के औक़ात में वहाँ जाना ज़रूरी हुआ। बाक़ी तमाम औक़ात की तनहाई और ख़ुद मशग़ूली बग़ैर किसी ख़लल के जारी रहती है :

ख़ुश फ़र्शे-बोरिया व गदाई ओ ख़्वाबे-अम्न
कीं ऐश नेस्त दरख़ुरे-औरंगे-ख़ुसरवी ![6]

ज़िंदगी की मशग़ूलियतों का वो तमाम सामान जो अपने वजूद[7] से बाहर था, अगर छिन गया है तो क्या मुज़ायक़ा[8] ? तमाम सामान जो अपने अंदर था और जिसे कोई छीन नहीं सकता, सीने में छिपाये साथ लाया हूँ। उसे सजाता हूँ और उसके सैर ओ नज़्ज़ारे में महू[9] रहता हूँ।

आईना नक़्शबंदे-तिलिस्मे-ख़याल नेस्त
तसवीरे-ख़ुद ब लौहे-दिगर मीकशेम मा ![10]

गिरफ़्तारी चूंकि सफ़र की हालत में हुई थी इसलिए मुताले[11] का कोई सामान साथ न था। सिर्फ़ दो किताबें मेरे साथ गई थीं जो सफ़र में देखने के लिए

---

१. वर्णन २. उसके मिलन की दूरी ने मेरे ऐतबार का तिलिस्म तोड़ दिया। वरना यह आजिज़ी जो देख रहे हो यह अभिमान की चीज़ थी। ३. सहचर, साथी ४. मेहरबानी करके ५. मनचाही ६. टाट का फ़र्श और फ़क़ीरी और चैन की नींद अच्छी है क्योंकि यह ऐश बादशाहत के तख़्त में नहीं है। ७. अस्तित्व ८. हर्ज ९. तल्लीन १०. आईना ख़यालों के तिलिस्म की नक़्शबंदी नहीं कर सकता। हम अपनी ही तसवीर दूसरी तख़्ती पर खींचते हैं ११. पढ़ने का।

रख ली थीं। इसी तरह दो चार किताबें बाज़ साथियों के साथ आई। यह ज़ख़ीरा[1] बहुत जल्द ख़त्म हो गया। और मज़ीद[2] किताबों के मँगवाने की कोई राह नहीं निकली। लेकिन अगर पढ़ने के सामान का फ़ुक़दां[3] हुआ तो लिखने के सामान की कोई कमी नहीं हुई। काग़ज़ का ढेर मेरे साथ है और रोशनाई की अहमदनगर के बाज़ार में कमी नहीं। तमाम वक़्त ख़ामाफ़रसाई[4] में ख़र्च होता है :

बर जुनूं बेकार न तवां ज़ीस्तन
आतिशम तेज़ स्त ओ दामां मीज़नम[5]

जब थक जाता हूँ तो कुछ देर के लिए बरामदे में निकलकर बैठ जाता हूँ या सहन में टहलने लगता हूँ :

बेकारिये जुनूं में है सर पीटने का शग़ल
जब हाथ टूट जायें तो फिर क्या करे कोई

मैंने जो ख़त इंस्पेक्टर जनरल को लिखा था वो उसने गवर्नमेंट को भेज दिया था। कल उसका जवाब मिला। अब नये अहकाम[6] हमारे लिए ये हैं कि अख़बार दिये जायेंगे, क़रीबी रिश्तेदारों को ख़त लिखा जा सकता है, लेकिन मुलाक़ात किसी से नहीं की जा सकती। चीताख़ां ने यहाँ के फ़ौजी मेस से टाइम्स आफ़ इंडिया का ताज़ा परचा मँगवा लिया था। वो उसने ख़त के साथ हवाले किया। अख़बार का हाथ में लेना था कि तीन हफ़्ते पहले की दुनिया जो हमारे लिए मादूम[7] हो चुकी थी, फिर सामने आ खड़ी हुई। मालूम हुआ कि हमारे गिरफ़्तार हो जाने से मुल्क में अमन चैन नहीं हो गया बल्कि नये हंगामों ने नये ग़लग़ले[8] बरपा[9] किये।

है एक ख़ल्क़ का ख़ूं अश्के-ख़ूंफ़िशां[10] पै मेरे
सिखाई तर्ज़ उसे दामन उठा के आने की!

मैंने चीताख़ां से कहा कि अगर ९ अगस्त से २७ तक के पिछले परचे कहीं से मिल सकें तो मँगवा दे। उसने ढुंढ़वाया तो बहुत से परचे मिल गये। रात देर तक उन्हें देखता रहा था :

दीवानगां हज़ार गरेबां दरीदा अंद
दस्ते-तलब ब दामने-सहरा न मीरसद[11]

१. संचय २. ज़्यादा ३. कमी, अभाव ४. लिखने में ५. बदहवासी की हालत में बेकार नहीं जी सकते, मेरी आतिश या आग तेज़ है और मैं दामन झोंकता हूँ ६. हुक्म का बहुवचन अहकाम ७. विनष्ट ८. शोर ९. खड़े किये १०. ख़ून के आँसू ११. दीवानों ने हज़ारों गरेबां फाड़ डाले लेकिन तलब का हाथ सहरा के दामन तक नहीं पहुँचता।

मगर मुझे यह क़िस्सा यहां नहीं छेड़ना चाहिए। मेरी आपकी मजलिस आराई[1] इस अफ़साना सराई[2] के लिए नहीं हुआ करती :

अज़ मा बजुज़ हिकायते-महर ओ वफ़ा मपुर्स[3]

मेरी दुक्काने-सुख़न में एक ही तरह की जिंस नहीं रहती। लेकिन आपके लिए कुछ निकालता हूँ तो एहतियात की छलनी में अच्छी तरह छान लिया करता हूँ कि किसी तरह की सियासी मिलावट बाक़ी न रहे। देखिये, इस छान लेने के मज़मून को शरीफ़ खां शीराज़ी ने कि जहाँगीर के अहद में अमीर-उल-उमरा हुआ क्या खूब बांधा है :

शररे-नाला ब गिरबाले-अदब मीबेज़म
कि ब गोशे-तू मबादा रसद आवाज़े-दुरुश्त[4]

यह वही अमीर-उल-उमरा है जिसके हस्बे-ज़ेल शेर पर जहाँगीर ने शोअराये-दरबार से ग़ज़लें लिखवाई थीं और ख़ुद भी तबा आज़माई[5] की थी :

बगुज़र मसीह अज़ सरे-मा कुश्तगाने-इश्क़
यक ज़िंदा करदने-तू ब सद ख़ूं बराबर स्त[6]

अबुलकलाम

१. बैठक की रचना या सजावट २. कहानी कहना ३. मुझसे सिवा प्रेम और मेहरबानी की बातों के और कुछ मत पूछो ४. अपनी शिकायतों की आवाज़ की चिंगारियों को अदब की छलनी में छान लेता हूँ ताकि तुम्हारे कानों में कोई कठोर आवाज़ न पहुँचे। ५. तबीयत आज़माना ६. अय मसीह मेरे सिरहाने से गुज़र जा कि हम इश्क़ के मारे हुए हैं। क्योंकि तेरा एक को ज़िंदा करना सौ ख़ून के बराबर है।

क़िलअ़े-अहमदनगर
१२, अक्तूबर, सन् १९४२ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

आज ग़ालिबन सुबह ईद है। ईद की तबरीक[1] आप तक पहुँचा नहीं सकता। अलबत्ता आपको मुख़ातिब तसव्वुर करके सफ़ये-काग़ज़ पर नक़्श कर सकता हूँ :

अय ग़ायब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मी गोयमत दुआ ओ सना मीफ़िरिस्तमत !
दर राहे-दोस्त मरहलये-क़ुर्ब ओ बुअ्द नेस्त
मी बीनमत अयां ओ दुआ मीफ़िरिस्तमत ![2]

अपनी हालत क्या लिखूं ?

ख़मियाज़ाकशे - तोहमते-ऐशे-रमीदा एम
अय आं क़दर न बूद कि रंजे-ख़ुमार बुर्द ![3]

मालूम नहीं एक ख़ास तरह के ज़हनी[4] वारिदे[5] की हालत का आपको तजरुबा हुआ है या नहीं ? बाज़ औक़ात ऐसा होता है कि कोई बात बरसों तक हाफ़िज़े में ताज़ा नहीं होती। गोया किसी कोने में सो रही है। फिर किसी वक़्त अचानक, इस तरह जाग उठेगी जैसे इसी वक़्त दिमाग़ ने किवाड़ खोलकर अंदर ले लिया हो। अशआर[6] ओ मतालिब[7] की याददाश्त में इस तरह की वारदात अकसर पेश आती रहती हैं। तीस चालीस बरस पेशतर के मुताले के नुक़ूश[8] कभी अचानक इस तरह उभर आयेंगे कि मालूम होगा अभी किताब देखकर उठा हूँ। मज़मून के साथ किताब याद आ जाती है, किताब के साथ जिल्द, जिल्द के साथ सफ़हा, सफ़हे के साथ यह तअ़य्युन[9] कि मज़मून इब्तदाई सतरों में था, या दरमियानी सतरों में, या आख़िरी सतरों में। नीज़[10] सफ़हे का रुख़ कि दहनी तरफ़ का था या बाईं तरफ़ का। अभी थोड़ी देर हुई हस्बे-मामूल सोकर उठा तो बग़ैर किसी ज़ाहिरी मुनासिबत[11] और तहरीक[12] के यह शेर ख़ुद बख़ुद ज़बान पर तारी था :

---

१. मुबारकबादी २. दोस्ती की राह में मंज़िल की निकटता और दूरी नहीं होती, मैं तो तुम्हें प्रगट देख रहा हूँ और तुम्हारे लिए दुआयें भेज रहा हूँ। ३. पहले आ चुका है ४. दिमाग़ी ५. अचानक, अकस्मात ६. शेर का बहुवचन ७. मतलब का बहुवचन ८. रेखायें ९. निश्चय, ख़ास बात १०. साथ ही ११. संबंध १२. प्रवृत्ति।

कम लज़्ज़तम ओ क़ीमतम अफ़ज़ूं ब शुमार स्त
गोई समरे-पेशतर अज़ बाग़े-वजूदम ![1]

साथ ही याद आ गया कि शेर हकीम सदराये शीराज़ी का है जो अवाख़िर अहदे-अकबरी[2] में हिन्दुस्तान आया और शाहजहाँ के अहद तक ज़िंदा रहा, और आफ़ताबे-आलमताब में नज़र से गुज़रा था। ग़ालिबन बाईं तरफ़ के सफ़हे में और सफ़हे की इब्तदाई सतरों में। आफ़ताबे-आलमताब देखे हुए कम से कम तीस बरस हो गये होंगे। फिर इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ कि उसे खोला हो।

ग़ौर फ़रमाइये क्या उम्दा मिसाल दी है आपने अकसर बेफ़सल के मेवे खाये होंगे। मसलन जाड़ों में आम। चूँकि बेफ़सल की चीज़ होती है, नायाब[3] और तोहफ़ा[4] समझी जाती है। लोग बड़ी-बड़ी क़ीमतें देकर ख़रीदते हैं और दोस्तों को बतौर तोहफ़े के भेजते हैं। लेकिन जो ख़िल्लत[5] उसकी तोहफ़गी और गरानी[6] की हुई वही बेलज़्ज़ती की भी हो गई। खाइये तो मज़ा नहीं मिलता और मज़ा मिले तो कैसे मिले? जो मौसम अभी नहीं आया उसका मेवा नावक़्त पैदा हो गया। यह ज़मीन की ग़लत अंदेशी थी कि वक़्त की पाबंदी भूल गई और इस ग़लत अंदेशी की पादाश[7] ज़रूरी है कि मेवे के हिस्से में आये। ताहम चूँकि चीज़ कमयाब होती है इसलिए बेमज़ा होने पर भी बेक़दर नहीं हो जाती। खानेवालों को मज़ा नहीं मिलता फिर भी ज़्यादा से ज़्यादा क़ीमत देकर ख़रीदेंगे और कहेंगे यह जिंसे-नायाब जितनी भी गरां हो, अरज़ां[8] है।

ग़ौर कीजिये तो इंसान के अफ़कार[9] ओ ऐमाल[10] की दुनिया का भी यही हाल है। यहां सिर्फ़ मौसम के ही दरख़्त नहीं उगते, मौसम के दिमाग़ भी उगा करते हैं। और फिर जिस तरह यहाँ का हर फ़ज़ाई[11] मौसम अपने मिज़ाज की एक ख़ास नौइयत[12] रखता है और उसी के मुताबिक़ उसकी तमाम पैदावार ज़हूर में आती रहती हैं। इसी तरह वक़्त का हर दिमाग़ी मौसम भी अपना एक ख़ास मानवी[13] मिज़ाज रखता है और ज़रूरी है कि उसी के मुताबिक़ तबीयतें और ज़हनियतें[14] ज़हूर में आयें। लेकिन चूँकि यहाँ फ़ितरत[15] की यकसानियों[16] और हम आहंगियों[17] की तरह उसकी गाह-गाह की नाहमवारियाँ[18] भी हुईं।

१. मैं स्वाद में कम हूँ और क़ीमत मेरी हिसाब से ज़्यादा है। तुम यही कहो कि दुनिया के बाग़ में वक़्त से पहले फला हुआ फल हूँ। २. अकबर के आख़िरी ज़माने में ३. अमूल्य, अप्राप्य ४. उपहार ५. गुण ६. मँहगाई ७. सज़ा ८. सस्ती ९. चिंतन १०. आचरण ११. प्राकृतिक १२. ढंग १३. अर्थ का १४. दिमाग़ १५. प्रकृति १६. एक रंगता १७. एक सुरता ८. असमानता।

और यहाँ का कोई क़ानून अपने फ़िलतात[1] और शवाज़ से खाली नहीं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होने लगता है कि नावक़्त के फलों की तरह नावक़्त की तबीयतें ज़हूर में आ जाती हैं। इसे कारख़ानये-नश्व[2] ओ नुमा के कारोबार का नुक़्स कहिये या ज़माने की ग़लतअंदेशीये-वक़्त (Anachronism) लेकिन बहर हाल ऐसा होता ज़रूर है। ऐसी नावक़्त की तबीयतें जब कभी ज़हूर में आयेंगी तो नावक़्त के फलों की तरह मौसम के लिए अजनबी होंगी। न तो वो वक़्त का साथ दे सकेंगी, न वक़्त उनके साथ मेल खा सकेगा। ताहम चूंकि उनकी नमूद[3] में एक तरह की ग़राबत[4] होती है इसलिए नावक़्त की चीज़ होने पर भी बेक़दर नहीं हो जातीं। लोगों को मज़ा मिले या न मिले लेकिन उनकी गरां क़ीमती का ऐतराफ़[5] ज़रूर करेंगे। सदराये शीराज़ी के दिक़्क़ते-तख़य्युल ने इसी सूरतेहाल का सुराग़ लगाया और दो मिसरों में एक बड़ी कहानी सुना दी।

यह शेर सुनाते हुये मुझे ख़याल हुआ, मेरा और ज़माने का बाहमी मुआमला भी शायद कुछ ऐसी ही नौइयत का हुआ। तबीयत की बेमेल उफ़्ताद[6] फ़िक्र और अमल के किसी गोशे में भी वक़्त और मौसम के पीछे चल न सकी। इसे वजूद[7] का नुक़्स कहिये। लेकिन यह एक ऐसा नुक़्स था जो अव्वल रोज़ से तबीयत अपने साथ लाई थी और इसलिये वक़्त की कोई ख़ारजी[8] तासीर[9] इसे बदल नहीं सकती थी। ज़माना जो क़ुदरती तौर पर मौसमी चीज़ों का दिलदादा[10] होता है, इस नावक़्त के फल में क्या लज़्ज़त पा सकता था? लोग खाते हैं तो मज़ा नहीं मिलता। ताहम इस बेमज़गी पर भी अपनी क़ीमत हमेशा गरां ही रही। लोग जानते हैं कि मज़ा मिले न मिले मगर जिंस अरज़ां नहीं हो सकती :

मताअ्-मन कि नसीबश मबाद अरज़ानी![11]

बाज़ार में हमेशा वही जिंस रखी जाती है जिसकी माँग होती है और चूंकि माँग होती है इसलिये हर हाथ उसकी तरफ़ बढ़ता है और हर आँख उसे क़बूल करती है। मगर मेरा मआमला इससे बिल्कुल उल्टा रहा। जिस जिंस की भी आम माँग हुई मेरी दूकान में जगह न पा सकी। लोग ज़माने के रोज़े-बाज़ार में ऐसी चीज़ें ढूंढ कर लायेंगे जिनका रिवाज आम हो। मैंने हमेशा ऐसी जिंस ढूंढ ढूंढ कर जमा की जिसका कहीं रिवाज न हो। औरों के लिये पसंद ओ इंतख़ाब[12] की जो ख़िल्लत[13] हुई वही मेरे लिये तर्क ओ ऐराज़[14] की

---

१. त्रुटि २ सृष्टि के कारखाने का ३. अस्तित्व ४. विचित्रता ५. स्वीकार ६. रुझान, प्रवृत्ति ७. अस्तित्व ८. बाह्य ९. प्रभाव १०. चाहनेवाला ११. मेरी पूंजी के नसीब में सस्तापन न हो १२. चयन १३. कारण १४. छोड़ देना।

ख़िल्लत बन गई। उन्होंने दूकानों में ऐसा सामान सजाया जिसके लिये सबके हाथ बढ़ सकें :

क़माशे-दस्तजदे-शहर ओ विह् ज़ मन मतलब
मताअ्-मन हमा दरयायी अस्त या कानी ![1]

लोग बाज़ार में दूकान लगाते हैं तो ऐसी जगह ढूंढ़ कर लगाते हैं जहाँ ख़रीदारों की भीड़ लगती हो। मैंने जिस दिन अपनी दूकान लगाई तो ऐसी जगह ढूंढ़कर लगाई जहाँ कम से कम गाहकों का गुज़र हो सके :

दर कूये-मा शिकस्ताविली मीख़रंद ओ बस
बाज़ारे-ख़ुदफ़रोशी अज़ां सूये-दीगर स्त ![2]

मज़हब में, अदब में, सियासत में, फ़िक्र ओ नज़र की आम राहों में जिस तरफ़ भी निकलना पड़ा, किसी राह में भी वक़्त के क़ाफ़िलों का साथ न दे सका :

बा रफ़ीक़ाने ज़ ख़ुदरफ़्ता सफ़र दस्त न दाद
सैरे-सहराये-जुनूं हैफ़ कि तनहा करदेम ![3]

जिस राह में भी क़दम उठाया वक़्त की मंज़िलों से इतना दूर होता गया कि जब मुड़ के देखा तो गर्दे-राह के सिवा कुछ दिखाई नहीं देता था और यह गर्द भी अपनी ही तेज़ रफ़्तारी की उड़ाई हुई थी :

आं नेस्त कि मन हमनफ़सारा बिगुज़ारम
बा आबले-पायां च कुनम ? क़ाफ़ला तेज़स्त ![4]

इस तेज़ रफ़्तारी से तलवों में छाले पड़ गये। लेकिन अजब नहीं राह के कुछ ख़स ओ ख़ाशाक[5] साफ़ भी हो गये हों :

ख़ारहा अज़ असरे-गरमीये-रफ़्तारम सोख़्त
मिन्नते बर क़दमे-राहरवान स्त मरा ![6]

---

१. शहर और गाँव की चीज़ें मुझसे मत तलब करो। मेरी तो सारी सामग्री समंदर की है या खान की है अर्थात् मेरे पास या तो मोती हैं या जवाहरात। २. मेरे कूचे में तो आकर लोग शिकस्तदिली या दुख ख़रीदते हैं। वह बाज़ार जहाँ जाकर लोग तल्लीन हो जावें इससे दूसरी तरफ़ है ३. उन साथियों ने जो आत्मविस्मृत हों सफ़र में साथ नहीं दिया। अफ़सोस है कि पागलपन के जंगल की सैर मैंने अकेले ही की ४. बात यह नहीं है कि मैं अपने साथियों को छोड़ दूं लेकिन उन लोगों का मैं क्या करूँ जिनके पैर में छाले पड़ गये हैं और क़ाफ़िला तेज़ चाल है ५. झाड़ फूंस ६. मेरी रफ़्तार की गरमी के असर से कांटे जल गये। राहगीरों के क़दमों पर मेरा अहसान है।

अब इस वक़्त रिश्तये-फ़िक्र[1] की गिरह खुल गई है तो यह तवक़्क़ो[2] न रखिये कि इसे जल्द लपेट सकूंगा :

ईं रिश्ता ब अंगुश्त न पेची कि दराज़ स्त ![3]

ज़िंदगी में बहुत से हालात ऐसे पेश आये जो आम हालात में कम पेश आते हैं। लेकिन मुआमले का एक पहलू ऐसा है जो हमेशा मेरे लिये एक मुअम्मा[4] रहा और शायद दूसरों के लिये भी रहे। इंसान अपनी सारी बातों में हालात की मख़लूक़[5] और गिर्द ओ पेश[6] के मुअस्सिरात[7] का नतीजा होता है। ये मुअस्सिरात अकसर सूरतों में आशकारा[8] होते हैं और सतह पर से देख लिये जा सकते हैं। बाज़ सूरतों में मख़फ़ी[9] होते हैं और तह में उतर कर उन्हें ढूंढ़ना पड़ता है। ताहम सुराग़ हर हाल में मिल जाता है। नस्ल, ख़ानदान, सोहबत, तालीम ओ तरबियत इन मुअस्सिरात के अंसरी[10] सरचश्मे हैं।

अनिल मरअि ला तसअल व सल अनक़रीनिहि[11]

लेकिन इस ऐतबार से अपनी ज़िंदगी के इब्तदाई हालात पर नज़र डालता हूँ तो बड़ी हैरानी में पड़ जाता हूँ। फ़िक्र ओ तबीयत की कितनी ही बुनियादी तबदीलियाँ हैं जिनका कोई ख़ारजी सरचश्मा दिखाई नहीं देता और जो गिर्द पेश के तमाम मुअस्सिरात से किसी तरह भी जोड़े नहीं जा सकते। कितनी ही बातें हैं जो हालात ओ मुअस्सिरात के ख़िलाफ़ ज़हूर[12] में आईं। कितनी ही हैं कि उनका ज़हूर सरतासर मुतज़ाद[13] शक्लों में हुआ। दोनों सूरतों में मआमला एक अजीब अफ़साने से कम नहीं :

फ़रयादे-हाफ़िज़ ईं हमा आख़िर ब हरज़ा नेस्त
हम क़िस्सये अजीब ओ हदीसे ग़रीब हस्त।[14]

जहाँ तक तबीयत की सीरत[15] और आदात ओ ख़सायल[16] का ताल्लुक़ है, मैं अपनी ख़ानदानी और नस्ली विरासत से बेख़बर नहीं हूँ। हर इंसान की अख़लाक़ी और मआशरती[17] सूरत का क़ालिब[18] नस्ल ओ ख़ानदान की मिट्टी से बनता है और मुझे मालूम है कि मेरी आदात ओ ख़सायल की मूरती भी

१. चिंतन सूत्र २. आशा ३. इस सूत को उंगली पर मत लपेटना क्योंकि लंबा है ४. पहेली ५. सृष्टि, रचना ६. आसपास, परिपार्श्विक ७. प्रभाव ८. प्रगट ९. गुप्त १०. तात्विक ११. अगर आप किसी व्यक्ति के बारे में जानना चाहते हैं तो उसके बारे में कुछ न पूछिये उसके दोस्तों के बारे में पूछ लो वे कैसे हैं १२. अस्तित्व १३. भिन्न भिन्न १४. हाफ़िज़ की फ़रियाद यह सब कुछ बेहूदा नहीं है। उसकी कहानी ही अजीब और बातें ही निराली हैं १५. प्रकृति १६. आदतों १७. सामाजिक १८. कलेवर।

इसी मिट्टी से बनी। हर ख़ानदान अपनी रिवायती[1] ज़िंदगी की एक इनफ़रादियत[2] पैदा कर लेता है और वो नस्लन बाद नस्लिन[3] मुंतक़िल[4] होती रहती है। मैं साफ़ महसूस करता हूँ कि इस रिवायती ज़िंदगी के असरात मेरे ख़मीर[5] में रच गये हैं और मैं उनकी पकड़ से बाहर नहीं जा सकता। मेरी आदात ओ ख़सायल, चाल ढाल, तौर तरीक़ा, अमयाल[6] ओ अज़वाक़[7] सबके अन्दर ख़ानदान का हाथ साफ़ साफ़ दिखाई दे रहा है। यह ख़ानदानी ज़िंदगी की रिवायतें मुझे मेरे दधियाल और ननिहाल दोनों सिलसिलों से मिलीं और दोनों पर सदियों की क़दामत[8] और तसलसुल[9] की मोहरें लगी हुई थीं। वो बहर हाल मेरे हिस्से में आनी थीं। उनको क़बूल करने या न करने में मेरी ख्वाहिश और पसंद को कोई दख़ल न था। लेकिन यहाँ सवाल आदात ओ ख़सायल का नहीं है, अफ़कार[10] ओ अक़ायद[11] का है। और जब इस ऐतबार[12] से अपनी हालत का जायजा लेता हूँ तो ख़ानदाद, तालीम, इब्तदाई गिर्द ओ पेश, कोई गोशा भी मेल खाता हुआ दिखाई नहीं देता। फ़िक्री मुअस्सिरात के जितने भी अहवाल[13] ओ ज़रूफ़ (environments) हो सकते हैं उनमें से एक एक को अपने सामने लाता हूँ और उनमें अपने आपको ढूंढ़ता हूँ। मगर मुझे अपना सुराग़ कहीं नहीं मिलता!

मैंने होश संभालते ही ऐसे बुज़ुर्गों को अपने सामने पाया जो अक़ायद ओ अफ़कार में अपना एक ख़ास मसलक[14] रखते थे और उसमें इस दर्जे सख़्त और बेलचक थे कि बाल बराबर भी इधर उधर होना कुफ़्र ओ ज़ंदक़ा[15] समझते थे। मैंने बचपन से अपने ख़ानदान की जो रिवायतें[16] सुनीं वो भी सरतासर इसी रंग में डूबी हुई थीं और मेरा दिमाग़ी विरसा इस तसल्लुब[17] और जुमूद[18] से बोझल था। मेरी तालीम ऐसे गिर्द ओ पेश में हुई जो चारों तरफ़ से क़दामत-परस्ती[19] और तक़लीद[20] की चारदीवारी में घिरा हुआ था और बाहर की मुख़ालिफ़[21] हवाओं का वहाँ तक गुज़र ही न था। वालिद मरहूम के अलावा जिन असातज़ा[22] से तहसील[23] का इत्तिफ़ाक़ हुआ वो भी वही थे जिन्हें वालिद मरहूम

१. ख़ानदानी रीतरिवाज २. व्यक्तिगत रूप ३. पीढ़ी दर पीढ़ी ४. हस्तांतरित ५. प्रकृति ६. मैल का बहुवचन, रूझान ७. ज़ौक का बहुवचन, रुचि ८. पुरातनता ९. अनवरतता १०. चिंतन ११. धार्मिक श्रद्धा १२. अपेक्षा १३. हाल का बहुवचन १४. मार्ग १५. अधर्म, अधार्मिकता १६. बातें, श्रुतियाँ १७. सख़्त रुकावट १८. ठोसपन १९. पुराणपंथी २०. अनुकरण २१. प्रतिकूल २२. उस्ताद का बहुवचन २३. प्राप्ति, ज्ञान प्राप्ति।

ने पहले अच्छी तरह ठोंक बजा के देख लिया था कि उनके मैयारे-अक़ायद[1] व फ़िक्र पर पूरे पूरे उतर सकते हैं। और यह मैयार[2] इस दर्जे तंग और सख्त था कि उनके मआसिरों[3] में से खास खास[4] अशखास[5] ही की वहाँ तक रसाई हो सकती थी। पस[6] ज़ाहिर है कि इस दरवाज़े से भी किसी नई हवा के गुज़रने का इमकान[7] न था। जहाँ तक ज़माने के फ़िक्री इंक़लाबात का ताल्लुक़ है, मेरे खानदान की दुनिया वक़्त की राहों से इस दर्जे दूर वाक़े हुई थी कि उन राहों की कोई सदा[8] वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती थी। और इस ऐतबार से गोया सौ बरस पहले के हिन्दुस्तान में मैं ज़िंदगी बसर कर रहा था। इब्तदाई सोहबतों को इंसानी दिमाग़ का साँचा ढालने में बहुत दखल होता है। लेकिन मेरी सोसाइटी अवायल[9] उम्र में घर की चारदीवारी के अंदर महदूद[10] रही और घर के अज़ीज़ों और बुज़ुर्गों के अलावा अगर कोई दूसरा गिरोह मिला भी तो वो खानदान के मौतक़िदों[11] और मुरीदों[12] का गिरोह था। वो मेरे हाथ पाँव चूमते और हाथ बाँधे खड़े रहते या रजअते-क़हक़री[13] करके पीछे हटते और दूर मुअद्दब[14] होकर बैठ रहते। यह फ़ज़ा[15] सूरते-हाल[16] में तबदीली पैदा करने की जगह और ज़्यादा उसे गहरी करती रहती। वालिद[17] मरहूम के मुरीदों में एक बड़ी तादाद उल्मा[18] और अंग्रेज़ी तालीम याफ़्ता अशखास की भी थी। दीवानखाने में अकसर उनका मजमा[19] रहता। मगर यह पूरा मजमा भी सरतासर इसी खानदानी रंग में रंगा हुआ था। किसी दूसरे रंग की वहाँ झलक भी दिखाई नहीं देती थी।

अलावा बरीं[20] मुरीद और मौतक़िद जब कभी मुझसे मिलते थे तो मुझे मुरशिदज़ादा[21] समझ कर मुंतज़िर[22] रहते थे कि मुझसे कुछ सुनें। वो मुझे कुछ सुनाने की गुस्ताखाना[23] जुरअत[24] कब कर सकते थे?

अंग्रेज़ी तालीम की ज़रूरत का तो यहाँ किसी को वहम ओ गुमान[25] भी नहीं गुज़र सकता था। लेकिन कम अज़ कम यह तो हो सकता था कि क़दीम तालीम के मदरिसों में से किसी मदरिसे से वास्ता पड़ता। मदरिसे की तालीमी

---

१. चिंतन और धार्मिक श्रद्धा का स्तर २. कसौटी ३. सम सामयिक ४. कोई कोई ५. शख्स का बहुवचन ६. इसलिये ७. भरोसा ८. आवाज़ ९. प्रारंभिक १०. सीमित ११. श्रद्धालु लोग १२. भक्त, चेले १३. किसी के सामने से अदब के साथ पीछे हटने को रजअते-क़हक़री कहते हैं १४. बा अदब १५. वातावरण १६. वस्तु-स्थिति १७. पिताजी १८. आलिम का बहुवचन, विद्वान १९. जमाव २०. इसके अलावा २१. पीरज़ाद, गुरुपुत्र २२. प्रतीक्षा में २३. गुस्ताखी भरी २४. हिम्मत २५. संदेह और शंका।

ज़िंदगी बहर हाल घर की चारदीवारी के गोशये-तंग से ज्यादा वुसअत रखती है और इसलिये तबीयत को कुछ न कुछ हाथ पाँव फैलाने का मौक़ा मिल जाता है। लेकिन वालिद मरहूम यह भी गवारा नहीं कर सकते थे। कलकत्ते के सरकारी मदरिसे यानी मदरिसये-आलिया की तालीम उनकी नज़रों में कोई वक़अत[1] नहीं रखती थी और फ़िलहक़ीक़त[2] क़ाबिले-वक़अत थी भी नहीं। और कलकत्ते से बाहर भेजना उन्हें गवारा न था। उन्होंने यही तरीक़ा इख़्तियार किया कि ख़ुद तालीम दें, या बाज़ ख़ास असातज़ा के क़याम का इंतज़ाम करके उनसे तालीम दिलायें। नतीजा यह निकला कि जहाँ तक तालीमी ज़माने का ताल्लुक़ है घर की चारदीवारी से बाहर क़दम निकालने का मौक़ा ही नहीं मिला। बिला शुबहा[3] इसके बाद क़दम खुले और हिन्दुस्तान से बाहर तक पहुँचे, लेकिन ये बाद के वाक़यात हैं जब कि तालिबइल्मी का ज़माना बसर हो चुका था और मैंने अपनी नई राहें ढूँढ़ निकाली थीं। मेरी उम्र का वह ज़माना जिसे बाक़ायदा तालिब इल्मी का ज़माना कहा जा सकता है चौदह पंद्रह बरस की उम्र से आगे नहीं बढ़ा।

फिर उस तालीम का हाल क्या था जिसकी तहसील में तमाम इब्तदाई ज़माना बसर हुआ? इसका जवाब अगर इख़्तिसार[4] के साथ भी दिया जाये तो सफ़हों के सफ़हे स्याह हो जायें और आपके लिये तफ़सील[5] ज़रूरी नहीं। एक फ़रसूदा[6] निज़ामे-तालीम[7] जिसे फ़ने-तालीम[8] के जिस ज़ावियये-निगाह से भी देखा जाये सरतासर अक़ीम[9] हो चुका है। तरीक़े-तालीम[10] के ऐतबार से नाक़िस,[11] मज़ामीन[12] के ऐतबार से—नाक़िस, इंतख़ाबे-कुतुब[13] के ऐतबार से नाक़िस, दर्स ओ इम्ला[14] के अस्लूब के ऐतबार से नाक़िस। अगर फ़ुनूने-आलिया[15] को अलग कर दिया जाये तो दर्से[16] निज़ामिया में बुनियादी मौज़ू[17] दो ही रह जाते हैं—अुलूमे-दीनिया[18] औ माक़ूलात[19]। अुलूमे-दीनिया की तालीम जिन किताबों के दर्स में मुनहसर[20] रह गई है उससे उन किताबों के मतालिब ओ इबारत का इल्म हासिल हो जाता हो लेकिन ख़ुद उन अुलूम में कोई मुज्तहिदाना[21] बसीरत हासिल नहीं हो सकती। माक़ूलात से अगर मंतिक़[22] अलग कर दी जाये तो फिर जो कुछ बाक़ी रह जाता है उसकी इल्मी

१. प्रतिष्ठा, सम्मान २. हक़ीक़त में ३. निस्संदेह ४. संक्षेप ५. विस्तार ६. जीर्ण-शीर्ण ७. शिक्षाक्रम ८. शिक्षा शास्त्र ९. बांझ १०. शिक्षण रीति ११. बुरा, अपूर्ण १२. विषय १३. पुस्तकों का चुनाव १४. लिखने-पढ़ने की रीति १५. न्याय, तर्क वग़ैरह १६. निज़ामिया के पठनक्रम में १७. विषय १८. धर्म शिक्षा १९. वह शिक्षा जिससे अक़्ल का सम्बंध है जैसे न्याय २० अवलंबित २१. स्वतंत्र दृष्टि २२. न्याय शास्त्र।

क़द्र ओ क़ीमत इससे ज्यादा कुछ नहीं कि तारीख़े-फ़िलसफ़ये-क़दीम[1] के एक खास अहद[2] की ज़हनी काविशों[3] की यादगार है। हालांकि इल्म की दुनिया उस अहद से सदियों आगे बढ़ चुकी। फ़ुनूने-रियाज़िया[4] जिस क़दर पढ़ाये जाते हैं वो मौजूदा अहद की रियाज़यात के मुक़ाबले में बमंज़िला सिफ़र के हैं। और वो भी आम तौर पर नहीं पढ़ाये जाते, मैंने अपने शौक़ से पढ़ा था। जामा अजहर क़ाहरा के नसाबे-तालीम[5] का भी तक़रीबन यही हाल है। हिन्दुस्तान में मुताख़रीन[6] की कुतुबे-माक़ूलात को फ़रूग़[7] हुआ, वहाँ इतनी वुसअत भी पैदा न हो सकी :

अय तबले-बुलंद बांग, दर बातिन हेच ![8]

सैयद जमालउद्दीन असदा बादी ने जब मिसर में कुतबे-हिकमत[9] का दर्स देना शुरू किया था तो बड़ी जुस्तजू से चंद किताबें वहाँ मिल सकी थीं। और उल्माये-अजहर उन किताबों के नामों से भी आश्ना न थे। बिला शुबहा अब अजहर का निज़ामे-तालीम बहुत कुछ इस्लाह[10] पा चुका है। लेकिन जिस ज़माने का मैं ज़िक्र कर रहा हूँ उस वक़्त तक इस्लाह की कोई सई[11] कामयाब नहीं हुई थी और शेख़ अब्दहू मरहूम ने मायूस होकर एक नई सरकारी दर्सगाह "दारउल उलूम" की बुनियाद डाली थी।

फ़र्ज़ कीजिये मेरे क़दम इसी मंज़िल में रुक गये होते और इल्म ओ नज़र की जो राहें आगे चलकर ढूंढ़ी गईं उनकी लगन पैदा न हुई होती तो मेरा क्या हाल होता ? ज़ाहिर है कि तालीम का इब्तदाई सरमाया मुझे एक जामिद[12] नाआश्नाये-हक़ीक़त[13] दिमाग़ से ज्यादा और कुछ नहीं दे सकता था।

तालीम की जो रफ़्तार आम तौर पर रहा करती है मेरा मआमला उससे मुख़्तलिफ़ रहा। मुझे अच्छी तरह याद है कि सन् १९०० ई. में जब मेरी उम्र बाहर तेरह बरस से ज्यादा न थी मैं फ़ारसी की तालीम से फ़ारिग़ और अरबी की मुबादियात[14] से गुज़र चुका था और शहरे-मुल्ला और कुतबी वग़ैरह के दौर में था। मेरे साथियों में मेरे मरहूम भाई मुझ से उम्र में दो बरस बड़े थे। बाक़ी और जितने थे उनकी उम्रें बीस इक्कीस बरस से कम न होंगी। वालिद मरहूम का तरीक़े-तालीम यह था कि हर इल्म में पहले कोई एक मुख़्तसर मतन[15] हिफ़्ज़ कर लेना ज़रूरी समझते थे। फ़रमाते थे कि शाह वली अल्ला

१. पुरातन दर्शनशास्त्र का इतिहास २. ज़माना ३. कुस्तजू ४. गणितशास्त्र, ५. शिक्षा क्रम ६. आख़िरी ज़माना ७. वृद्धि ८. अय ऊँची आवाज़ करनेवाले ढोल, तेरे भीतर कुछ नहीं है। ९. विज्ञान की किताबें १०. संशोधन ११. कोशिश, प्रयत्न १२. जड़ १३. सत्य से अपरिचित १४. प्रारंभिक ज्ञान १५. मूल पाठ।

रहमतुल्ला अलैह के ख़ानदान का तरीक़े-तालीम ऐसा ही था। चुनांचे उस ज़माने में मैंने फ़िक़्ह[1] अकबर, तहज़ीब, ख़ुलासा केदानी वग़ैरहा बरज़बान हिफ़्ज़ कर ली थीं और अपने बरवक़्त इस्तहज़ार[2] और इक़्तबासात[3] से न सिर्फ़ तालिब-इल्मों को बल्कि मौलवियों को भी हैरान कर दिया करता था। वो मुझे ग्यारह बारह बरस का लड़का समझ कर बहुत उड़ते तो मीज़ान[4] ओ मुनशअब के सवालात करते। मैं उनको मंतिक़[5] के क़ज़ियों[6] और उसूल की तारीफ़ों में ले जाकर हक्का-बक्का कर देता। इस तरीक़े के फ़ायदे में कलाम नहीं। आज तक उन मतून[7] का एक-एक लफ़्ज़ हाफ़िज़े में महफ़ूज़ है। ख़ुलासा केदानी की लोह्[8] का शेर तक भूला नहीं। किसी अफ़ग़ानी मुल्ला ने के दानी और केदानी की तुकबंदी की थी :

तू तरीक़े-सलात के दानी
गर न ख़्वानी ख़ुलासये-केदानी[9]

किताबों की दर्सी तहसील की मुद्दत भी आम रफ़्तार से बहुत कम रहा करती थी। असातज़ा मेरी तेज़ रफ़्तारियों से पहले झुंझलाते, फिर परेशान होते फिर मेहरबान होकर जुरअत-अफ़ज़ाई[10] करने लगते। जब किसी किताब का नया दौर शुरू होता तो बाहर के चंद तुलबा[11] भी शरीक हो जाते। लेकिन अभी चंद दिन भी गुज़रने न पाते कि मेरा सबक़ दूसरों से अलग हो जाता। क्योंकि वो मेरी रफ़्तार का साथ नहीं दे सकते थे। मेरे माक़ूलात के एक उस्ताद लोगों से कहा करते थे "ये छोटे हज़रत मुझे आजकल सदरा सुनाया करते हैं और इस ग़लतफ़हमी में मुब्तिला हैं कि मुझसे दर्स लेते हैं।"

सन् १९०३ ई. में कि उम्र का पंद्रहवां साल शुरू हुआ था। मैं दर्से-निज़ामिया की तालीम से फ़ारिग़ हो चुका था और वालिद मरहूम की ईमा[12] से चंद मजीद[13] किताबें भी निकाल ली थीं। चूंकि तालीम के बाब में क़दीम ख़्याल यह था कि जब तक पढ़ा हुआ पढ़ाया न जाये इस्तअदाद[14] पुख़्ता नहीं होती। इसलिए फ़ातिहये-फ़िराग़[15] की मजलिस ही में तुलबा का एक हल्क़ा मेरे सुपुर्द कर दिया गया और उनके मसारिफ़े-क़याम[16] के वालिद मरहूम कफ़ील[17] हो गये। मैंने तकमीले-फ़ुनून[18] के लिये तिब[19] शुरू कर दी थी। ख़ुद

१. फ़िक़्ह अकबर मज़हबी पुस्तक का नाम है २. प्रदर्शन, याद से हाज़िर करना ३. उद्धरण ४. अरबी व्याकरण की किताब ५. न्याय-शास्त्र ६. बहस ७. पाठों का ८. प्रथम पृष्ठ के सिरे का ९. तूने नमाज़ के तरीक़े को कब जाना, अगर केदानी का ख़ुलासा नहीं पढ़ा १०. हिम्मत बढ़ाते ११. तालिब का बहुवचन, विद्यार्थी १२. संकेत, इशारा १३. विशेष १४. लाभकारी १५. अध्ययन से निवृत्ति १६. रहने-सहने के ख़र्च के १७. पालक १८. विद्या की पूर्णता १९. अरबी में वैद्यक शास्त्र को तिब कहते हैं।

क़ानून पढ़ता था और तुलबा को मुतव्वल[1], मीरज़ाहिद और हिदाया वग़ैरह का दर्स देता था।

मुझे अच्छी तरह याद है कि अभी पंद्रह बरस से ज़्यादा उम्र नहीं हुई थी कि तबीयत का सुकून[2] हिलना शुरू हो गया था। और शक और शुबहा के काँटे दिल में चुभने लगे थे। ऐसा महसूस होता था कि जो आवाज़ें चारों तरफ़ सुनाई दे रही हैं, उनके अलावा भी कुछ और होना चाहिये। और इल्म ओ हक़ीक़त की दुनिया सिर्फ़ इतनी ही नहीं है जितनी सामने आ खड़ी हुई है। यह चुभन उम्र के साथ-साथ बराबर बढ़ती गई। यहाँ तक कि चंद बरसों के अंदर अक़ायद ओ अफ़कार की वो तमाम बुनियादें जो ख़ानदान, तालीम और गिर्द ओ पेश ने चुनी थीं बयक दफ़ा[3] मुतज़लज़ल[4] हो गईं। और फिर वो वक़्त आया कि इस हिलती हुई दीवार को ख़ुद अपने हाथों ढाकर उसकी जगह नई दीवारें चुननी पड़ीं :

हेच गह ज़ौक़े-तलब अज़ जुस्तजू बाज़म न दाश्त
दाना मीचीदम दरां रोज़े कि ख़िरमन दाश्तम।[5]

इंसान की दिमाग़ी तरक़्क़ी की राह में सबसे बड़ी रोक उसके तक़लीदी अक़ायद[6] हैं। उसे कोई ताक़त इस तरह जकड़बंद नहीं कर दे सकती जिस तरह तक़लीदी अक़ायद की ज़ंजीरें कर दिया करती हैं। वो इन ज़ंजीरों को तोड़ नहीं सकता। इसलिये कि तोड़ना चाहता ही नहीं, वो उन्हें ज़ेवर की तरह महबूब रखता है। हर अक़ीदा, हर अमल, हर नुक़्तये-निगाह जो उसे ख़ानदानी रिवायात और इब्तदाई तालीम ओ सोहबत के हाथों मिल गया है उसके लिये एक मुक़द्दस[7] विरसा है। वो उस विरसे की हिफ़ाज़त करेगा मगर उसे छूने की जुरअत नहीं करेगा। बसा[8] औक़ात मौरूसी अक़ायद की पकड़ इतनी सख़्त होती है कि तालीम और गिर्द ओ पेश का असर भी उसे ढीला नहीं कर सकता। तालीम दिमाग़ पर एक नया रंग चढ़ा देगी लेकिन उसकी बनावट के अंदर नहीं उतरेगी। बनावट के अंदर हमेशा नस्ल, ख़ानदान और सदियों की मुतवारिस[9] रिवायात ही का हाथ काम करता रहेगा।

मेरी तालीम ख़ानदान के मौरूसी अक़ायद के ख़िलाफ़ न थी कि इस राह से

१. पुस्तक का नाम है जो इल्मे-मानी से संबंध रखती है २ शांति ३. एक ही बार में ४. हिल गईं ५. मेरी तलब की चाह ने किसी भी जगह को ढूंढने से मुझे बाज़ नहीं रखा। मेरे पास एक खलिहान मौजूद था लेकिन मैं उसी दिन से अपना दाना चुनने लगा। ६. धार्मिक बातों का अनुकरण ७. पवित्र ८. बहुत बार ९. उत्तराधिकार में प्राप्त।

कोई कशमकश पैदा होती। वो सरतासर उसी रंग में डूबी हुई थी, जो मुग्रस्सिराते-नस्ल और खानदान ने मुहय्या कर दिये थे। तालीम ने उन्हें और ज्यादा तेज करना चाहा और गिर्द ओ पेश ने उन्हें और ज्यादा सहारे दिये। ताहम क्या बात है कि शक का सबसे पहला काँटा जो खुद बखुद दिल में चुभा वो इसी तक़लीद के खिलाफ़ था ? मैं नहीं जानता था कि क्यों, मगर बार-बार यही सवाल सामने उभरने लगा था कि ऐतक़ाद की बुनियाद इल्म ओ नजर पर होनी चाहिये, तक़लीद और तवारुस[1] पर क्यों हो ? यह गोया दीवार की बुनियादी ईंटों का हिल जाना था। क्योंकि मौरूसी और रिवायती अक़ायद की पूरी दीवार सिर्फ़ तक़लीद ही की बुनियादों पर उस्तवार[2] होती है। जब बुनियाद हिल गई तो दीवार कब खड़ी रह सकती थी ? कुछ दिनों तक तबीयत की दरमांदगियाँ[3] सहारे देती रहीं। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि अब कोई सहारा भी इस गिरती हुई दीवार को सँभाल नहीं सकता :

अज़ाँ कि पैरवीये-खल्क़ गुमरही आरद
नमीरवेम बराहे कि कारवां रफ़्त स्त ![4]

शक की यही चुभन थी जो तमाम आने वाले यक़ीनों के लिये दलीले-राह बनी। बिला शुबहा इसने पिछले सरमायों से तही दस्त कर दिया था, मगर नये सरमायों के हुसूल की लगन भी लगा दी थी और बिल आखिर इसी की रहनुमाई[5] थी जिसने यक़ीन और तमानियत[6] की मंजिले-मक़सूद तक पहुँचा दिया। गोया जिस इल्लत ने बीमार किया था, वही बिल आखिर दारूये-शिफ़ा[7] भी साबित हुई :

बबेहा दादी ओ दरमानी हिनोज ![8]

हरचंद सुराग़ लगाना चाहता हूँ कि यह काँटा कहाँ से उड़ा था कि तीर की तरह दिल में तराजू हो गया। मगर कोई पता नहीं लगता, कोई तालील[9] काम नहीं देती :

च मस्ती स्त न दानम के रू ब मा आवुर्द
कै बूद साक़ी ओ ईं बादा अज़ कुजा आवुर्द ।[10]

१. उत्तराधिकार २. खड़ी होती है, मजबूत होती है ३. परेशानिया, उदासीनता ४. इसलिये कि लोगों की पैरवी करने से आखिर गुमराही होती है मैं उस राह से नहीं जाता जिससे कि कारवां गुजर गया है ५. पथप्रदर्शन ६. इत्मीनान, संतोष ७. स्वास्थ्यप्रद औषधि ८. तुमने दर्द दिये हैं तुम्हीं मेरी दवा भी हो ९. दलील, सबूत १०. यह कैसी मस्ती मुझे हासिल हुई है। साक़ी कौन था और यह शराब कहाँ से लाया।

बिला शुबहा आगे चलकर कई हालात ऐसे पेश आये जिन्होंने इस काँटे की चुभन और ज्यादा गहरी कर दी, लेकिन उस वक़्त तक तो किसी ख़ारजी[1] मुहर्रिक[2] की परछाईं भी नहीं पड़ी थी। और होश ओ आगही की उम्र ही न थी कि बाहर के मुअस्सिरात के लिये दिल ओ दिमाग़ के दरवाज़े खुल सकते। यह तो वो हाल हुआ कि :

अतानी हवाहा क़ब्ल अन्न आरफ़ुल हवा
फ़सादफ़ क़ल्बन क़ारिग़न फ़तमक्क ना !*

यही ज़माना है जब पीरज़ादगी और नस्ली बुज़ुर्गी की ज़िंदगी भी मुझे ख़ुदबख़ुद चुभने लगी और मौतक़िदों और मुरीदों की परस्तारियों[3] से तबीयत को एक गूना[4] तवहहुश[5] होने लगा। मैं इसकी कोई ख़ास वजह उस वक़्त महसूस नहीं करता था मगर तबीयत का एक क़ुदरती तक़ाज़ा था जो इन बातों के ख़िलाफ़ ले जा रहा था।

बूये-आं बूद कि हमसाल ब हमसाया रसीद
ज़ आतिशे बूद कि दर ख़ानये-मन पार गिरफ़्त[6]

सवाल यह है कि तमाम हालात और मुअस्सिरात के ख़िलाफ़ तबीयत की यह उफ़्ताद[7] क्यों कर बनी और कहाँ से आई। ख़ानदान अक़ायद ओ अफ़कार का जो साँचा ढालना चाहता था, न ढाल सका। तालीम जिस तरफ़ ले जाना चाहती थी न ले जा सकी; हल्क़ये-सोहबत ओ असरात का जो तक़ाज़ा था, पूरा न हुआ। इस आलमे-असबाब[8] में हर हालत का दामन किसी न किसी इल्लत[9] से बँधा होता है, आख़िर इस रिश्ते का भी तो कोई सिरा मिलना चाहिये? वाक़या यह है कि नहीं मिलता। मुमकिन है, यह मेरी नज़र की कोताही[10] हो और कोई दूसरी दक़ीक़ा संज[11] निगाह हालात का मुताला करे तो कोई न कोई मुहर्रिक[12] ढूंढ़ निकाले। मगर मुझे तो थक कर दूसरी ही तरफ़ देखना पड़ा :

कारे-ज़ुल्फ़े-तुस्त मुश्क अफ़शानी, अम्मा आशिक़ां
मसलहत रा तोहमते बर आहुये-चीं बस्ता अंद ![13]

---

१. बाहिरी २. प्रेरणा ३. उपासना ४. तरह की ५. घबराहट, घृणा। *अरबी का शेर पहले आ चुका है ६. उस बूयें की गंध जो कि इस साल मेरे पड़ोसी के यहाँ पहुँची उस आग से थी जो कि पार साल मेरे घर में लगी थी ७. रुझान ८. कार्यकारण की दुनिया ९. कारण १०. तंगनज़री, तंगी ११. सूक्ष्म दृष्टि १२. कारण १३. तेरी ज़ुल्फ़ों का काम सुगन्ध फैलाना है लेकिन आशिक़ों ने इस ख़ूबी की तोहमत चीन के हिरणों पर लगाई है।

जिस नामुरादे-हस्ती[1] को चौदह बरस की उम्र में ज़माने की आग़ोश[2] से इस तरह छीन लिया गया हो, वो अगर कुछ अर्से के लिये शाहराहे-आम[3] से गुम होकर आवारये-दश्ते-वहशत[4] न होती तो और क्या होता ? एक अर्से तक तरह-तरह की सरगरदानियों[5] में निशाने-राह[6] गुम रहा। न मक़सद की ख़बर मिल सकी न मंज़िल की :

सगे-आस्तानम, अम्मा हमा शब क़िलावा ख़ायम
कि सरे-शिकार दारम न हवाये-पासबानी
अजब अस्त गर न बाशद ख़िज़्रे ब जुस्तजूयम
कि फ़ताबाअम ब ज़ुल्मत चु ज़ुलाले-ज़िंदगानी[7]

लेकिन जिस हाथ ने ज़माने की आग़ोश से खींचा था, बिल आख़िर उसी ने दश्त निवर्दियों[8] की तमाम बेराहरवियों[9] में रहनुमाई भी की। और अगरचे क़दम क़दम पर ठोकरों से दो चार[10] होना पड़ा और चप्पा चप्पा पर रुकावटों से उलझना पड़ा, मगर तलब हमेशा आगे ही की तरफ़ बढ़ाये ले गई और जुस्तजू ने कभी गवारा नहीं किया कि दरमियानी मंज़िलों में रुक कर दम ले ले। बिल आख़िर दम लिया तो उस वक़्त लिया जब मंज़िले-मक़सूद सामने जलवागर[11] थी और उसकी गर्दे-राह से चश्मे-तमन्नाई रोशन हो रही थी।

ब वस्लश ता रसम सद बार बर ख़ाक अफ़गनद शौक़म
कि नौ परवाज़म ओ शाख़े-बुलंदे आशियां दारम[12]

चौबीस बरस की उम्र में जब कि लोग इशरते-शबाब[13] की सरमस्तियों का सफ़र शुरू करते हैं, मैं अपनी दश्त-निवर्दियाँ[14] ख़त्म करके तलवों के काँटे चुन रहा था :

१. अभागा २. गोद ३. राजमार्ग ४. पागलपन के जंगल का आवारा ५. उद्विग्नता ६. पथ चिन्ह ७. तेरी ड्योढ़ी का कुत्ता हूँ लेकिन सारी रात गलपट्टा चबाता रहता हूँ कि दिल में शिकार की हविस रखता हूँ न कि पहरेदारी की। यह ताज्जुब की बात है अगर ख़िज़्र मेरी जुस्तजू में न हो कि मैं इस अंधेरे में जीवनामृत की तरह पड़ा हुआ हूँ। ८. जंगल में भटकना ९. कठिन मार्ग १०. दो चार होना याने सामना होना ११. प्रत्यक्ष, प्रकाशमान १२. उसके मिलन की स्थिति तक जब तक पहुँचूं तब तक मेरी चाह मुझे सौ बार धरती पर पटकती है क्योंकि मैं अभी नौसिखिया उड़ने वाला हूँ और बहुत ऊँची शाख़ पर मेरा घोंसला है १३. जवानी की ख़ुशियाँ १४. जंगल का भटकना।

दर बयाबां गर ब शौक़े-काबा ख़्वाही ज़द क़दम
सर ज़निशहा गर कुनद ख़ारे-मुग़ीलां, ग़म मख़ोर ![1]

गोया इस मामले में भी अपनी चाल ज़माने से उल्टी ही रही। लोग ज़िंदगी के जिस मरहले में कमर बांधते हैं, मैं खोल रहा था :

काम थे इश्क़ में बहुत, पर 'मीर'
हम तो फ़ारिग़ हुये शिताबी से

उस वक़्त से लेकर आज तक कि कारवाने-बाद रफ़्तारे-उम्र[2] मंज़िले-ख़मसीन[3] से भी गुज़र चुका, फ़िक्र ओ अमल के बहुत से मैदान नमूदार हुये और अपनी राह पैमाइयों[4] के नुक़ूश[5] जा बजा बनाने पड़े। वक़्त या तो उन्हें मिटा देगा जैसा कि हमेशा मिटाता रहा है या महफ़ूज़ रखेगा जैसा कि हमेशा महफ़ूज़ रखता आया है :

आईनये-नक़्श बंद तिलिस्मे-ख़याल नेस्त
तसवीरे-ख़ुद ब लोहे-दिगर मीकशेम मा ![6]

यहाँ ज़िंदगी बसर करने के दो ही तरीक़े थे जिन्हें अबू तालिब कलीम ने दो मिसरों में बता दिया है :

तबअ़े बहम रसां कि बसाज़ी ब आलमे
या हिम्मते कि अज़ सरे-आलम तवां गुज़श्त ![7]

पहला तरीक़ा इख़्तियार नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी तबीयत ही नहीं लाया था, नाचार दूसरा इख़्तियार करना पड़ा :

कार मुश्किल बूद, मा बर ख़ेश आसां कर्दा ऐम !

जो नामुराद यह दूसरा तरीक़ा इख़्तियार करते हैं, वो न तो राह की मुश्किलों और रुकावटों से नाआश्ना[8] होते हैं, न अपनी नातवानियों[9] और दरमांदगियों[10] से बेख़बर होते हैं। ताहम वो क़दम उठा देते हैं। क्योंकि क़दम उठाये बग़ैर रह नहीं सकते। ज़माना अपनी सारी नामुवाफ़िक़तों[11] और बेहम्तियाज़ियों[12] के साथ बार-बार उनके सामने आता है, और तबीयत की ख़िल्क़ी[13] दरमांदगियां

१. काबे की जुस्तजू में अगर जंगल में क़दम रखना पड़े और अगर बबूल के कांटे चुभें तो भी ग़म मत कर। २. उम्र का हवा की रफ़्तार का कारवां ३. पचास साल की उम्र ४. राह चलने ५. नक़्श का बहुवचन ६. पहले आ चुका है ७. ऐसी प्रकृति या मनोवृत्ति पैदा कर कि दुनिया के साथ साज़बाज के साथ रह सके। या ऐसी हिम्मत पैदा कर कि दुनिया से अलग हो सके ८. अपरिचित ९. दुर्बलता १०. बेकसी ११. प्रतिकूलता १२. विभेद १३. स्वाभाविक।

क़दम-क़दम पर दामने-अज़्म[1] ओ हिम्मत से उलझना चाहती हैं — ताहम उनका सफ़र जारी रहता है। वो जमाने के पीछे नहीं चल सकते, लेकिन जमाने के ऊपर से गुजर जा सकते हैं और बिलआखिर बेनियाजाना[2] गुजर जाते हैं :

वक़्ते-मुरफ़ी खुश, कि न कशूदंद गर दर बर रुखश
बर दरे नकशूदा साकिन शुद, दरे-दीगर न जद ![3]

अब सुबहे-ईद ने अपने चेहरे से सुबहे-सादिक़[4] का हल्का नक़ाब भी उलट दिया है और बेहिजाबाना[5] मुस्कुरा रही है :

इक निगारे-आतिशीं रुख, सर खुला ![6]

मैं अब आपको और ज्यादा अपनी तरफ़ मुतवज्जा रखने की कोशिश नहीं करूँगा क्योंकि सुबहे-ईद की इस जलवा नुमाई[7] का आपको जवाब देना है। कई साल हुये एक मकतूबे-गरामी[8] में शबहाये रमजान की "अंबरीं चाय" का जिक्र आया था। बेमहल[9] न होगा अगर उसके जुरआहाये[10] पैहम[11] से क़ब्ले-सलाते[12] ईद इफ़्तार[13] कीजिये कि ईद उल फ़ित्र में ताजील[14] मसनून[15] हुई और ईद उल अजहा में ताखीर[16] :

ईद अस्त, ओ निशात ओ तरब ओ जमजमा आम स्त
मय नोश, गुनह बर मन अगर बादा हराम स्त !
अज रोजा अगर कोफ़्ताई, बादा रवा गीर
ईं मसअला हल गश्त ब साक़ी कि इमाम स्त ![17]

अबुल कलाम

१. दृढ़ता और हिम्मत का पल्लू २. बेपरवाही के साथ ३. मुरफ़ी खुश है अगर उसके लिये दरवाजा न खोलें, वह उसी बिन खुले दरवाजे पर बैठ गया और किसी दूसरे दरवाजे पर दस्तक नहीं दी ४. प्रभात ५. बिना घूँघट के ६. एक ज्वलंत मुखड़ा सामने खुल गया ७. रूप प्रदर्शन ८. कृपापत्र ९. अनुचित १०. घूँटों से ११. अनवरत १२. ईद की नमाज से पहले १३. व्रत के तोड़ने को मुसलमानों में इफ़्तार करना कहते हैं १४. जल्दी, शीघ्रता १५. रसूल के द्वारा की हुई बातें १६. देर १७. ईद है, और खुशी आनंद के तराने चारों तरफ़ हैं। शराब पी, अगर शराब हराम हो तो इसका गुनाह मुझ पर है। अगर तू रोजे या व्रत के कष्टों से पीड़ित है तो शराब पी। यह समस्या साक़ी ने हल कर दी है जो कि इमाम है।

क़िलअ़े-अहमदनगर
१७, अक्तूबर सन् १९४२

अज़ बहरे च गोयम "हस्त" अज़ ख़ुद ख़बरम नेस्त
वज़ बहरे च गोयम "नेस्त" बा ऊ नज़रे हस्त ![1]

सदीक़े-मुकर्रम

सुबह के साढ़े तीन बजे हैं। इस वक़्त लिखने के लिये क़लम उठाया तो मालूम हुआ स्याही ख़त्म हो रही है। साथ ही ख़्याल आया कि स्याही की शीशी ख़ाली हो चुकी थी। नई शीशी मँगवानी थी मगर मंगवाना भूल गया। मैंने सोचा थोड़ा सा पानी क्यों न डाल दूं ? यकायक चायदानी पर नज़र पड़ी। मैंने थोड़ी सी चाय फ़िज़ान में उँडेली और क़लम का मुंह उसमें डुबोकर पिचकारी चला दी। फिर उसे अच्छी तरह हिला दिया कि रोशनाई की धोवन पूरी तरह निकल आये। और अब देखिये रोशनाई की जगह चाय के तुंद ओ गर्म अर्क़ से अपने नफ़सहाये-सर्द[2] सफ़्हये-क़िरतास[3] पर नक़्श कर रहा हूँ :

मीकशद शोला सरे अज़ दिले-सद पारये-मा
जोशे-आतिश बुवद इमरोज़ ब फ़व्वारये-मा ![4]

तबीयत अफ़सुर्दा होती है तो अल्फ़ाज़ भी अफ़सुर्दा निकलते हैं। मैं तबीयत की अफ़सुर्दगियों का चाय के गर्म जामों से इलाज किया करता हूं। आज क़लम को भी एक घूंट पिला दिया :

ईं कि दर जाम ओ सुबू दारम मुहय्या आतिश स्त[5]

आप इस तरीक़े-कार पर मुतअ़ज्जिब[6] न हों। आज से साढ़े तीन सौ बरस पहले फ़ैज़ी को भी यही तरीक़ा काम में लाना पड़ा था : नल-दमन में उसने हमें ख़बर दी है :

ता ताज़ा ओ तर कुनम रक़म रा
दर बादा कशीदा अम क़लम रा[7]

१. किसलिये तो कहूँ कि 'है' जब ख़ुद मुझे ही ख़बर नहीं है। और किसलिये यह कहूँ कि 'नहीं है' जब कि उसकी तरफ़ नज़र है। २. ठंडी साँसें ३. काग़ज़ के सफ़े पर ४. मेरे सौ टुकड़े हुये दिल से शोले अपना सिर उठा रहे हैं, आज के दिन मेरे फ़व्वारे में आग का जोश है ५. जो कि मेरे प्याले और सुराही में है वह सब आग है ६. आश्चर्यचकित ७. ताकि अपनी लिखावट को ताज़ा और तर लिखूं मैंने अपने क़लम को शराब में डुबोया है।

आज भी जाम वही है जो रोज़ गर्दिश में आता है लेकिन जाम में जो कुछ उँडेल रहा हूँ उसकी कैफ़ियतें कुछ बदली हुई पाइयेगा :

अज़ मये-दोशीं क़दरे तुंद तर ![1]

बारहा मुझे ख़याल हुआ कि हम ख़ुदा की हस्ती का इक़रार करने पर इसलिये भी मजबूर हैं कि अगर न करें तो कारख़ानये-हस्ती के मुअम्मे[2] का कोई हल बाक़ी नहीं रहता। और हमारे अंदर एक हल की तलब है जो हमें मुज़्तरिब[3] रखती है :

आं कि ईं नामये सर बस्ता नविश्ता स्त नख़ुस्त
गिरहे-सख़्त ब सरे-रिश्तये-मज़मून ज़दा स्त ![4]

अगर एक उलझा हुआ मामला हमारे सामने आता है और हमें उसके हल की जुस्तजू होती है तो हम क्या करते हैं ? हमारे अंदर बित्तबा[5] यह बात मौजूद है और मंतिक[6] और रियाज़ी[7] ने उसे राह पर लगाया है कि हम उलझाव पर ग़ौर करेंगे। हर उलझाव एक ख़ास तरह के तक़ाज़े का जवाब चाहता है। हम कोशिश करेंगे कि एक के बाद एक तरह तरह के हल सामने लायें और देखें इस तक़ाज़े का जवाब मिलता है या नहीं ? फिर जूंही एक हल ऐसा निकल आयेगा जो उलझाव के सारे तक़ाज़ों का जवाब दे देगा और मामले की सारी कलें ठीक ठीक बैठ जायेंगी। हमें पूरा यक़ीन हो जायेगा कि उलझाव का सही हल निकल आया। और सूरते-हाल की यह अंदरूनी शहादत[8] हमें इस दर्जे मुतमयिन[9] कर देगी कि फिर किसी बैरूनी[10] शहादत की एहतियाज[11] बाक़ी नहीं रहेगी। अब कोई हज़ार शुबहे निकाले यक़ीन मुतज़लज़ल[12] होने वाला नहीं।

फ़र्ज़ कीजिये कपड़े के एक थान का एक टुकड़ा किसी ने फाड़ लिया हो और टुकड़ा फटा हो इस तरह टेढ़ा तिरछा दंदानेदार होकर कि जब तक वैसे ही उलझाव का एक टुकड़ा वहाँ आकर बैठता नहीं, थान की ख़ाली जगह भरती नहीं। अब उसी कपड़े के बहुत से टुकड़े हमें मिल जाते हैं और हर टुकड़ा वहाँ बिठाकर हम देखते हैं कि उस ख़ला[13] की नौइयत का तक़ाज़ा पूरा होता है या नहीं। मगर कोई टुकड़ा ठीक बैठता नहीं। अगर एक गोशा[14] मेल खाता है तो दूसरे गोशे बढ़ने से इंकार कर देते हैं। अचानक एक टुकड़ा ऐसा निकल आता

१. कल रात की शराब से कुछ तेज़ तर २. पहेली ३. बेचैन ४. जिसने कि यह बंद चिट्ठी प्रारंभ में लिखी है उसने विषय के सूत्र में एक सख़्त गाँठ डाल दी है ५. स्वभावतः ६. न्याय ७. गणितशास्त्र ८. गवाही, साक्षी ९. निश्चिंत, संतुष्ट १०. बाहिरी ११. ज़रूरत १२. हिलने वाला १३. ख़ाली जगह १४. कोना।

है कि टेढ़े तिरछे कटाव के सारे तक़ाज़े पूरे कर देता है और साफ़ नज़र आ जाता है कि सिर्फ़ इसी टुकड़े से यह खला भरा जा सकता है। अब अगरचे इसकी ताईद[1] में कोई ख़ारजी[2] शहादत मौजूद न हो लेकिन हमें पूरा यक़ीन हो जायेगा कि यही टुकड़ा यहाँ से फाड़ा गया था और इस दर्जे का यक़ीन हो जायेगा कि— लव कुशिफ़ल ग़िताउ लम इज़दादत यक़ीनन[3]

इस मिसाल से एक क़दम और आगे बढ़ाइये और गोरखधंदे की मिसाल सामने लाइये। बेशुमार तरीक़ों से हम उसे मुरत्तब[4] करना चाहते हैं मगर होता नहीं। बिल आख़िर एक ख़ास तरतीब[5] ऐसी निकल आती है कि उसके हर जुज़[6] का तक़ाज़ा पूरा हो जाता है और उसकी चूल ठीक ठीक बैठ जाती है। अब गो कोई ख़ारजी दलील इस तरतीब की सिहत[7] की मौजूद न हो लेकिन यह बात कि सिर्फ़ इसी एक तरतीब से उसका उलझाव दूर हो सकता है बजाये ख़ुद[8] ऐसी फ़ैसलाकुन[9] दलील बन जायेगी कि फिर हमें किसी और दलील की एहतियाज बाक़ी ही नहीं रहेगी। उलझाव का दूर हो जाना और एक नक़्श का नक़्श बन जाना बजाये ख़ुद हज़ारों दलीलों की एक दलील है!

अब इल्म ओ तयक़्क़ुन[10] की राह में एक क़दम और आगे बढ़ाइये और एक तीसरी मिसाल सामने लाइये। आपने हर्फ़ों की तरतीब से खुलने वाले क़ुफ़्ल[11] देखे होंगे। इन्हें पहले क़ुफ़्ले-अबजद के नाम से पुकारते थे। एक ख़ास लफ़्ज़ के बनने से वो खुलता है और वो हमें मालूम नहीं। अब हम तरह तरह के अल्फ़ाज़ बनाते जायेंगे और देखेंगे कि खुलता है या नहीं? फ़र्ज़ कीजिये एक ख़ास लफ़्ज़ के बनते ही खुल गया। अब क्या हमें इस बात का यक़ीन नहीं हो जायेगा कि इसी लफ़्ज़ में उस क़ुफ़्ल की कुंजी पोशीदा थी? जुस्तजू जिस हल की थी वो क़ुफ़्ल का खुलना था। जब एक लफ़्ज़ ने क़ुफ़्ल खोल दिया तो फिर इसके बाद बाक़ी क्या रहा जिसकी मज़ीद[12] जुस्तजू हो!

इन मिसालों को सामने रख कर इस तिलिस्मे-हस्ती के मुअम्मे पर ग़ौर कीजिये जो ख़ुद हमारे अंदर और हमारे चारों तरफ़ फैला हुआ है। इंसान ने जब से होश ओ आगही की आँखें खोली हैं इस मुअम्मे का हल ढूँढ रहा है। लेकिन इस पुरानी किताब का पहला और आख़िरी वरक़ कुछ इस तरह खोया गया

१. पुष्टि २. बाहिरी ३, अगर पर्दा उठाया जाये तो भी मेरा विश्वास ज्यादा नहीं होगा। ४. व्यवस्थित ५. व्यवस्था ६. अंश ७. दुरुस्ती ८. स्वयं ९. अंतिम निर्णयकारी १०. ज्ञान और विश्वास ११. ताला १२. विशेष।

है कि न तो यही मालूम होता है कि शुरू कैसे हुई थी, न इसी का कुछ सुराग़ मिलता है कि ख़त्म कहाँ जाकर हुई और क्यों कर होगी ?

अव्वल ओ आख़िरे ईं कुहना किताब उफ़्ताद स्त ![1]

ज़िंदगी और हरकत का यह कारख़ाना क्या है और क्यों है ? इसकी कोई इब्तदा भी है या नहीं ? यह कहीं जाकर ख़त्म भी होगा या नहीं ? ख़ुद इंसान क्या है ? यह जो हम सोच रहे हैं कि "इंसान क्या है ?" तो ख़ुद यह सोच और समझ क्या चीज़ है ? और फिर हैरत और दरमांदगी[2] के इन तमाम पर्दों के पीछे कुछ है भी या नहीं ?

मुर्दम दर इंतज़ार ओ दरीं पर्दा राह नेस्त
या हस्त ओ पर्दादार निशानम न मीदिहद ![3]

उस वक़्त से लेकर जब कि इब्तदाई अहद[4] का इंसान पहाड़ों के ग़ारों[5] से सर निकाल निकाल कर सूरज को तुलूअ[6] ओ ग़ुरूब[7] होते देखता था, आज तक जब कि वो इल्म की तजुर्बागाहों[8] से सर निकाल कर फ़ितरत[9] के बेशुमार चेहरे बेनक़ाब देख रहा है इंसान के फ़िक्र ओ अमल की हज़ारों बातें बदल गईं मगर यह मुअम्मा मुअम्मा ही रहा:—

असरारे-अज़ल रा न तू दानी ओ न मन
वीं हर्फ़े-मुअम्मा न तू ख़्वानी ओ न मन
हस्त अज़ पसे-पर्दा गुफ़्तगूये-मन ओ तू
चूं पर्दा बर उफ़्तद, न तू मानी ओ न मन ।[10]

हम इस उलझाव को नये नये हल निकाल कर सुलझाने की जितनी कोशिशें करते हैं वो और ज़्यादा उलझता जाता है एक पर्दा सामने दिखाई देता है उसे हटाने में नस्लों की नस्लें गुज़ार देते हैं। लेकिन जब वो हटता है तो मालूम होता है सौ पर्दे और उसके पीछे पड़े थे। और जो पर्दा हटा था वो फ़िल हक़ीक़त पर्दे का हटना न था बल्कि नये नये पर्दों का निकल आना था। एक सवाल का जवाब अभी मिल नहीं चुकता कि दस नये सवाल सामने

---

१. इस पुरानी किताब का पहला और आख़िरी पृष्ठ गिर पड़ा है। २. परेशानी ३ मैं इंतज़ार में मर गया और इस पर्दे में कोई राह नहीं है। या है और पर्दादार उसका संकेत नहीं देता ४. ज़माना ५. गुफ़ा ६. उगना ७. छिपाना ८. प्रयोगशाला ९. प्रकृति १०. सृष्टि के प्रारम्भ होने के आदि रहस्य को न तो तू जानता है और न मैं जानता हूँ, और इस पहेली के अक्षरों को न तो तूने पढ़ा है और न मैंने, एक पर्दे के पीछे से मेरी और तुम्हारी बातचीत हो रही है और जब पर्दा ऊपर उठ गया तो न मैं रहा न तू।

आ खड़े होते हैं, एक राज़ अभी हल नहीं हो चुकता कि सौ नये राज़ चश्मक[1] करने लगते हैं।

दरीं मैदाने-पुरनैरंग हैरान स्त दानाई
कि यक हंगामा आराई व सद किश्वर तमाशाई ![2]

आइंस्टाइन ने अपनी एक किताब में साइंस की जुस्तजूये-हक़ीक़त की सरगर्मियों को शरलाक होम्ज़ की सुराग़रसानियों से तशबीह[3] दी है। और इसमें शक़ नहीं कि निहायत मानीखेज़[4] तशबीह दी है। इल्म[5] की यह सुराग़ रसानी[6] फ़ितरत की ग़ैर मालूम गहराइयों का खोज लगाना चाहती थी, मगर क़दम क़दम पर नये नये मरहलों[7] और नई नई दुश्वारियों से दो चार[8] होती रही। ज़ीमोक्रासीस (Democritus) के ज़माने से लेकर जिसने चार सौ बरस क़बल[9] मसीह माद्दे[10] के सालिमात (Atoms) की नक़्शआराई[11] की थी आज तक जबकि नज़रियये-मक़ादीरे-उंसरी (Quantum Theory) की रहनुमाई में हम सालिमात का अज़ सरे नौ तआक़ुब[12] कर रहे हैं। इल्म की सारी कद्द ओ काविश[13] का नतीजा इसके सिवा कुछ न निकला कि पिछली गुत्थियाँ सुलझती गईं नई नई, गुत्थियाँ पैदा होती गईं। इस ढाई हज़ार बरस की मुसाफ़िरत में हमने बहुत सी नई मंज़िलों का सुराग़[14] पा लिया जो अस्नाये-सफ़र[15] में नमूदार[16] होती रहीं। लेकिन हक़ीक़त की वो आख़िरी मंज़िले-मक़सूद जिसके सुराग़ में इल्म का मुसाफ़िर निकला था, आज भी उसी तरह ग़ैर मालूम है जिस तरह ढाई हज़ार बरस पहले थी। हम जिस क़दर इससे क़रीब होना चाहते हैं उतना ही वो दूर होती जाती है:

बा मन आवेज़िशे-क उल्फ़ते-मौज स्त ओ कनार[17]
दम बदम बा मन ओ हर लहज़ा गुरेज़ाँ अज़ मन !

दूसरी तरफ़ हम महसूस करते हैं कि हमारे अन्दर एक न बुझने वाली प्यास खौल रही है जो इस मुअम्मये-हस्ती का कोई हल चाहती है। हम कितना ही उसे दबाना चाहें मगर उसकी तपिश लबों पर आ ही आयेगी। हम

१. इशारे, आँख के संकेत २. इस जादू भरे मैदान याने दुनिया में अक़्ल हैरान है कि एक धूमधाम है और सौ मुल्क तमाशा देख रहे हैं। ३. उपमा ४. अर्थ पूर्ण ५. ज्ञान ६. अन्वेषण ७. समस्या ८. आमना सामना होने को दो चार होना भी कहते हैं ९. पूर्व १०. Matter ११. गठन, चित्रण १२. पीछा १३. प्रयत्न और खोज १४. पता संधान १५. सफ़र के बीच १६. प्रगट १७. मेरा और उसका संबंध ऐसा है जैसा कि लहर और किनारे का मेल है। हर क्षण वह मेरे साथ भी है और दूर भी।

बग़ैर हल के सुकूने-क़ल्ब[1] नहीं पा सकते । बसा औक़ात[2] हम इस धोके में पड़ जाते हैं कि किसी तशफ़्फ़ीबख़्श[3] हल की हमें ज़रूरत नहीं । लेकिन यह महज़ एक बनावटी तख़य्युल होता है और जूं ही ज़िंदगी के क़ुदरती तक़ाज़ों से टकराता है पाश पाश[4] होकर रह जाता है ।

योरप और अमरीका के मुफ़क्किरों[5] के ताज़ातरीन मआसिर[6] का मुताला[7] कीजिये और देखिये मौजूदा जंग ने उन तमाम दिमाग़ों में जो कल तक अपने आपको मुतमयिन तसव्वुर करने की कोशिश करते थे कैसा तहलका मचा रखा है ? अभी चंद दिनों की बात है कि प्रोफ़ेसर जोद (Joud) का एक मक़ाला[8] मेरी नज़र से गुज़रा था । वो लिखता है कि उन तमाम फ़ैसलों पर जो हमने मज़हब और ख़ुदा की हस्ती के बारे में किये थे अब अज़ सरे-नौ ग़ौर करना चाहिये । यह प्रोफ़ेसर जोद का बाद अज़ जंग का ऐलान है । लेकिन प्रोफ़ेसर जोद के क़बल अज़ जंग के ऐलानात किस दर्जे इससे मुख़्तलिफ़ थे ? बरट्रैंड रसल (Bertrand Russell) ने भी गुज़श्ता साल एक मुतव्वल[9] मक़ाले में जो बाज़ अमरीकी रसायल[10] में शाया हुआ ऐसी ही राय ज़ाहिर की थी ।

मगर जिस वक़्त यह मुअम्मा इंसानी दिमाग़ के सामने नया नया उभरा था, उसी वक़्त उसका हल भी उभर आया था । हम उस हल की जगह दूसरा हल ढूंढ़ना चाहते हैं और यहीं से हमारी तमाम बेहासिलियां[11] सर उठाना शुरू कर देती हैं ।

अच्छा अब ग़ौर कीजिये इस मुअम्मे के हल की काविश[12] बिल आख़िर हमें कहां ले जाकर खड़ा कर देती है ? यह पूरा कारख़ानये-हस्ती अपने हर गोशे और अपनी हर नमूद में सरता सर[13] एक सवाल है । सूरज से लेकर उसकी रोशनी के ज़र्रों तक कोई नहीं जो यकक़लम पुरसिश[14] ओ तक़ाज़ा न हो । "यह सब कुछ क्या है ?" "यह सब कुछ क्यों है ?" "यह सब कुछ किसलिये है ?" हम अक़्ल का सहारा लेते है, और उस रोशनी में जिसे हमने इल्म के नाम से पुकारा है जहां तक राह मिलती है चलते चले जाते हैं । लेकिन हमें कोई हल मिलता नहीं जो इस उलझाव के तक़ाज़ों की प्यास बुझा सके । रोशनी गुल हो जाती है । आंखें पथरा जाती हैं । और अक़्ल ओ इदराक[15] के सारे सहारे जवाब दे देते हैं । लेकिन फिर जूं ही हम पुराने हल की तरफ़ लौटते हैं और अपनी मालूमात में सिर्फ़ इतनी बात बढ़ा देते हैं कि "एक साहबे-इदराक ओ इरादा

---

१. दिल की शांति २. बहुत बार ३. सांत्वना देने वाला ४. टुकड़े टुकड़े ५. विचारक ६. अन्वेषण ७. अध्ययन ८. वक्तव्य ९. विस्तृत १०. रिसाले का बहुवचन, पुस्तक ११. नाकामयाबियां १२. खोज १३. शुरू से आख़िर तक १४. सवाल १५. बुद्धि ।

क़ुव्वत[1] पसे-पर्दा मौजूद है" तो अचानक सूरते-हाल[2] यकक़लम मुन्क़लिब[3] हो जाती है और ऐसा मालूम होने लगता है जैसे अँधेरे से निकलकर यकायक उजाले में आ खड़े हुये। अब जिस तरफ़ भी देखते हैं रोशनी ही रोशनी है। हर सवाल ने अपना जवाब पा लिया। हर तक़ाज़े की तलब पूरी हो गई। हर प्यास को सैराबी[4] मिल गई। गोया यह सारा उलझाव एक क़ुफ़्ल था जो इस कुंजी के छूते ही खुल गया।

चंदा कि दस्त ओ पा ज़दम आशुफ़्तातर शुदम
साकिन शुदम, मयानये-दरिया कनार शुद![5]

अगर एक ज़ी अक़्ल[6] इरादा पसे-पर्दा[7] मौजूद है तो यहाँ जो कुछ है किसी इरादे का नतीजा है और किसी मुअय्यन[8] और तैशुदा[9] मक़सद[10] के लिये है। जूँ ही यह हल सामने रखकर हम इस गोरखधंदे को तरतीब देते हैं मअन[11] इसकी हर कज पेच[12] निकल जाती है और सारी चूलें अपनी अपनी जगह ठीक आकर बैठ जाती हैं। क्योंकि हर "क्या है?" और "क्यों है?" को एक मानीख़ेज़[13] जवाब मिल जाता है। गोया इस मुअम्मे के हल की सारी रूह इन चंद लफ़्ज़ों के अंदर सिमटी हुई थी। जूं ही ये सामने आये मुअम्मा मुअम्मा न रहा एक मानीख़ेज़ दास्तान बन गया। फिर जूं ही ये अल्फ़ाज़ सामने से हटने लगते हैं तमाम मानी व इशारात ग़ायब हो जाते हैं और एक ख़ुनक[14] और बेजान चीस्तान[15] बाक़ी रह जाती है।

अगर जिस्म में रूह बोलती है और लफ़्ज़ में मानी उभरता है तो हक़ा-यक़े-हस्ती[16] के अजसाम[17] भी अपने अंदर कोई रूहे-मानी[18] रखते हैं। यह हक़ीक़त कि मुअम्मये-हस्ती के बेजान और बेमानी जिस्म में सिर्फ़ इसी एक हल से रूहे-मानी पैदा हो सकती है, हमें मजबूर कर देती है कि इस हल को हल तसलीम[19] कर लें।

अगर कोई इरादा और मक़सद पर्दे के पीछे नहीं है तो यहाँ तारीकी[20] के सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन अगर एक इरादा और मक़सद काम कर रहा है तो फिर जो कुछ भी है रोशनी ही रोशनी है। हमारी फ़ितरत में

---

१. बुद्धि और इरादा रखने वाली शक्ति २. परिस्थिति ३. परिवर्तित ४. तृप्ति ५. जितने भी मैंने हाथ पैर मारे और ज़्यादा परेशान हुआ लेकिन ज्यों ही निश्चल हुआ कि ऐन दरिया के बीच में किनारा मिल गया। ६. ज्ञानवान ७. पर्दे के पीछे ८. निश्चित ९. सुनिश्चित १०. लक्ष्य ११. फ़ौरन १२. टेढ़ा तिरछापन १३. अर्थपूर्ण १४. ठंडी १५. पहेली १६. सृष्टि की असलियत या तथ्य १७. जिस्म का बहुवचन, देह, कलेवर १८. अर्थ १९. स्वीकार २०. अंधकार।

रोशनी की तलब है। हम अँधेरे में खोये जाने की जगह रोशनी में चलने की तलब रखते हैं। और हमें यहाँ रोशनी की राह सिर्फ़ इसी एक हल से मिल सकती है।

फ़ितरते-कायनात[1] में एक मुकम्मल मिसाल (Pattern) की नमूदारी[2] है। ऐसी मिसाल जो अज़ीम[3] भी है और जमाली भी (Aesthetic)। उसकी अज़मत[4] हमें मरऊब[5] करती है, उसका जमाल हममें महविय्यत[6] पैदा करता है। फिर क्या हम फ़र्ज़ कर लें कि फ़ितरत की यह नमूद[7] बग़ैर किसी मुदरिक (intelligent) क़ुव्वत के काम कर रही है। हम चाहते हैं कि फ़र्ज़ कर लें, मगर नहीं कर सकते। हमें महसूस होता है कि ऐसा फ़र्ज़ कर लेना हमारी दिमाग़ी ख़ुदकुशी होगी।

अगर ग़ौर कीजिये तो इस हल पर यक़ीन करते हुये हम उसी तरीक़े-नज़र से काम लेना चाहते हैं जो रियाज़ियात[8] के ऐदादी[9] और पैमाइशी[10] हक़ायक़ से हमारे दिमाग़ों में काम करता रहता है। हम किसी अददी और पैमाइशी उलझाव का हल सिर्फ़ उसी हल को तस्लीम करेंगे जिसके मिलते ही उलझाव दूर हो जाये। उलझाव का दूर हो जाना ही हल की सिहत की अटल दलील होती है। बिला शुबहा दोनों सूरतों में उलझाव और हल की नौइयत एक तरह की नहीं होती। ऐदादी मसायल[11] में उलझाव अददी होता है, यहाँ अक़ली है। वहाँ अददी हल अददी हक़ायक़ का यक़ीन पैदा करता है यहाँ अक़ली हल अक़ली इज़आन[12] की तरफ रहनुमाई करता है। ताहम तरीक़े-नज़र का साँचा दोनों जगह एक ही तरह का हुआ। दोनों राहें एक ही तरह खुलती और एक ही तरह बंद होती हैं।

अगर कहा जाये, हल की तलब हम इसलिये महसूस करते हैं कि अपने महसूसात[13] ओ तअक़्क़ुल[14] के महदूद दायरे में इसके आदी हो गये हैं। और अगर इस हल के सिवा और किसी हल से हमें तशफ़्फ़ी[15] नहीं मिलती तो यह भी इसीलिये है कि हम हक़ीक़त तौलने के लिये अपने महसूसात ही का तराज़ू हाथ में लिये हुये हैं। तो इसका जवाब भी साफ़ है। हम अपने आपको अपने फ़िक्र ओ नज़र के दायरे से बाहर नहीं ले जा सकते हम मजबूर हैं कि इसी के अंदर रह कर सोचें और हुक्म लगायें। और यह जो हम कह रहे हैं कि "हम मजबूर हैं कि सोचें और हुक्म लगायें" तो :

ईं सुख़न नीज़ ब अंदाज़ये-इदराके-मन स्त ![16]

१. विश्व प्रकृति २. प्रगटन ३. महान ४. महानता ५. चकित ६. तल्लीनता, आत्मविभोरता ७. प्रगटन ८. गणितशास्त्र ९. संख्या संबंधी १०. नापने का ११. समस्या, सवाल १२. विश्वास १३. अनुभूति १४. जानकारी १५. संतोष १६. यह बात भी मेरी बुद्धि के परिमाण के मुताबिक है।

मसले का एक और पहलू भी है जो अगर ग़ौर करें तो फ़ौरन हमारे सामने नुमायाँ हो जायेगा। इंसान के हैवानी[1] वजूद ने मर्तबये-इंसानियत[2] में पहुँच कर नश्व ओ इर्तक़ा[3] की तमाम पिछली मंज़िलें बहुत पीछे छोड़ दी हैं और बुलंदी के एक ऐसे अरफ़ा[4] मुक़ाम पर पहुँच गया है जो उसे कुर्रये-अरज़ी[5] की तमाम मख़लूक़ात[6] से अलग ओ मुमताज़[7] कर देता है। अब उसे अपनी ला महदूद[8] तरक़्क़ियों के लिये एक ला महदूद बुलंदी का नस्ब-उल-ऐन[9] चाहिये जो उसे बराबर ऊपर ही की तरफ़ खींचता रहे। उसके अंदर बुलंद से बुलंदतर होते रहने की तलब हमेशा उबलती रहती है और वो ऊँची से ऊँची बुलंदी तक उड़ कर भी रुकना नहीं चाहती। उसकी निगाहें हमेशा ऊपर ही की तरफ़ लगी रहती हैं। सवाल यह है कि यह ला महदूद बुलंदियों का नस्ब-उल-ऐन क्या हो सकता है? हमें बिला ताम्मुल[10] तस्लीम कर लेना पड़ेगा कि ख़ुदा की हस्ती के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अगर यह हस्ती उसके सामने से हट जाये तो फिर उसके लिये ऊपर की तरफ़ देखने के लिये कुछ भी बाक़ी नहीं रहेगा।

कुर्रये-अरज़ी की मौजूदात में जितनी चीजें हैं सब इंसान से निचले दर्जे की हैं। वो उनकी तरफ़ नज़र नहीं उठा सकता। उसके ऊपर अजरामे-समावी[11] की मौजूदात फैली हुई हैं। लेकिन उनमें भी कोई हस्ती ऐसी नहीं जो उसके लिये नस्ब-उल-ऐन बन सके। वो सूरज को अपना नस्ब-उल-ऐन नहीं बना सकता। वो चमकते हुये सितारों से इश्क़ नहीं कर सकता। सूरज उसके जिस्म को गरमी बख़्शता है लेकिन उसकी मख़फ़ी[12] क़ुव्वतों[13] की उमंगों को गरम नहीं कर सकता। सितारे उसकी अँधेरी रातों में क़ंदीलें रोशन कर देते हैं लेकिन उसके दिल ओ दिमाग़ के निहांख़ाने[14] को रोशन नहीं कर सकते। फिर वो कौन सी हस्ती है जिसकी तरफ़ वो अपनी बुलंद परवाज़ियों के लिये नज़र उठा सकता है?

यहाँ उसके चारों तरफ़ पस्तियाँ ही पस्तियाँ हैं जो उसे इंसानियत की बुलंदी से फिर हैवानियत की पस्तियों की तरफ़ ले जाना चाहती हैं। हालांकि वो ऊपर की तरफ़ उड़ना चाहता है। वो अनासिर[15] के दर्जे से बुलंद होकर नबाताती[16] ज़िंदगी के दर्जे में आया। नबातात से बुलंदतर होकर हैवानी ज़िंदगी के दर्जे में पहुँचा। फिर हैवानी मर्तबे से उड़कर इंसानियत की शाखे-

१. पाशविक अस्तित्व २. मनुष्य के दर्जे में ३. विकास ४. ऊँचे ५. पृथ्वी का गोला ६. सृष्टि ७. ऊँचा ८. असीम ९. आदर्श १०. झिझक ११. आसमानी ग्रह नक्षत्र १२. गुप्त १३. शक्ति १४. अंतःपुर १५. पंच भूतों को अनासिर कहते हैं १६. वनस्पति।

बुलंद[1] पर अपना आशियाना[2] बनाया। अब वो इस बुलंदी से फिर नीचे की तरफ़ नहीं देख सकता, अगरचे हैवानियत की पस्ती उसे बराबर नीचे ही की तरफ़ खींचती रहती है। वो फ़ज़ा[3] की लाइंतहा[4] बुलंदियों की तरफ़ आँख उठाता है।

न ब अंदाज़ये-बाज़ू स्त कमंदम हैहात
वरना बा गोशये-बामेम सरोकारे हस्त![5]

उसे बुलंदियों, लामहदूद बुलंदियों का एक बामे-रफ़अत[6] चाहिये जिसकी तरफ़ वो बराबर देखता रहे और जो उसे हरदम बुलंद से बुलंदतर होते रहने का इशारा करता रहे!

तुरा ज़ कंगुरये-अर्श मीज़नंद सफ़ीर
नदानमत कि दरीं दामगह् च उफ़्ताद स्त।[7]

इसी हक़ीक़त को एक जर्मन फ़िलसफ़ी रेल (Riehl) ने इन लफ़्ज़ों में अदा किया था: "इंसान तन कर सीधा खड़ा नहीं रह सकता जब तक कोई ऐसी चीज़ उसके सामने मौजूद न हो जो ख़ुद उससे बुलंदतर है। वो किसी बुलंद चीज़ के देखने ही के लिये सर ऊपर कर सकता है!"

बुलंदी का यह नस्ब-उल-ऐन ख़ुदा की हस्ती के तसव्वुर के सिवा और क्या हो सकता है? अगर यह बुलंदी उसके सामने से हट जाये तो फिर उसे नीचे की तरफ़ देखने के लिए झुकना पड़ेगा। और ज्यूं ही उसने नीचे की तरफ़ देखा इंसानियत की बुलंदी पस्ती में गिरने लगी।

यही सूरते-हाल है जो हमें यक़ीन दिलाती है कि ख़ुदा की हस्ती का अक़ीदा[8] इंसान की एक फ़ितरी एहतियाज[9] के तक़ाज़े का जवाब है। और चूंकि फ़ितरी तक़ाज़े का जवाब है इसलिये उसकी जगह इंसान के अन्दर पहले से मौजूद होनी चाहिए, बाद की बनाई हुई बात नहीं हुई।

ज़िंदगी के हर गोशे में इंसान के फ़ितरी तक़ाज़े हैं। फ़ितरत ने फ़ितरी तक़ाज़ों के फ़ितरी जवाब दिये हैं और दोनों का दामन इस तरह एक दूसरे के साथ बाँध दिया है कि अब इसका फ़ैसला नहीं किया जा सकता—दोनों में से कौन पहले ज़हूर[10] में आया था। तक़ाज़े पहले पैदा हुए थे या उनके जवाबों ने पहले सर उठाया था? चुनांचे जब कभी हम कोई फ़ितरी तक़ाज़ा महसूस

---

१ ऊँची शाखा २. घोंसला ३. आकाश ४. असीम, अपार ५. अफ़सोस कि मेरी कमंद मेरे बाज़ुओं के मुताबिक़ अंदाज़े की नहीं है, वरना अटारी के कोने से मुझे सरोकार है ६. ऊँची अटारी ७. तुझे आसमानी कंगुरों से आवाज़ देते हैं, मैं नहीं जानता कि इस दुनिया के जंजाल में क्या पड़ा हुआ है। ८. विश्वास ९. प्राकृतिक आवश्यकता १०. अस्तित्व।

करते हैं तो हमें पूरा पूरा यक़ीन होता है कि इसका फ़ितरी जवाब भी ज़रूर मौजूद होगा। इस हक़ीक़त में हमें कभी शुबहा नहीं होता।

मसलन हम देखते हैं कि इंसान के बच्चे की दिमाग़ी नश्वो नुमा[1] और उसकी क़ुव्वते-महाकात[2] उभरने के लिए मिसालों और नमूनों की ज़रूरत होती है। वो मिसालों और नमूनों के बग़ैर अपनी फ़ितरी क़ुव्वतों को उनकी असली चाल चला नहीं सकता। हत्ता[3] कि बात करना भी नहीं सीख सकता जो उसके मर्तबये-इंसानियत का इम्तियाज़ी[4] वस्फ़[5] है। और चूंकि यह उसकी एक फ़ितरी तलब है इसलिए ज़रूरी था कि खुद फ़ितरत ही ने अव्वल रोज़ से उसका जवाब भी मुहय्या कर दिया होता। चुनांचे यह जवाब पहले मां की हस्ती में उभरता है, फिर बाप के नमूने में सर उठाता है। फिर रोज़ ब रोज़ अपना दामन फैलाता जाता है। अब ग़ौर कीजिये कि इस सूरते-हाल का यक़ीन किस तरह हमारे दिमाग़ों में बसा हुआ है? हम कभी इसमें शक कर ही नहीं सकते। हमारे दिमाग़ों में यह सवाल उठता ही नहीं कि बच्चे के लिए वालदैन[6] का नमूना इब्तदा से काम देता आया है या बाद को इंसानी बनावट ने पैदा किया है? क्योंकि हम जानते हैं कि यह एक फ़ितरी मतालबा[7] है और फ़ितरत के तमाम मतालबे जभी सर उठाते हैं जब उनके जवाब का भी सरोसामान मुहय्या होता है।

ठीक इसी तरह अगर हम देखते हैं कि इंसानी दिमाग़ की नश्वो नुमा एक ख़ास दर्जे तक पहुँचकर उन तमाम नमूनों से आगे बढ़ जाती है जो उसके चारों तरफ़ फैले हुए हैं और अपने उरूज[8] ओ इर्तक़ा[9] की परवाज़[10] जारी रखने के लिए ऊपर की तरफ़ देखने पर मजबूर हो जाती है तो हमें यक़ीन हो जाता है कि यह उसकी हस्ती का एक फ़ितरी मतालबा है। और अगर फ़ितरी मतालबा है तो ज़रूरी है कि उसका फ़ितरी जवाब भी खुद उसकी हस्ती के अंदर ही मौजूद हो और उसके होश ओ ख़िरद[11] ने आँखें खोलते ही उसे अपने सामने देख लिया हो। यह जवाब क्या हो सकता है? जिस ऊपर जुस्तजू करते हैं ख़ुदा की हस्ती के सिवा और कोई दिखाई नहीं देता।

आस्ट्रेलिया के वहशी क़बायल से लेकर तारीख़ी अहद के मुतमद्दिन[12] इंसानों तक कोई भी इस तसव्वुर की उमंग से ख़ाली नहीं रहा। ऋग्वेद के ज़मज़मों का फ़िक्री[13] मवाद उस वक़्त बनना शुरू हुआ था जब तारीख़ की सुबह भी पूरी तरह तुलूअ नहीं हुई थी। और हित्तियों (Hittites) और ईलामियों ने

१. विकास २. बोलने की शक्ति ३. यहां तक कि ४. विशेष
५. गुण ६. मां बाप ७. मांग ८. उत्कर्ष ९. विकास १०. उड़ान
११. अक़ल १२. सभ्य १३. चित्ताकर्षक मसाला वा सामग्री।

जब अपने तअब्बुदाना[1] तसव्वुरात के नक़्श ओ निगार[2] बनाये थे तो इंसानी तमद्दुन की तफ़ूलियत[3] ने अभी अभी आँखें खोली थीं। मिसरियों ने वलादते-मसीह[4] से हज़ारों साल पहले अपने खुदा को तरह-तरह के नामों से पुकारा और काल्डिया के सनअतगरों[5] ने मिट्टी की पकी हुई ईंटों पर हम्द ओ सना[6] के वो तराने कंदा[7] किये जो गुज़री हुई क़ौमों से उन्हें विरसे में मिले थे :

दर हेच पर्दा नेस्त नबाशद नवाये-तू
आलम पुर स्त अज़ तू ओ खाली स्त जाये-तू[8]

अबुलफ़ज़ल ने इबादतगाहे-कश्मीर के लिए क्या खूब कतबा[9] तजवीज़ किया था—"इलाही ब हर खाना कि मीनिगरम जोयाये-तू अंद, व ब हर ज़बां कि मीशुनवम गोयाये-तू।[10]"

अय तीरे-ग़मत रा दिले-उश्शाक़ निशाना
खल्क़े ब तू मशग़ूल तू ग़ायब ज़ मयाना
गह मौतकिफ़े-दैरम ओ गह साकिने-काबा
याने कि तुरा मीतलबम खाना ब खाना![11]

अबुलकलाम

1. पूजा भक्तिपूर्ण 2. चित्र, पट 3. बचपन, बाल्यकाल 4. ईसा के जन्म से 5. शिल्पियों ने 6. स्तुति और प्रार्थना 7. खोदना 8. ऐसा कोई पर्दा नहीं है जिसमें कि तेरी आवाज़ न हो, सारी दुनिया तुझसे परिपूर्ण है (मगर) तेरी जगह खाली है 9. अभिलेख, शिलालेख 10. हे ईश्वर, जिस घर में भी देखता हूँ उसमें तेरे चाहने वाले और ढूंढने वाले हैं, और जो भाषा भी सुनता हूँ उसमें तेरी स्तुति करने वाले हैं। 11. ओ (प्रभु), तेरे ग़म के तीर के लिए प्रेमियों का दिल ही निशाना है, सारी दुनिया तुझमें लीन है लेकिन तू बीच में से ग़ायब है। मैं कभी मंदिर का पुजारी हूँ और कभी काबे का वासी याने कि तेरी घर घर में तलाश कर रहा हूँ।

किलअे-अहमदनगर
१८ अक्तूबर सन् १९४२

सदीक़े-मुकर्रम,

कल का मकतूब काग़ज़ पर खत्म हो चुका था लेकिन दिमाग़ में खत्म नहीं हुआ था। इस वक़्त क़लम उठाया तो फिर खयालात उसी रुख पर बढ़ने लगे।

ग़ौर ओ फ़िक्र[1] की यही मंज़िल है जो हमें एक दूसरी हक़ीक़त की तरफ़ भी मुतवज्जा[2] कर देती है। यह क्या बात है कि इंसान खुदा के मावराये-तअक़्क़ुल[3] और ग़ैरशख़्सी तसव्वुर[4] पर क़ानिअ[5] न रह सका और किसी न किसी शक्ल में अपने फ़िक्र ओ अहसासात के मुताबिक़ एक शख़्सी तसव्वुर पैदा करता रहा? मैं "शख़्सी" तसव्वुर यहाँ उस मानी में बोल रहा हूं जिस मानी में "पर्सनल गॉड" (Personal God) की इस्तलाह[6] बोली जाती है। शख़्सी तसव्वुर के मुख़्तलिफ़ मदारिज[7] हैं। इब्तदाई दर्जा तो शख़्से-महज़ का होता है जो सिर्फ़ शख़्सियत का इसबात[8] करता है। लेकिन फिर आगे चल कर यह शख़्सियत खास खास सिफ़्तों[9] और फ़आलियतों का जामा पहन लेती है। सवाल यह है कि यह जामा नागुज़ीर क्यों हुआ? इसकी इल्लत भी यही है कि इंसान की फ़ितरत को बुलंदी के एक नस्ब-उल-ऐन[10] की ज़रूरत है और इस ज़रूरत की प्यास बग़ैर एक मुशख़्ख़स और अलायक़ नवाज़[11] तसव्वुर के बुझ नहीं सकती। हक़ीक़त कुछ ही हो, लेकिन यह तसव्वुर जब कभी उसके सामने आयेगा तो तशख़्ख़ुस[12] की एक नक़ाब चेहरे पर ज़रूर डाल लेगा। यह नक़ाब कभी भारी रही कभी हलकी हो गई, कभी डराने वाली रही, कभी लुभाने वाली बन गई, लेकिन चेहरे से उतरी कभी नहीं। और यहीं से हमारे दीदये-सूरत परस्त[13] की सारी दरमांदगियां[14] शुरू हो गईं:

बर चेहरये-हक़ीक़त अगर मांद पर्दये
जुर्मे-निगाहे-दीदये-सूरत परस्ते-मा स्त![15]

१. चिंतन और मनन २. ध्यान खींचना ३. ज्ञान अगोचर, जो बुद्धि से परे है ४. खयाल ५. संतुष्ट ६. पारिभाषिक शब्द ७. दर्जे का बहुवचन ८. सबूत ९. गुणों, और कर्मों का १०. आदर्श ११. जिससे कोई संबंध स्थापित किया जा सके १२ वैयक्तिकता १३. रूप उपासक आँखें १४. परेशानियां १५. पहले आ चुका है।

दुनिया में वहदत-उल-वजूद (Pantheism) के अक़ीदे का सबसे क़दीम सरचश्मा हिन्दुस्तान है। ग़ालिबन् यूनान और इस्कंदरिया में भी यहीं से यह अक़ीदा पहुँचा और मज़हबे-अफ़लातून जदीद (Neoplatonism) ने (जिसे ग़लती से अरबों ने अफ़लातून का मज़हब ख़याल किया था) इस पर अपनी इशराक़ी[1] इमारतें उस्तवार[2] कीं। यह अक़ीदा हक़ीक़त के तसव्वुर को हर तरह के तसव्वुरी तशख़्ख़ुसात[3] से मुनज़्ज़ा[4] करके यक कामिल-मुतलक़[5] और बुहत-तसव्वुर क़ायम कर देता है। इस तसव्वुर के साथ सिफ़ात[6] मुतशक्किल नहीं हो सकतीं और अगर होती भी हैं तो तअय्युनात और मज़ाहिर के ऐतबार से। न कि ज़ाते-मुतलक़[7] की हस्ती के ऐतबार से। इस अक़ीदे का रूशनास उसकी ज़ात के बारे में बजुज़[8] इसके कि है और कुछ नहीं कह सकता। यहाँ तक कि इशारा भी नहीं कर सकता। क्योंकि अगर हम अपने इशारात की परछाईं भी उस पर पड़ने देते हैं तो ज़ाते-मुतलक़, मुतलक़ नहीं रहती। तशख़्ख़ुस और हुदूद के ग़ुबार से आलूदा हो जाती है। बाबा फ़ुग़ानी ने दो मिसरों के अंदर सब कुछ कह दिया है:

मुश्किल हिकायते स्त कि हर ज़र्रा ऐने-ऊ स्त
अम्मा नमीतवां कि इशारत ब-ऊ कुनन्द![9]

यही वजह है कि हिन्दुस्तान के उपनिषदों ने नफ़ीये-सिफ़ात[10] की राह इख़्तियार की और तंजीह[11] की। "नेति-नेति" को बहुत दूर तक ले गये। लेकिन फिर देखिये इसी हिन्दुस्तान को अपनी प्यास इस तरह बुझानी पड़ी कि न सिर्फ़ ब्रह्म (ज़ाते-मुतलक़) को ईश्वर (ज़ाते-मुत्तसिफ़ ओ मुशख़्ख़स[12]) की नमूद में देखने लगे बल्कि पत्थर की मूर्तियाँ भी तराश कर सामने रख लीं कि दिल के अटकाव का कोई ठिकाना तो सामने रहे:

करे क्या काबे में जो सिर्रे-बुतख़ाना से आगह है,
यहाँ तो कोई सूरत भी है वां तो अल्लाह ही अल्लाह है!

यहूदियों ने ख़ुदा को एक क़ाहिर ओ जाबिर[13] शहंशाह की सूरत में देखा, और इसराईल के घराने से उसका रिश्ता ऐसा हुआ जैसा एक ग़य्यूर[14] शौहर का अपनी चहेती बीवी के साथ होता है। शौहर अपनी बीवी की सारी ख़तायें

---

१. अफ़लातून की फ़िलसफ़ी २. मजबूत ३. ख़याली शख़्सियत ४. मुक्त ५. पूर्ण ६. गुण ७. पूर्ण ब्रह्म ८. सिवाय ९. मुश्किल बात तो यह है कि हर ज़र्रा उसकी आँख है लेकिन उसकी तरफ़ इशारा नहीं कर सकते। १०. निर्गुणता ११. निर्गुण रूप से की १२. गुण और व्यक्तित्वता १३. सर्वशक्तिमान १४. स्वाभिमानी।

माफ़ कर देगा मगर उसकी बेवफ़ाई कभी माफ़ नहीं करेगा। क्योंकि उसकी ग़ैरत गवारा नहीं करती कि उसकी मुहब्बत के साथ किसी दूसरे की मुहब्बत भी शरीक हो – "इन्नलाहा लायग़फ़िरु अईयूशरिका बिही व यग़फ़िरु मादून ज़ालिका लिमइयशाउ"[1] चुनांचे तौरात के अहकामे-अशरा[2] में एक हुक्म यह था– तू किसी चीज की मूर्ति न बनाइयो, न उसके आगे झुकियो। क्योंकि मैं ख़ुदावंद तेरा ख़ुदा एक ग़य्यूर ख़ुदा हूं। लेकिन फिर ज़माना जूं-जूं बढ़ता गया यह तसव्वुर भी ज्यादा वुसअत और रिक़्क़त[3] पैदा करता गया। यहाँ तक कि यसुअिया (Isaiah) सानी* के ज़माने में उस तसव्वुर की बुनियादें पड़ने लगीं जो आगे चल कर मसीही तसव्वुर की शक्ल इख़्तियार करने वाला था। चुनांचे मसीहियत ने शौहर की जगह बाप‡ को देखा। क्योंकि बाप अपने बच्चों के लिये सरतासर रहम ओ शफ़क़त[4] और यक क़लम अफ़्व[5] व दरगुज़र होता है।

मन बद कुनम ओ तू बद मुकाफ़ात दिही
पस फ़र्क़ मयाने-मन ओ तू चीस्त बुगो ![6]

इस्लाम ने अपने अक़ीदे की बुनियाद सरतासर तंज़ीह[7] पर रक्खी "लयसा

* उन्नीसवीं सदी में बाइबल के नक़्द व तदब्बुर (आलोचन और चिंतन) को जो मस्लक (रास्ता) "इंतक़ादे-आला" (उच्च आलोचना) के नाम से इख़्तियार किया गया था, उसके बाज़ फ़ैसले आज तक तयशुदा समझे जाते हैं। अज़ांजुम्ला यह कि यसइया नबी के नाम से जो सफ़ीहा मौजूद है वो तीन मुख़्तलिफ़ मुसन्निफ़ों ने तीन मुख़्तलिफ़ ज़मानों में मुरत्तिब किया होगा। बाबे-अव्वल से बाब ३९ तक एक मुसन्निफ़ का कलाम है। बाब ४० से बाब ५५ आयत १३ तक दूसरे मुसन्निफ़ का, और इसके बाद का आख़िरी हिस्सा तीसरे का। इन तीनों मुसन्निफ़ों को इम्तियाज़ के लिये असअिया अव्वल, सानी और सालिस (तीसरा) से मौसूम (नामांकित) किया जाता है।

‡ हिन्दू तसव्वुर ने बाप की जगह मां की तमसील इख़्तियार की थी। क्योंकि मां की मुहब्बत बाप की मुहब्बत से भी ज्यादा गहरी और ग़ैर मुतज़लज़ल (न हिलनेवाली) होती है।

१. अल्लाह अपने साथ किसी को शरीक करना माफ़ नहीं करता और इसके सिवा चाहे जो कुछ माफ़ कर दे २. दस हुक्मों में ३. फैलाव और बारीकी ४. प्रेम ५. क्षमा ६. मैं बुरा काम करता हूं और तू उसका बुरा बदला देता है फिर मुझमें और तुझमें फ़र्क़ क्या है बता ७. निर्गुणता।

कमिस्लिहि शैउन[1]" में तस्बीह[2] की ऐसी आम और क़तई नफ़ी[3] कर दी कि हमारे तसव्वुरी तशख़्खुस के लिये कुछ भी नहीं रहा। "ला तदरिकु लिल्लाहि अमसाल[4]" ने तमसीलों के सारे दरवाज़े बंद कर दिये। "ला तुदरिकुहुल अबसार[5]" और "लंतरानी वलाकिन उनज़ुर हुलल जबल[6]" ने इदराके-हक़ीक़त की कोई उम्मीद बाक़ी न छोड़ी :

> ज़बां बिबंद ओ नज़र बाज़ कुन कि मनअ़े-कलीम
> इशारत अज़ अदब आमोज़िये तक़ाज़ाई स्त।[7]

ताहम इंसान के नज़ारये-तसव्वुर[8] के लिये उसे भी सिफ़ात की एक सूरत आराई[9] करनी ही पड़ी, और तंज़ीहे-मुतलक़[10] ने सिफ़ाती तशख़्खुस का जामा पहन लिया "वलिल्लाहिल अस्माउल हुस्न फ़दउहो बिहा[11]" और फिर सिर्फ़ इतने पर मामला नहीं रुका जा बजा मजाज़ात[12] के झरोखे भी खोलने पड़े "बलयदाहु मबसूततान[13]" और "यदुल्लाहि फ़ौक़ अयदिहिम[14]" और "मा रमैता इज़ रमैता व लाकिन्नल्लाहा रमा[15]" और "अरहमान अललअर्शि-स्तवा[16]" और "इन्नरब्बक लबिलमिरसाद[17]" और "कुल्ल यौमिन हुव फ़ी शान"[18]

> हर चंद हो मुशाहिदये-हक़ की गुफ़्तगू
> बनती नहीं है बादा ओ साग़र कहे बग़ैर !

इससे मालूम हुआ कि बुलंदी के एक नस्ब-उल-ऐन की तलब इंसान की फ़ितरत की तलब है और वो बग़ैर किसी ऐसे तसव्वुर के पूरी नहीं हो सकती जो किसी न किसी शक्ल में उसके सामने आये, और सामने जभी आ सकता है

---

१. उसके (ईश्वर) के समान कोई चीज नहीं है २. उपमा ३. मनाही ४. अल्लाह के लिए मिसालें मत दो ५. उसे आंखें नहीं देख सकतीं ६. तू मुझे नहीं देख सकता लेकिन देख पहाड़ की तरफ़ ७. ज़बान बंद कर लो और आंखें खोल लो कि मूसा की यह मनाही अदब सिखाने की तरफ़ इशारा करती है। ८. ख़याली नज़ारा ९. सूरत निकालनी पड़ी १०. पूर्ण निर्गुणवाद ने ११. और अल्लाह के अच्छे-अच्छे नाम हैं उन नामों से उसे पुकारो १२. कल्पित बातें १३. उसके हाथ खुले हुए हैं १४. अल्लाह का हाथ उनके हाथों के ऊपर है १५. और जब तुम मार रहे थे तब तुमने नहीं मारा बल्कि अल्लाह ने मारा १६. खुदा तख़्त पर बैठ गया १७. बिला शुबहा तेरा परवरदिगार तुझे हरदम झांक लगाये ताक रहा है। १८. और हर रोज़ वह एक अलग शान में होता है।

कि उसके मुतलक़ और ग़ैर मुसख्खस[1] चेहरे पर कोई न कोई नक़ाब तशख्खुस[2] की पड़ गयी हो :

आह अज़ां हौसलये-तंग ओ अज़ां हुस्ने-बुलंद
कि दिलमरा गिला अज़ हसरते-दीदारे-तू नेस्त ![3]

ग़ैर सिफ़ाती[4] तसव्वुर को इंसानी दिमाग़ पकड़ नहीं सकता। और तलब उसे ऐसे मतलूब की हुई जो उसकी पकड़ में आ सके। वो एक ऐसा जलवये-महबूबी[5] चाहता है जिसमें उसका दिल अटक सके, जिसके हुस्ने-गुरेज़ा[6] के पीछे वालिहाना[7] दौड़ सके, जिसके दामने-किब्रियाई[8] पकड़ने के लिये अपना दस्ते-अिज्ज़ ओ नियाज़[9] बढ़ा सके, जिसके साथ राज़ ओ नियाज़े-मुहब्बत की रातें बसर कर सके। जो अगरचे ज़्यादा से ज़्यादा बुलंदी पर हो, लेकिन फिर भी उसे हरदम झांक लगाये ताक रहा हो कि—"इन्नरब्बिक लबिलमिरसाद[10]" और "व इज़ासअलक इबादी अन्निफ़इन्नि क़रीब" उजीबुदावत अद्दाइ इज़ा दआनि[11]।

बर पर्दाई ओ बर हमा कस पर्दा मी दरी
बा हरकसी ओ बा तू कसेरा विसाल नेस्त ![12]

ग़ैर सिफ़ाती तसव्वुर महज़ नफ़ी ओ सल्ब[14] होता है। मगर सिफ़ाती तसव्वुर नफ़ी तशब्बुह[15] के साथ एक ईजाबी[16] सूरत भी मुतशक्किल[17] कर देता है। इसीलिये यहाँ सिफ़ात की नक़्शआराइयां नागुज़ीर हुयीं। और यही वजह है कि मुसलमानों में उलमाये-सलफ़[18] और असहाबे-हदीस[19] ने तफ़वीज़[20] का मस्लक[21] इख़्तियार किया, और तावीले सिफ़ात[22] से गुरेज़ां[23] रहे और इसी बिना पर उन्होंने जहमिय्या[24] के इंकारे-सिफ़ात[25] को तअ्तुल[26] से ताबीर किया और

१. निराकार २. आकार, व्यक्तित्व ३. साहस की कमी और उसके हुस्न की बुलंदी के कारण मेरे दिल को तेरे दर्शन की आकांक्षा की शिकायत तक नहीं है। ४. निर्गुण ५. प्रियतम का रूप ६. अदृश्य रूप ७. पागल की तरह ८. महानता का दामन ९. विनय और चाह का हाथ १०. बिला शुबहा तेरा परवरदिगार तुझे हर दम झांक लगाये ताक रहा है ११. अय पैग़ंबर ! जब मेरी निस्बत मेरे बंदे तुझसे दरयाफ़्त करें तो उनसे कह दे—मैं उनसे दूर कब हूं। मैं तो हर पुकारनेवाले की पुकार का जवाब देता हूं १२. तू पर्दे में है और सब पर पर्दा डालता है, तू सबके साथ है और तुझसे किसी का मेल नहीं है १४. सब गुणों से खिंचाव १५. निर्गुणता १६. गुण १७. आरोपित १८. पुराने विद्वान १९. हदीस कहनेवाले २०. सब कुछ मान लेने का २१. रास्ता २२. गुणों की व्याख्या २३. कतराना २४. अहम्र के पंथ का नाम २५. निर्गुणता २६. निरंकारता।

मौतज़ला[1] व मुतकल्लिमीन[2] की तावीलों[3] में भी तातील[4] की बू सूंघने लगे। मुतकल्लिमीन ने असहाबे-हदीस को तशब्बुह और तजस्सुम (Anthropo-morphisn) का इल्ज़ाम दिया था। मगर वो कहते थे तुम्हारे तअत्तुल से तो हमारा नाम-निहाद तशब्बुह ही बेहतर है क्योंकि यहाँ तसव्वुर के लिये एक ठिकाना तो बाक़ी रहता है। तुम्हारी सल्ब ओ नफ़ी की काविशों के बाद तो कुछ भी बाक़ी नहीं रहता!

हिन्दुस्तान के उपनिषदों ने ज़ाते-मुतलक़[5] को ज़ाते-मुत्तसिफ़ में उतारते हुये जिन तनज्ज़ुलात[6] का नक़्शा खींचा है, मुसलमान सूफ़ियों ने इसकी ताबीर "अहदिय्यत" और "वाहदिय्यत" के मरातिब में देखी। "अहदिय्यत" का मर्तबा यकताई महज़ का हुआ, लेकिन "वाहदिय्यत" की जगह अव्वल की हुई। और अव्वलियत का मर्तबा चाहता है कि दूसरा तीसरा चौथा भी हो— "कुन्तु कन्ज़न मख़फ़ीहन व अहबब्तु अनउरिफ़ा फ़ ख़लक़्तुल ख़ल्क़[7]" हदीस क़ुदसी[8] नहीं है मगर जिस किसी का भी क़ौल है, इसमें शक नहीं कि एक बड़े ही गहरे तफ़क्कुर[9] की ख़बर देता है:

बिल कुश्तये-यकताइये-हुस्न स्त वगरना
वर पेशे तू आईना शिकस्तन हुनरे बूद![10]

तर्जुमान-अुल-क़ुरान जिल्द अव्वल में बज़िम्न[11], तफ़सीर सूरये-फ़ातिहा और जिल्द दोम में बज़िम्न तफ़सीर "वलातदरिबु लिल्लाहिल अमसाल"[12] इस मबहस की तरफ़ इशारात किये गये हैं। और मबहस ऐसा है कि अगर फैलाया जाये तो बहुत दूर तक फैल सकता है:—

तलक़ीने-दर्से-अहले-नज़र यक इशारत स्त
कर्दम इशारते ओ मुकर्रर नमीकुनम![13]

इस सिलसिले में एक और मुक़ाम भी नुमायां होता है, और उसकी वुसअत भी हमें दूर-दूर तक पहुँचा देती है। अगर यहां माद्दे[14] के सिवा और

१-२. ये भी पंथों के नाम हैं ३. व्याख्या ४. निरंकारता ५. पूर्ण ब्रह्म ६. उतार का ७. मैं छिपा हुआ खजाना था मैंने चाहा कि मुझे लोग जाने इसलिये मैंने संसार की सृष्टि की ८. मुहम्मद साहब के मुँह से क़ुरान के अलावा निकली हुई बातों को हदीस कहते हैं और जो उन्हीं के शब्दों में हो उसे हदीस क़ुदसी कहते हैं। ९. विचार १०. तेरे सौन्दर्य की अद्वितीयता से दिल घायल है वरना तेरे सामने शीशा तोड़ देना ही ठीक था ११. अंतर्गत १२. ईश्वर के लिए मिसालें मत देना १३ दृष्टि वालों के समझने के लिए एक इशारा है और मैंने इशारा कर दिया है और दुबारा नहीं करता १४. पदार्थ।

कुछ नहीं है तो फिर मर्तबये-इंसानी में उभरने वाली वो क़ुव्वत जिसे हम फ़िक्र ओ इदराक[1] के नाम से पुकारते हैं, क्या है ? किस अंगीठी से यह चिंगारी उठी ? यह क्या है जो हममें यह जौहर पैदा कर देती है कि हम ख़ुद माद्दे की हक़ीक़त में ग़ौर ओ खोज करने लगते हैं और इस पर तरह-तरह के अहकाम[2] लगाते हैं ? यह सच है कि मौजूदात की हर चीज की तरह यह जौहर भी बतदरीज[3] इस दर्जे तक पहुँचा । वो अर्से तक नबातात[4] में सोता रहा, हैवानात में करवट बदलने लगा और फिर इंसानियत के मर्तबे में पहुँच कर जाग उठा । लेकिन सूरते-हाल का यह इल्म हमें इस गुत्थी के सुलझाने में कुछ मदद नहीं देता । यह बीज फ़ौरन बर्ग ओ बार ले आया हो या मुद्दतों के नश्वो इर्तका[5] के बाद इस दर्जे तक पहुँचा हो । बहरहाल मर्तबये-इंसानियत का जौहर व ख़ुलासा है और अपनी नमूद व हक़ीक़त में तमाम मजमए-मौजूदात से अपनी जगह अलग और बालातर रखता है । यही मुकाम है जहाँ पहुँच कर इंसान हैवानियत की पिछली कड़ियों से जुदा हो गया और किसी आयंदा कड़ी तक मुर्तफ़ा[6] होने की इस्तैदाद[7] उसके अंदर सर उठाने लगी । वो ज़मीन की हुक्म-रानी के तख़्त पर बैठ कर जब ऊपर की तरफ़ नज़र उठाता है तो फ़ज़ा[8] के तमाम अजराम[9] उसे इस तरह दिखाई देने लगते हैं जैसे वो भी सिर्फ़ उसी की कारबरारियों के लिये बनाये गये हों । वो उनकी भी पैमाइशें करता है और उनके ख़वास ओ अफ़आल[10] पर भी हुक्म लगाता है । उसे कारख़ानये-क़ुदरत की लाइंतहाइयों के मुक़ाबले में अपनी दरमांदगियों[11] का क़दम-क़दम पर ऐतराफ़[12] करना पड़ता है । लेकिन दरमांदगियों के इस अहसास से उसकी सई व तलब[9] की उमंगें पज़मुर्दा[10] नहीं हो जातीं बल्कि और ज्यादा शिगुफ़्त-गियों[11] के साथ उभरने लगती हैं और उसे और ज्यादा बुलंदियों की तरफ़ उड़ा ले जाना चाहती हैं । सवाल यह है कि फ़िक्र ओ इदराक की यह फ़ज़ाये ला मुतनाही[12] जो इंसान को अपनी आग़ोशे-परवाज़ में लिये हुये उड़ रही है, क्या है ? क्या इसके जवाब में इस क़दर कह देना काफ़ी होगा कि यह महज़ एक अंधी बहरी क़ुव्वत है जो अपने तबई ख़वास और तबई अहवाल ओ जरूफ़ से तरक़्क़ी करती हुई फ़िक्र ओ इदराक का शोलये-जव्वाला बन गई ? जो लोग माद्दियत के दायरे से बाहर देखने के आदी नहीं वो भी इसकी जुर्रत

१. सोच समझ, विवेक २. हुक्म ३. सिलसिलेवार ४. वनस्पति जगत ५ विकास, (evolution) ६. ऊँचा होना ७. योग्यता ८. आकाश ९. ग्रह नक्षत्र १०. गुण कर्म ११. कमजोरियों का १२. स्वीकार ९. प्रयत्न और चाह १०. मुर्झा जाना ११. ताजगी १२. असीम दुनिया ।

बहुत कम कर सके कि इस सवाल का जवाब बिला ताम्मुल अिसबात[1] में दे दें।

मैं अभी उस इंक़लाब की तरफ़ इशारा करना नहीं चाहता जो उन्नीसवीं सदी के आख़िर में रूनुमा होना शुरू हुआ और जिसने बीसवीं सदी के शुरू होते ही क्लासिकल तबिअिय्यात[2] के तमाम बुनियादी मुसल्लिमात[3] यक क़लम मुतज़लज़ल कर दिये। मैं अभी उससे अलग रह कर आम नुक़्तये-निगाह से मसले का मुताला कर रहा हूं।

और फिर ख़ुद सूरते-हाल जिसे हम नश्वो इर्तक़ा (Evolution) से ताबीर करते हैं, क्या है? और क्यों है? क्या वो एक ख़ास रुख़ की तरफ़ ऊँगली उठाये इशारा नहीं कर रही है? हमने सैकड़ों बरस की सुराग़रसानियों के बाद यह हक़ीक़त मालूम की कि तमाम मौजूदाते-हस्ती आज जिस शक्ल ओ नौइयत में पाई जाती हैं, यह बयक दफ़ा ज़हूर में नहीं आ गईं। याने किसी बराहे-रास्त तख़लीक़ी अमल ने इन्हें यकायक यह शक्ल ओ नौइयत नहीं दे दी। बल्कि एक तदरीजी[4] तग़य्युर[5] का आलमगीर क़ानून यहाँ काम करता रहा है और उसकी अताअत[6] व इंक़ियाद[7] में हर चीज़ दर्जा बदर्जा बदलती रहती है। और एक ऐसी आहिस्ता चाल से जिसे हम फ़लकी ऐदाद ओ शुमार की मुद्दतों से भी बमुश्किल अंदाज़े में ला सकते हैं। नीचे से ऊपर की तरफ़ बढ़ती चली आती है—ज़र्रात से लेकर अजरामे-समावी[8] तक सबने इसी क़ानूने-तग़य्युर ओ तहव्वुल के मातहत अपनी मौजूदा शक्ल ओ नौइयत का जामा पहना है। यही नीचे से ऊपर की तरफ़ चढ़ती हुई रफ़्तारे-फ़ितरत है जिसे हम "नश्वो इर्तक़ा" के नाम से ताबीर करते हैं। यानी एक मुअय्यन[9] तैशुदा, हम आहंग[10] और मुनज़्ज़म[11] इर्तक़ाई[12] तक़ाज़ा है जो तमाम कारख़ानये-हस्ती पर छाया हुआ है और उसे किसी ख़ास रुख़ की तरफ़ उठाये और बढ़ाये ले जा रहा है। हर निचली कड़ी बतदरीज अपने से ऊपर की कड़ी का दर्जा पैदा करेगी और हर ऊपर का दर्जा निचले दर्जे की रफ़्तारे-हाल पर एक ख़ास तरह का असर डालते हुये उसे एक ख़ास साँचे में ढालता रहेगा। यह इर्तक़ाई सूरते-हाल ख़ुद तौज़ीह (Self Explanatory) नहीं है। यह अपनी एक तौज़ीह चाहती है। लेकिन कोई माद्दी तौज़ीह हमें मिलती नहीं। सवाल यह है कि क्यों सूरते-हाल ऐसी ही हुई कि यहाँ एक

---

१. स्वीकारात्मक २. पदार्थ विज्ञान ३. सिद्धान्त ४. क्रम बद्ध ५. परिवर्तन ६. आज्ञा पालन ७. क़ैद बंधन ८. आसमान के ग्रह-नक्षत्र ९. निश्चित १०. एक दूसरी से जुड़ी हुई ११. सुव्यवस्थित १२. विकास।

इर्तक़ाई तक़ाज़ा मौजूद हो और वो हर तख़लीक़ी[1] ज़हूर को निचली हालतों से उठाता हुआ बुलंदतर दर्जों की तरफ़ बढ़ाये ले जाये ? क्या फ़ितरते-वजूद में रफ़अत-तलबियों[2] का ऐसा तक़ाज़ा पैदा हुआ कि सिलसिलये-अजसाम की एक मुरत्तब सीढ़ी नीचे से ऊपर तक उठती हुई चली गई, जिसका हर दर्जा अपने मा बाद[3] से ऊपर मगर अपने मा सबक़[4] से नीचे वाक़े हुआ है । क्या यह सूरते-हाल बग़ैर किसी बालाख़ाने की मौजूदगी के बन गई और यहाँ कोई बामे-रफ़अत[5] नहीं जिस तक यह हमें पहुँचाना चाहती हो ?

यारां ख़बर दिहेद कि ईं जलवागाहे कीस्त ![6]

ज़मानये-हाल के अुलमा इल्म-उलहयात में प्रोफ़ेसर लाइड मारगन (Liayd morgan) ने इस मसले का इल्म-उल-हयाती (Biological) नुक़्तये-ख़याल से गहरा मुताला किया है । लेकिन बिलआख़िर उसे भी इसी नतीजे तक पहुँचना पड़ा कि इस सूरते-हाल की कोई माद्दी तौज़ीह नहीं की जा सकती । वो लिखता है कि जो हासिलात (Resultants) यहाँ काम कर रही हैं हम उनकी तौज़ीह इस ऐतबार से तो कर सकते हैं कि उन्हें मौजूदा अहवाल ओ ज़रूफ़ का नतीजा क़रार दें । लेकिन इर्तक़ाई तक़ाज़े का फ़ज़ाई ज़हूर (Emergence) जिस तरह उभरता रहा है, मसलन ज़िंदगी की नमूद ज़हन ओ इदराक की जलवातराज़ी, ज़हनी शख़्सियत और मानवीय इंफ़रादिय्यत[7] का ढलाव — इनकी कोई तौज़ीह बग़ैर इसके नहीं की जा सकती कि एक इलाही क़ुव्वत[8] की कारफ़रमाई यहाँ तसलीम कर ली जाये । हमें यह सूरते-हाल बिल आख़िर मजबूर कर देती है कि फ़ितरते-कायनात में एक तख़लीक़ी असल (Creative Principle) की कारफ़रमाई के ऐतक़ाद से गुरेज़ न करें । एक ऐसी तख़लीक़ी असल जो इस कारख़ानये-अर्ज़ ओ ज़मा[9] में एक लाज़मां (Timeless) हक़ीक़त है ।

हक़ायक़े-हस्ती का जब हम मुताला करते हैं तो एक ख़ास बात फ़ौरन हमारे सामने उभरने लगती है । यहाँ फ़ितरत का हर निज़ाम कुछ इस तरह का वाक़े हुआ है कि जब तक उसे उसकी सतह से बुलंद होकर न देखा जाये उसकी हक़ीक़त बेनक़ाब नहीं हो सकती । याने फ़ितरत के हर नज़्म को देखने के लिये हमें एक ऐसा मुक़ामे-नज़र पैदा करना पड़ता है जो ख़ुद उससे बुलंदतर जगह पर

१. सृष्टि के सर्जन को २. ऊँचे की तरफ़ बढ़ने की चाह का ३. पिछले ४. आनेवाले से ५. उच्च स्थान ६. यारो ख़बर दो कि यह रंगभूमि किसकी है ७. मानसिक अनोखापन ८. ईश्वरीय शक्ति ९. स्थान काल की दुनिया में ।

बाक़े हो। आलमे-तबइय्यात के ग़वामिज़[1] इल्म-उल-हयाती (Biological) आलम में खुलते हैं। इल्म-उल-हयाती ग़वामिज़ नफ़्सयाती (Psychological) आलम में नुमायां होते हैं। नफ़्सयाती ग़वामिज़ के लिये हमें मंतक़ी[2] बहस व तहलील के आलम में आना पड़ता है। लेकिन मंतक़ी बहस ओ तहलील के मुअम्मों[3] को किस मुक़ाम से देखा जाये? इससे ऊपर भी कोई मुक़ामे-नज़र है या नहीं जो हक़ीक़त की किसी आख़िरी मंज़िल तक हमें पहुँचा दे सकता हो?

हमें मानना पड़ता है कि इससे ऊपर भी एक मुक़ामे-नज़र है। लेकिन वो इससे बुलंदतर है कि अक़ली नज़र ओ तालील[4] से उसकी नक़्श आराई की जा सके। वो मावराये महसूसात (Supra sensible) है, अगरचे महसूसात से मआरिज़[5] नहीं। वो एक ऐसी आग है जो देखी नहीं जा सकती, अलबत्ता उसकी गरमी से हाथ ताप लिये जा सकते हैं। व मनलमयज़ुक लम यदरि[6]

तू नज़रबाज़ नई, वर्ना तग़ाफ़ुल निगह स्त
तू ज़बां फ़हम नई, वर्ना ख़मोशी सुख़न स्त![7]

कायनात साकिन[8] नहीं है, मुतहर्रिक[9] है। और एक ख़ास रुख़ पर बनती और सँवरती हुई बढ़ी चली जा रही है। इसका अंदरूनी तक़ाज़ा हर गोशे में तामीर ओ तकमील[10] है। अगर कायनात की इस आलमगीर इर्तक़ाई रफ़्तार की कोई माद्दी तौज़ीह हमें नहीं मिलती तो हम ग़लती पर नहीं हो सकते अगर इस मुअम्मे का हल रूहानी हक़ायक़ में ढूंढ़ना चाहते हैं।

इस मौक़े पर यह हक़ीक़त भी पेशे-नज़र रखनी चाहिये कि माद्दे की नौइयत के बारे में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी ने जो अक़ायद पैदा किये थे वो इस सदी के शुरू होते ही हिलना शुरू हो गये और अब यकसर मुनहदिम[11] हो चुके हैं। अब ठोस माद्दे की जगह मुजर्रद क़ुव्वत[12] ने ले ली है और इलेक्ट्रोन (Electron) के ख़वास ओ अफ़आल ओ सालिमात के ऐदादी व शुमारी इंज़बात के मबाहिस ने मामले को साइंस के दायरे से निकाल कर फिर फ़िलसफ़ा के सहरा में गुम कर दिया है। साइंस को अपनी ख़ारजिय्यत (objectivity) के इल्म व इंज़बात का जो यक़ीन था, वो अब यकसर मुतज़लज़ल हो

---

१. भेद २. न्याय शास्त्र की बहस और हलों की दुनिया में ३. समस्याओं को ४. कारण ५. विरोधी ६. जिसने स्वाद ही नहीं चखा वह क्या जाने ७. तू देखना नहीं जानता वरना उपेक्षा भी एक निगाह है, तू ज़बान का समझनेवाला नहीं है वरना ख़ामोशी भी गुफ़्तगू है ८. स्थिर ९. सचल १०. निर्माण और पूर्णता ११. ढह जाना १२. विशुद्ध शक्ति (Pure force)।

चुका, और इल्म फिर दाख़िली ज़हनिय्यत (Subjectiviy) के उसी ज़हनी और कुल्लियाती मुक़ाम पर वापस लौट रहा है जहां से नशाते-जदीदा[1] के दौर के बाद उसने नई मुसाफ़रत के क़दम उठाये थे। लेकिन अभी यह दास्तान नहीं छेड़ूंगा, क्योंकि बजाये खुद यह एक मुस्तक़िल मबहस है।

यह सच है कि यह राह महज़ इस्तदलाली[2] ज़रियये-इल्म से तै नहीं की जा सकती। यहां की असली रोशनी कश्फ़ ओ मुशाहिदे[3] की रोशनी है। लेकिन अगर हम कश्फ़ ओ मुशाहिदे के आलम की ख़बर नहीं रखनी चाहते, जब भी हक़ीक़त की निशानियां अपने चारों तरफ़ देख सकते हैं, और अगर ग़ौर करें तो खुद हमारी हस्ती ही सरतासर निशाने-राह है। व लक़द अहसन मनकाल[4]

ख़ल्क़े निशाने-दोस्त तलब मी कुनंद ओ बाज़
अज़ दोस्त ग़ाफ़िल अंद ब चंदीं निशां कि हस्त ![5]

अबुलकलाम

१. यूरोपीय नौजागरण २. दलील ३. अंतर्प्रेरणा और आत्मिक ज्ञान ४. जिसने भी कहा है क्या खूब कहा है ५. दुनिया उस दोस्त (ईश्वर) के चिन्हों की तलाश करती है लेकिन जो थोड़े बहुत निशान हैं उनकी तरफ़ ध्यान नहीं देती और अपने दोस्त से ग़ाफ़िल है।

क़िलये-अहमदनगर
५, दिसम्बर, सन् १९४२,

सदीक़े-मुकर्रम

पाँचवें सलीबी[1] हमले की सरगुज़श्त एक फ्रांसीसी मजाहिद Crusader ज़ां द ज्वैन वेल (Jean De Jain Ville) नामी ने बतौर याददाश्त के क़लमबंद की थीं। इसके कई अंग्रेज़ी तर्जुमे शाया हो चुके हैं। ज्यादा मुतदाविल[2] नुस्ख़ा एवरीमेन्स लायब्रेरी का है।

पाँचवां सलीबी हमला सेंट लुइस (Lewis) शाहे-फ्रांस ने बराहे-रास्त[3] मिसर पर किया था। दिमियात (Demietta) का आरज़ी[4] क़ब्ज़ा, क़ाहिरा की तरफ़ अिक़दाम[5], साहिले-नील की लड़ाई, सलीबियों की शिकस्त, ख़ुद सेंट लुइस की गिरफ़्तारी और ज़रे-फ़िदया[6] के मुआहिदे[7] पर रिहाई, तारीख़ के मशहूर वाक़यात हैं। और अरब मुवर्रिख़ों[8] ने इनकी तमाम तफ़सीलात क़लमबंद की हैं। लुइस रिहाई के बाद अक्का (Acre) आया जो चंद दूसरे साहिली[9] मुक़ामात के साथ सलीबियों के क़ब्ज़े में बाक़ी रह गया था, और कई साल तक वहाँ मुक़ीम रहा। ज्वैन वेल ने यह तमाम ज़माना लुइस की हमराही[10] में बसर किया था। मिसर और अक्का के तमाम अहम[11] वाक़यात उसके चश्मदीद[12] वाक़यात हैं।

लुइस सन् १२४८ ई. में फ्रांस से रवाना हुआ। दूसरे साल दिमियात पहुँचा, तीसरे साल अक्का। फिर सन् १२५४ ई. में फ्रांस वापस हुआ। ये सनीन[13] अगर हिजरी सनीन के मुताबिक किये जायें तो तक़रीबन सन् ६४६ हि. और सन् ६५२ हि. होते हैं।

ज्वैन वेल जब लुइस के हमराह फ्रांस से रवाना हुआ तो उसकी उम्र चौबीस बरस की थी। लेकिन यह याददाश्त उसने बहुत अर्से के बाद अपनी ज़िंदगी के आख़िरी सालों में लिखी। याने सन् १३०९ ई. (सन् ७०८ हि.) में जब उसकी उम्र ख़ुद उसकी तसरीह[14] के मुताबिक़ पचासी बरस की हो चुकी थी और सलीबी हमले के वाक़यात पर निस्फ़[15] सदी की मुद्दत गुज़र चुकी थी। इस तरह की कोई तसरीह[16] मौजूद नहीं जिसकी बिना पर ख़्याल किया जा सके कि मिसर और फ़िलस्तीन के क़याम के ज़माने में वो अहम वाक़यात क़लमबंद कर लिया करता था। पस[17] जो कुछ उसने लिखा है वो पचास बरस से

---

१. Crusade २. प्रचलित ३. सीधे ४. अस्थायी ५. आगे बढ़ना ६. सरबहा के एवज में धन ७. वचन ८. इतिहासकार ९. तटीय प्रदेश १०. साथ ११. मुख्य १२. आँखों देखे १३. सन का बहुवचन १४. कथन १५. आधा १६. लिखित आधार १७. इसलिये।

पेशतर के हवादिस[1] की एक ऐसी रवायत[2] है जो उसके हाफ़िज़े ने महफ़ूज़ रख ली थी। बा-ईं[3]-हमा उसके बयानात जहाँ तक वाक़याते-जंग का ताल्लुक़ है आम तौर पर क़ाबिले-वसूक़[4] तसलीम किये गये हैं।

मुसलमानों के दीनी अक़ायद व ऐमाल और अख़लाक़ व आदात की निस्बत उसकी मालूमात अज़-मनए-उस्ता[5] की आम फ़िरंगी मालूमात से चंदां[6] मुख़्तलिफ़ नहीं। ताहम दर्जे का फ़र्क़ ज़रूर है। चूंकि अब योरप और मशरिक़े-उस्ता[7] के बाहमी ताल्लुक़ात पर जो सलीबी लड़ाइयों के साये में नश्वो नुमा पाते रहे थे तक़रीबन डेढ़ सौ बरस का ज़माना गुज़र चुका था और फ़िलस्तीन के नौ-आबाद सलीबी मुजाहिद अब मुसलमानों को ज़्यादा क़रीब होकर देखने लगे थे। इसलिये क़ुदरती तौर पर ज्वैन वेल के ज़हनी तास्सुरात[8] की नौइयत उन तास्सुरात की नौइयत से मुख़्तलिफ़ दिखाई देती है जो इब्तदाई अहद के सलीबियों के रह चुके हैं। मुसलमान काफ़िर हैं, हीदेन (Heathen) हैं, पेनीम (Paynim) हैं, पगान (Pagan) हैं, मसीह के दुश्मन हैं, ताहम कुछ अच्छी बातें भी उनकी निस्बत ख़याल में लाई जा सकती हैं। और उनके तौर-तरीक़े में तमाम बातें बुरी ही नहीं हैं। मिसरी हुकूमत और उसके मुल्की और फ़ौजी निज़ाम के बारे में उसने जो कुछ लिखा है वो सत्तर फ़ी सदी के क़रीब सही है। लेकिन मुसलमानों के दीनी अक़ायद व ऐमाल के बयानात में पच्चीस फ़ी सदी से ज़्यादा सिहत[9] नहीं। पहली मालूमात ग़ालिबन उसकी ज़ाती है, इसलिये सिहत से क़रीबतर हैं। दूसरी मालूमात ज़्यादातर फ़िलस्तीन के कलीसाई हल्क़ों से हासिल की गई हैं इसलिये तास्सुब[10] व नफ़रत पर मबनी[11] हैं। उस अहद की आम फ़ज़ा देखते हुये यह सूरते-हाल चंदां ताज्जुब अंगेज़ नहीं।

एक अर्से के बाद मुझे इस किताब के देखने का यहाँ फिर इत्तिफ़ाक़ हुआ। एक रफ़ीक़े-ज़िंदां ने एवरी मेन्स लायब्रेरी की कुछ किताबें मँगवाई थीं उनमें यह भी आ गई। इस सिलसिले में दो वाक़यात ख़ुसूसियत के साथ क़ाबिले-ग़ौर हैं।

क़यामे-अक्का के ज़माने में लुइस ने एक सफ़ीर सुल्ताने-दमिश्क़ के पास भेजा था जिसके साथ एक शख़्स एवे ला ब्रेतां बतौर मुतरज्जिम के गया था। यह शख़्स मसीही वाइज़ों के एक हल्क़े से ताल्लुक़ रखता था और "मुसलमानों की ज़बान" से वाक़िफ़ था। "मुसलमानों की ज़बान" से मक़सूद यक़ीनन अरबी ज़बान है। ज्वैन वेल इस सफ़ारत[12] का ज़िक्र करते हुये लिखता है:

"जब सफ़ीर[13] अपनी क़यामगाह से सुल्दान (सुल्तान) के महल की तरफ़ जा रहा था तो लाब्रेतां को रास्ते में एक मुसलमान बुढ़िया औरत मिली।

१. घटनाओं की २. कहानी ३. इसके अलावा ४. प्रामाणिक ५. मध्य युग ६. ज़्यादा ७. मध्य पूर्व ८. असर, प्रभाव ९. शुद्धता, सचाई १०. धार्मिक पक्षपात ११. आधारित १२. दूत यात्रा १३. दूत।

उसके दहने हाथ में एक बर्तन आग का था, बायें हाथ में पानी की सुराही थी। लाब्र`तां ने उस औरत से पूछा—"ये चीजें क्यों और कहाँ ले जा रही हो?" औरत ने कहा—"मैं चाहती हूँ इस आग से जन्नत को जला दूं और पानी से जहन्नुम की आग बुझा दूं ताकि फिर दोनों का नामो निशां बाक़ी न रहे।" लाब्र`तां ने कहा—"तुम ऐसा क्यों करना चाहती हो?" उसने जवाब दिया —"इसलिये ताकि किसी इंसान के लिये इसका मौक़ा बाक़ी न रहे कि जन्नत के लालच और जहन्नुम के डर से नेक काम करे। फिर वो जो कुछ करेगा सिर्फ़ ख़ुदा की मुहब्बत के लिये करेगा!"

Memoirs of the Crusades 240.

इस रवायत का एक अजीब पहलू यह है कि यही अमल और यही क़ौल हज़रत राबिआ बसरिय्या से मन्क़ूल[1] है इस वक़्त किताबें यहाँ मौजूद नहीं लेकिन हाफ़िज़े से मदद लेकर कह सकता हूँ कि कुशैरी, अबू तालिब मक्की, फ़रीदुद्दीन अत्तार साहिबे-अरायिस-उल-मजालिस, साहबे-रूह-उल-बयान और शेरानी सबने यह मक़ूला नक़ल किया है और इसे राबिआ-बसरिय्या के फ़ज़ायल[2] मुक़ामात में से क़रार दिया है।

राबिआ बसरिय्या पहले तबक़े की किबारे-सूफ़िया[3] में शुमार की गई हैं। दूसरी सदी हिजरी याने आठवीं सदी मसीही में उनका इंतक़ाल हुआ। उनके हालात में सब लिखते हैं कि एक दिन इस आलम में घर से निकलीं कि एक हाथ में आग का बर्तन था, दूसरे में पानी का कूजा। लोगों ने पूछा कहाँ जा रही हो। जवाब में बिजिन्सही[4] वही बात कही जो लाब्र`तां ने दमिश्क़ की औरत की ज़बानी नक़ल की है। "आग से जन्नत को जला देना चाहती हूँ, पानी से दोज़ख़ की आग बुझा देनी चाहती हूँ। ताकि दोनों ख़त्म हो जायें और फिर लोग ख़ुदा की इबादत सिर्फ़ ख़ुदा के लिये करें, जन्नत और दोज़ख़ के तमा[5] ओ ख़ौफ़ से न करें।" क़ुदरती तौर पर यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि दूसरी सदी हिजरी की राबिआ बसरिय्या का मक़ूला किस तरह सातवीं सदी हिजरी की एक औरत की ज़बान पर तारी हो गया जो दमिश्क़ की सड़क से गुज़र रही थी? यह क्या बात है कि ताबीरे-मुआरिफ़[6] की एक ख़ास तमसील (पार्ट) जो पाँच सौ बरस पहले बसरा के एक कूचे में दिखाई गई थी, बिऐनिहि[7] अब दमिश्क़ की एक शाहराह पर दुहराई जा रही है? क्या यह महज़ अफ़कार ओ अहवाल का तवारुद[8] है या तकरार और नक़्क़ाली है? या फिर रावी[9] की एक अफ़साना तराज़ी[10]?

१. उद्धृत २. उच्च ३. उच्च सूफ़ी ४. ज्यों की त्यों ५. लालच ७. द्रष्टा की उक्ति ७. ज्यों की त्यों ८. एक ही बात दो दिमाग़ों में ज्यों की त्यों आना ६. वक्ता १०. मनगढंत कहानी।

हर तौजीह[१] के लिये क़रायन[२] मौजूद हैं और मामला मुख़्तलिफ़ भेसों में सामने आता है। (१) यह वो ज़माना था जब सलीबी जमायतों की क़ुव्वत फ़िलस्तीन में पाश पाश[३] हो चुकी थी। साहिल की एक छोटी सी बस्ती के सिवा उनके क़ब्ज़े में और कुछ बाक़ी नहीं रहा था और वहाँ भी अमन और चैन की ज़िंदगी बसर नहीं कर सकते थे। रात दिन के लगातार हमलों और मुहासरों[४] से पामाल होते रहते थे। लुइस उनकी अमानत[५] के लिए आया लेकिन वो ख़ुद अमानत का मोहताज हो गया। जंगी क़ुव्वत के इफ़लास[६] से कहीं ज़्यादा उनका इख़लाक़ी इफ़लास उन्हें तबाह कर रहा था। इब्तदाई अहद का मजनूनाना[७] मज़हबी जोश ओ ख़रोश जो तमाम योरप को बहा ले गया था अब ठंडा पड़ चुका था और उसकी जगह ज़ाती ख़ुदग़र्ज़ियाँ और सलीबी हल्क़ाबंदियों की बाहमी रक़ाबतें[८] काम करने लगी थीं। पैदर पै[९] शिकस्तों और नाकामियों से जब हिम्मतें पस्त हुईं तो असल मक़सद की कशिश भी कमज़ोर पड़ गई और बदअमलियों[१०] और हवसरानियों[११] का बाज़ार गर्म हो गया। मज़हबी पेशवाओं[१२] की हालत उमरा और अवाम[१३] से भी बदतर थी। दीनदारी के इख़लास[१४] की जगह रियाकारी[१५] और नुमायश[१६] उनका सरमायये-पेशवाई था। ऐसे अफ़राद[१७] बहुत कम थे जो वाक़ई मुख़लिस[१८] और पाक अमल हों।

जब उस अहद के मुसलमानों की ज़िंदगी से इस सूरते-हाल का मुक़ाबला किया जाता था तो मसीही ज़िंदगी की मज़हबी और अख़लाक़ी पस्ती और ज़्यादा नुमायाँ होने लगती थी। मुसलमान अब सलीबियों के हमसाये में थे और इल्तवाये-जंग[१९] के बड़े बड़े वक़्फ़ों[२०] ने बाहमी मेल-जोल के दरवाज़े दोनों पर खोल दिये थे। सलीबियों में जो लोग पढ़े लिखे थे उनमें से बाज़ ने शामी ईसाइयों की मदद से मुसलमानों की ज़बान भी सीख ली थी और उनके मज़हबी और अख़लाक़ी अफ़कार ओ अक़ायद से वाक़फ़ियत पैदा करने लगे थे। कलीसाई वाइज़ों[२१] के जो हल्क़े यहाँ काम कर रहे थे उनमें भी बाज़ मुतजस्सिस[२२] तबीयतें ऐसी पैदा हो गई थीं जो मुसलमान आलिमों और सूफ़ियों से मिलतीं और दीनी और अख़लाक़ी मसायल पर मज़ाकिरे[२३] करतीं। उस

१. व्याख्या २. अनुमान ३. खंड खंड ४. सेना का घेरा ५. मदद ६. कमी ७. पागलों का सा ८. शत्रुतायें ९. लगातार १०. दुराचार ११. लोभ, लालच १२. मुखिया १३. सर्व साधारण लोग १४. सच्चा प्रेम १५. ढोंग १६. दिखावा १७. फ़र्द का बहुवचन, व्यक्ति १८. सच्चे प्रेमी १९. युद्ध स्थगन २०. बीच का वक़्त २१. धर्मोपदेशक २२. खोजी, अन्वेषक २३. विचार विनिमय।

ग्रहद के मुतअद्दद[1] आलिमों और सूफ़ियों के हालात में ऐसी तसरीहात मिलती हैं कि सलीबी क़िस्सीस[2] और रुहबान[3] उनके पास आये और बाहम दिगर सवाल ग्रो जवाब हुए। बाज़ मुसलमान उल्मा जो सलीबियों के हाथ गिरफ़्तार हो गये थे, अर्से तक उनमें रहे और उनके मज़हबी पेशवाओं से मज़हबी मबाहिसे किये। शेख़ सादी शीराज़ी को इसी अहद में सलीबियों ने गिरफ़्तार कर लिया था और उन्हें अर्से तक तराब्लिस में गिरफ़्तारी के दिन काटने पड़े थे।

इस सूरते-हाल का लाज़मी नतीजा यह था कि सलीबियों में जो लोग मुख़लिस और असर पिज़ीर तबीयतें रखते थे वो अपने गिरोह की हालत का मुसलमानों की हालत से मुक़ाबला करते, वो मुसलमानों का मज़हबी और अख़लाक़ी तफ़व्वुक़[4] दिखाकर ईसाइयों को ग़ैरत[5] दिलाते कि अपनी नफ़्स परस्तियों[6] और बदअमलियों[7] से बाज़ आयें और मुसलमानों की दीनदाराना[8] ज़िंदगी से इबरत[9] पकड़ें। चुनांचे ख़ुद ज्वैन वेल की सरगुज़श्त में जा बजा इस ज़हनी इंफ़िआल[10] की झलक उभरती रहती है। मुतअद्दद मुकाम ऐसे मिलते हैं जहां वो मुसलमानों की ज़बानी इस तरह के अक़वाल[11] नक़ल करता है जिससे ईसाइयों के लिये इबरत और तनब्बुह[12] का पहलू निकलता है। इसी दमिश्क़ की सफ़ारिशात के सिलसिले में उसने जॉन दी आरमीनियन (John the Armenian) के सफ़रे-दमिश्क़ का एक वाक़या नक़ल किया है। यह शख़्स दमिश्क़ इसलिये गया था कि कमानें बनाने के लिए सींग और सरेश ख़रीद करे। वो कहता है कि मुझे दमिश्क़ में एक उम्र रसीदा मुसलमान मिला जिसने मेरी वज़ा क़ता[13] देखकर पूछा: "क्या तुम मसीही हो?" मैंने कहा—हां। मुसलमान शेख़ ने कहा: "तुम मसीही आपस में एक दूसरे से अब नफ़रत करने लगे हो इसीलिये ज़लील[14] ओ ख़्वार हो रहे हो। एक ज़माना वो था जब मैंने यरूशलम के सलीबी बादशाह बाल्डविन (Baldwin) को देखा था। वो कोढ़ी था और उसके साथ मुसल्लह आदमी सिर्फ़ तीन सौ थे। फिर भी उसने अपने जोश ओ हिम्मत से सालादीन (सलाह उद्दीन) को परेशान कर दिया था। लेकिन अब तुम अपने गुनाहों की बदौलत इतने गिर चुके हो कि हम जंगली जानवरों की तरह तुम्हें रात दिन शिकार करते रहते हैं।"

पस मुमकिन है कि जाबे'ताँ ऐसे ही लोगों में से हों जिन्हें मुसलमान सूफ़ियों के ऐमाल ओ अक़वाल से मकनूना[15] वाक़फ़ियत हासिल हो गई हो और

---

१. कई २. पादरी ३. राहिब, ईसाई साधु सन्यासी ४. विशेषता, उच्चता ५. स्वाभिमान ६. स्वार्थपरता ७. दुराचार ८. धार्मिक ९. शिक्षा १०. पश्चाताप ११. क़ौल का बहुवचन अक़वाल, उक्ति १२. आगाही, चेतावनी १३. रंग ढंग १४. पतित १५. छिपी सी।

वो वक़्त के हर मामले को ईसाइयों की इबरत पिज़ीरी के लिये काम में लाना चाहता हो। लाव्रेतां की निस्बत हमें बताया गया है कि मसीही वाइज़ों के हल्क़े से वाबस्तगी[1] रखता था और अरबी ज़बान से वाक़िफ़ था। कुछ बईद[2] नहीं कि उसे उन ख़यालात से वाक़फ़ियत का मौक़ा मिला हो जो उस अहद के तालीम याफ़्ता मुसलमानों में आम तौर पर पाये जाते थे। चूंकि राबिआ-बसरिय्या का यह मक़ूला आम तौर पर मशहूर था और मुसलमानों के मेलजोल से उसके इल्म में आ चुका था इसलिये सफ़रे-दमिश्क़ के मौक़े से फ़ायदा उठाकर उसने एक इबरत अंगेज़ कहानी गढ़ ली। मक़सूद यह था कि ईसाइयों को दीन के इख़लासे-अमल[3] की तरग़ीब[4] दिलाई जाये और दिखाया जाये कि मुसलमानों में एक बुढ़िया औरत के इख़लासे-अमल का जो दर्जा है, वो उस तक भी नहीं पहुँच सकते।

यह भी मुमकिन है कि ख़ुद ज्वैनवेल के इल्म में यह मक़ूला आया हो और उसने लाव्रेतां की तरफ़ मंसूब[5] करके इसे दमिश्क़ के एक बरवक़्त वाक़ये की शक्ल दे दी हो।

हमें मालूम है कि उन्नीसवीं सदी के नक़्क़ादों[6] ने ज्वैनवेल को सलीबी अहद का एक सिक़ह[7] रावी[8] क़रार दिया है। इसमें भी शक नहीं कि वो बज़ाहिर एक दीनदार और मुख़लिस मसीही था, जैसा कि उसकी तहरीर से जाबजा मुतरश्शह[9] होता है। ताहम यह ज़रूरी नहीं कि एक दीनदार रावी में दीनी और अख़लाक़ी अग़राज़[10] से मुफ़ीद मक़सद रवायतें गढ़ने की इस्तैदाद[11] न रही हो। फ़ने-रवायत की गहराइयों का कुछ अजीब हाल है। नेक से नेक इंसान भी बाज़ औक़ात जाल ओ सनाअत[12] के तक़ाज़ों से अपनी निगरानी नहीं कर सकते। वो इस धोके में पड़ जाते हैं कि अगर किसी नेक मक़सद के लिये एक मसलहत आमेज़ जाली रवायत गढ़ ली जाये तो कोई बुराई की बात नहीं।

'मज़हब के इब्तदाई अहदों में जिन लोगों ने हवारियों के नाम से तरह तरह के नविश्ते[13] गढ़े थे और जिन्हें आगे चल कर कलीसा ने ग़ैर मारूफ़ ओ मदफ़ून (Apocrypha) नविश्तों में शुमार किया था वो यक़ीनन बड़े ही दीनदार और मुक़द्दस आदमी थे। ताहम यह दीनदारी उन्हें इस बात से न रोक सकी कि हवारियों के नाम से जाली नविश्ते तैयार कर लें।

तारीख़े-इस्लाम की इब्तदाई सदियों में जिन लोगों ने बेशुमार झूठी

---

१. सम्बंध, लगाव २. दूर ३. आचरण की सचाई और शुद्धता ४. प्रेरणा ५. जोड़ कर ६. आलोचकों ने ७. विश्वस्त ८. श्रुतिकार, सुनी हुई बात कहने वाला ९. प्रगट होता है १०. ग़रज़ का बहुवचन ११. जानकारी १२. गढ़ंत १३. लेख।

हृदीसें बनाईं उनमें एक गिरोह् दीनदार वाइज़ों और मुक़द्दस ज़ाहिदों का भी था। वो ख़याल करते थे कि लोगों में दीनदारी और नेक अमली का शौक़ पैदा करने के लिये झूठी हृदीसें गढ़ कर सुनाना कोई बुराई की बात नहीं। चुनांचे इमाम अहमद बिन हंबल को कहना पड़ा कि हृदीस के वाजिओं[1] में सबसे ज्यादा ख़तरनाक गिरोह् ऐसे ही लोगों का है।

इस सिलसिले में यह बात भी पेशे-नज़र रखनी चाहिये कि यह ज़माना यानी सातवीं सदी हिजरी का ज़माना सूफ़ियाना अफ़कार ओ ऐमाल के शुयूअ[2] ओ अहाते का ज़माना था। तमाम आलम इस्लामी ख़ुसूसन बिलादे[3] मिस्र ओ शाम में वक़्त की मज़हबी ज़िंदगी का आम रुझान तसव्वुफ़ और तसव्वुफ़ आमेज़ ख़यालात की तरफ़ जा रहा था। हर जगह कसरत के साथ ख़ानक़ाहें[4] बन गई थीं। और अवाम और उमरा दोनों की अक़ादत मंदियाँ[5] उन्हें हासिल थीं। तसव्वुफ़ की अकसर मुतदावल[6] मुसन्निफ़ात[7] तक़रीबन उसी सदी और उसके बाद की सदी में मुदव्वन[8] हुईं। हाफ़िज़ ज़हबी जिन्होंने इस ज़माने में साठ सत्तर बरस बाद अपनी मशहूर तारीख़ लिक्खी है, लिखते हैं कि इस अहद के तमाम मुलूक और उमराये-इस्लाम सूफ़ियों के ज़ेरे-असर थे। मक़रेज़ी ने तारीख़े-मिस्र में जिन ख़ानक़ाहों का हाल लिखा है इनकी बड़ी तादाद तक़रीबन इसी अहद की पैदावार है। ऐसी हालत में यह कोई ताज्जुबअंगेज़ बात नहीं कि जिन सलीबियों को मुसलमानों के ख़यालात से वाक़फ़ियत हासिल करने का मौक़ा मिला हो वो मुसलमान सूफ़ियों के अक़वाल पर मुत्तला हो गये हों। क्योंकि वक़्त का आम रंग यही था।

(२) यह भी मुमकिन है कि लाब्रेतां ऐसे लोगों में से हो जिनमें अफ़साना सराई[10] और हिकायतसाज़ी[11] का एक क़ुदरती तक़ाज़ा पैदा हो जाता है। ऐसे लोग बग़ैर किसी मक़सद के भी महज़ सामईन[12] का ज़ौक़[13] ओ इस्तैजाब[14] हासिल करने के लिये फ़र्ज़ी वाक़यात गढ़ लिया करते हैं। दुनिया में फ़न्ने-रवायत की आधी ग़लत बयानियाँ रावियों के इसी जज़्बये-दास्तांसराई[15] से पैदा हुईं। मुसलमानों में वअ्आज़[16] ओ कस्सास[17] का गिरोह् यानी वाइज़ों और क़िस्सागोयों का गिरोह् महज़ सामईन के इस्तैजाब ओ तवज्जो की तहरीक के लिये सैकड़ों रवायतें बरजस्ता[18] गढ़ लिया करता था। और फिर

१. बनाने या सुनाने वाले २. प्रगट होने का ३. मिस्र और शाम के मुल्क ४. धार्मिक मठ ५. श्रद्धा ६. प्रचलित ७. रचनायें ८. संग्रहीत ९. वाक़िफ़, अभिज्ञ १०. कहानी कहना ११. कहानी गढ़ना १२. श्रोता १३. रुचि १४. ताज्जुब १५. कहानी कहने की भावना १६. धर्मोपदेशक १७. क़िस्सा कहने वाले १८. तत्काल

वही रवायतें क़ैदे-किताबत[1] में आकर एक तरह के नीम तारीख़ी[2] मवाद की नौइयत पैदा कर लेती थीं। मुल्ला मुईन वाइज़ काशिफ़ी वग़ैरह की मुसन्निफ़ात ऐसे क़िस्सों से भरी हुई है।

(३) यह भी मुमकिन है कि वाक़या सही हो, और उस अहद में एक ऐसी सूफ़ी औरत मौजूद हो जिसने राबिआ-बसरिय्या वाली बात बतौर नक़ल ओ इत्तिबा[3] के या वाक़ई अपने इस्तग़िराक़े[4]-हाल की बिना पर दुहरा दी हो।

अफ़कार ओ अहवाल के अशबाह[5] ओ अमसाल[6] हमेशा मुख़्तलिफ़ वक़्तों और मुख़्तलिफ़ शख़्सीयतों में सर उठाते रहते हैं। और फ़िक्र ओ नज़र के मैदान से कहीं ज़्यादा अहवाल ओ वारदात[7] का मैदान अपनी यकरंगियां और हम आहंगियां[8] रखता है। बहुत मुमकिन है कि सातवीं सदी की एक साहबे-हाल[9] औरत की ज़बान से भी इख़लासे-अमल[10] और इश्क़े-इलाही की वही ताबीर निकल गई हो जो दूसरी सदी की राबिआ-बसरिय्या की ज़बान से निकली थी। अफ़सोस है कि यहां किताबें मौजूद नहीं। वरना मुमकिन था कि इस अहद के सूफ़ियाये-दमिश्क़ के हालात में कोई सुराग़ मिल जाता। सातवीं सदी का दमिश्क़ तसव्वुफ़ ओ असहाबे-तसव्वुफ़[11] का दमिश्क़ था।

यह याद रहे कि तज़क़िरों में एक राबिआ शामिया का भी हाल मिलता है। अगर मेरा हाफ़िज़ा ग़लती नहीं करता तो जामी ने भी नफ़हात के आख़िर में इनका तर्जुमा लिखा है। लेकिन इनका अहद उससे बहुत पेश्तर का है। उस अहद के शाम में इनकी मौजूदगी तसव्वुर में नहीं लाई जा सकती।

(४) आख़िरी इमकानी[12] सूरत जो सामने आती है वो यह है कि उस अहद में कोई नुमायश पसंद औरत थी जो बतौर नक़्क़ाली के सूफ़ियों का पार्ट दिखाया करती थी, और वो लाअ़तां से दो चार हो गई। या यह सुन कर कि अक्का की मसीही सफ़ारत आ रही है, क़सदन[13] उसकी राह में आ गई। मगर यह सबसे ज़्यादा बईद और दूर अज़ क़रायन[14] सूरत है जो ज़हन में आ सकती है।

ज्वैन वेल ने एक दूसरा वाक़या "दि ओल्ड मैन आफ़ दि माउण्टैन" की सफ़ारत का नक़ल किया है। याने कोहिस्ताने-अलमूत के "शेख़ अलजिबाल" की सफ़ारत का। जैसा कि आपको मालूम है "शेख़ अलजिबाल" के लक़ब से पहले हसन बिन सब्बाह मुलक़्क़ब हुआ था। फिर उसका हर जा-

---

१. लिपि बद्ध २. अर्ध-ऐतिहासिक ३. पैरवी करने के ४. तल्लीनता ५. सूरतें ६. मिसालें ७. घटनाओं का ८. समानता ९. वेदांती १०. कर्म की सचाई ११. तसव्वुफ़ वाले १२. विश्वासप्रद १३. जानबूझ कर १४. परिस्थितियों से दूर।

नशीन इसी लक़ब से पुकारा जाने लगा । फ़िर्क़ये-बातिनिया[1] की दावत का यह अजीब ओ ग़रीब निज़ाम तारीख़े-आलम के ग़रायिबे-हवादिस[2] में से है। यह बग़ैर किसी बड़ी फ़ौजी ताक़त के तक़रीबन डेढ़ सौ बरस तक क़ायम रहा और मग़रिबी एशिया की तमाम ताक़तों को इसकी हौलनाकी के आगे झुकना पड़ा। उसने यह इक़्तिदार[3] फ़ौज और ममलिकत के ज़रिये हासिल नहीं किया था। बल्कि सिर्फ़ जांफ़रोश फ़िदाइयों[4] के बेपनाह क़ातिलाना हमले थे जिन्होंने उसे एक नाक़ाबिले-तसख़ीर[5] ताक़त की हैसियत दे दी थी। वक़्त का कोई बादशाह, कोई वज़ीर, कोई अमीर, कोई सरबरआवुर्दा[6] इंसान ऐसा न था जिसके पास उसका पुर असरार[7] ख़ंजर न पहुँच जाता हो। उस ख़ंजर का पहुँचना इस बात की अलामत[8] थी कि अगर शैख़ अलजिबाल की फ़रमाइश की तामील नहीं की जायेगी तो बिला ताम्मुल[9] क़त्ल कर दिये जाओगे। ये फ़िदाई तमाम शहरों में फैले हुये थे। वो साये की तरह पीछा करते और आसेब[10] की तरह महफ़ूज़ से महफ़ूज़ गोशों में पहुँच जाते।

सलीबी जंग आज़माओं का भी उनसे साबिक़ा पड़ा। कई टेम्पलर (Templar) और हास्पिटलर (Hospitaller) फ़िदाइयों के ख़ंजरों का निशान बने और बिल आख़िर मजबूर हो गये कि शैख़ उलजिबाल की फ़रमाइशों की तामील करें। यरूशलम (बैतउल-मुक़द्दस) जब सलीबियों ने फ़तह किया था और बाल्डविन तख़्त नशीन हुआ था तो उसे भी एक सालाना रक़म बतौर नज़र के अत्तमूत भेजनी पड़ी थी। फ्रेडरिक सानी[11] जब सन् १२२६ ई० में सुल्ताने मिस्र की इजाज़त लेकर यरूशलम की ज़ियारत[12] के लिये आया तो उसने भी अपना एक सफ़ीर गरांक़दर[13] तोहफ़ों के साथ शैख़ उलजिबाल के पास भेजा था। योरप में क़िलये-अत्तमूत के अजायब की हिकायतें इन्हीं सलीबियों के ज़रिये फैलीं जो बाद की मुसन्निफ़ात में हमें तरह तरह के नामों से मिलती हैं। उन्नीसवीं सदी के बाज़ अफ़सानानिगारों ने इसी मवाद[14] से अपने अफ़सानों की नक़्शआराइयां कीं, और बाज़ इस धोके में पड़ गये कि शैख़ उलजिबाल से मक़सूद कोहिस्ताने-शाम का कोई पुर असरार शैख़ था जिसका सदर मुक़ाम लबनान था!

ज्वैन वेल लिखता है:

"अक्का में पादशाह (लुइस) के पास कोहिस्तान के "ओल्ड मेन" के एलची आये। एक अमीर उम्दा लिबास में मलबूस[15] आगे था, और एक ख़ुश-पोश नौजवान उसके पीछे। नौजवान की मुट्ठी में तीन छुरियां थीं जिनके फल

१. गुप्त संस्था २. विचित्र घटना ३. ताक़त, शक्ति ४. जान देने वाले ५. अनउपेक्षणीय ६. प्रतिष्ठित ७. रहस्यभरा ८. निशानी ९. बेझिझक १०. भूत ११. द्वितीय १२. यात्रा १३. बहुमूल्य १४. सामग्री १५. पहने थे।

एक दूसरे के दस्ते में पैवस्त[1] थे। ये छुरियाँ इस ग़रज़ से थीं कि अगर पादशाह अमीर की पेशकर्दा तजवीज़ मंज़ूर न करे तो इन्हें बतौर मुक़ाबले की अलामत के पेश कर दिया जाये। नौजवान के पीछे एक दूसरा नौजवान था। उसके बाज़ू पर एक चादर लिपटी हुई थी। यह इस ग़रज़ से थी कि अगर बादशाह सफ़ारत का मुतालबा[2] मंज़ूर करने से इंकार कर दे तो यह चादर उसके कफ़न के लिये पेश कर दी जाये। (याने उसे मुतनब्बा[3] कर दिया जाये कि अब उसकी मौत नागुज़ीर[4] है)"

"अमीर ने बादशाह से कहा — मेरे आक़ा[5] ने मुझे इसलिये भेजा है कि मैं आप से पूछूं, आप उन्हें जानते हैं या नहीं? बादशाह ने कहा मैंने उनका ज़िक्र सुना है। अमीर ने कहा — फिर यह क्या बात है कि आपने इस वक़्त तक उन्हें अपने ख़ज़ाने के बेहतरीन तोहफ़े नहीं भेजे, जिस तरह जरमनी के शहंशाह हुंगरी के पादशाह, "बाबिल" के सुल्दान (सुल्तान) और दूसरे सलातीन उन्हें साल बसाल भेजते रहते हैं? इन तमाम पादशाहों को अच्छी तरह मालूम है कि उनकी ज़िंदगियाँ मेरे आक़ा की मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ हैं। वो जब चाहे उनकी ज़िंदगियों का ख़ात्मा करा दे सकता है।"

इस मकालमे[6] में शाहंशाहे-जरमनी और शाहे-हुंगरी के साल बसाल तहायिफ़[7] ओ नुज़ूर[8] का हवाला दिया गया है। इससे मालूम होता है कि उन्होंने सिर्फ़ एक ही मर्तबा अपने ज़मानये-वरूदे-फिलस्तीन[9] में तोहफ़े नहीं भेजे थे बल्कि हर साल भेजते रहे थे। "सुल्दाने-बाबिल" से मक़सूद सुल्ताने-मिस्र है। क्योंकि सलीबी ज़माने के फ़िरंगी आम तौर पर क़ाहरा को "बाबिल" के नाम से पुकारते थे और ख़याल करते थे कि जिस बाबिल का ज़िक्र कुतुबे-मुक़द्दसा[10] में आया है, वो यही शहर है। चुनांचे इस दौर के तमाम रज़्मिया[11] नज़्मों में बार-बार "बाबिल" का नाम आता है। एक सलीबी नाइट का सबसे बड़ा कारनामा यह समझा जाता था कि वो काफ़िरों को रगेदता हुआ ऐसे मुक़ाम तक चला गया जहाँ से "बाबिल" के सर बफ़लक[12] मनारे साफ़ दिखाई देते थे।

इसके बाद ज्वैन वेल लिखता है कि उस ज़माने में शेख़ उलजिबाल टम्पल और हास्पिटल को एक सालाना रक़म बतौर ख़िराज[13] के दिया करता था। क्योंकि टम्पलर और हास्पिटलर उसके क़ातिलाना हमलों से बिल्कुल निडर थे और वो उन्हें कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सकता था। शेख़ उलजिबाल के सफ़ीर

---

१. घुसे हुये २. तलब ३. सूचित ४. अटल ५. मालिक ६. उक्ति ७. तोहफ़े का बहुवचन ८. नज़र का बहुवचन ९. फ़िलस्तीन में आने के ज़माने में १०. पवित्र किताबें, बाइबल वग़ैरह ११. वीर रस प्रधान १२. गगनचुंबी १३. कर।

ने कहा — "अगर पादशाह मेरे आक़ा की फ़रमाइश की तामील नहीं करनी चाहता तो फिर यही करे कि जो ख़िराज टम्पल को अदा किया जाता है, उससे मेरे आक़ा को बरी मुज़िम्मा[1] करा दे।" पादशाह ने यह पूरा मामला टम्पलर्स के हवाले कर दिया। टम्पलर्स ने दूसरे दिन सफ़ीर को बुलाया और कहा — "तुम्हारे आक़ा ने यह बड़ी ग़लती की कि इस तरह का गुस्ताख़ाना पैग़ाम पादशाहे-फ़्रांस को भेजा। अगर पादशाह के एहतराम[2] से हम मजबूर न होते जिसकी हिफ़ाज़त तुम्हें बहैसियत सफ़ीर के हासिल है तो हम तुम्हें पकड़ कर समंदर की मौजों के हवाले कर देते। बहर हाल अब हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि यहाँ से फ़ौरन रुख़सत हो जाओ और फिर पंद्रह दिन के अंदर अलमूत से वापस आओ। लेकिन इस तरह वापस आओ कि हमारे पादशाह के नाम एक दोस्ताना ख़त और क़ीमती तहायिफ़ तुम्हारे साथ हों। इस सूरत में पादशाह तुम्हारे आक़ा से ख़ुशनूद[3] हो जायेगा और हमेशा के लिये उसकी दोस्ती तुम्हें हासिल हो जायेगी।" चुनांचे सफ़ीर इस हुक्म की तामील में फ़ौरन रुख़सत हो गये और ठीक पंद्रह दिन के अंदर शैख़ का दोस्ताना ख़त और क़ीमती तहायिफ़ लेकर वापस हुये।

ज्वैन वेल की रवायत का यह हिस्सा महल्ले-नज़र[4] है, और अरब मुवर्रिख़ों की तसरीहात[5] इसका साथ नहीं देतीं। हमें मालूम है कि सलीबी जमायतें अपने उरूज[6] ओ इक़्तिदार[7] के ज़माने में मजबूर हुई थीं कि अपनी जानों की सलामती के लिये शैख़ उलजिबाल को नज़राने भेजती रहें। हत्ता कि फ़्रेडरिक सानी ने भी ज़रूरी समझा था कि इस तरह की रस्म ओ राह[8] क़ायम रखे। फिर यह बात किसी तरह समझ में नहीं आ सकती कि सन् १६५१ ई. में जब कि सलीबियों की तमाम ताक़त का ख़ात्मा हो चुका था, और फ़िलस्तीन के चंद साहिली मुक़ामात में एक महसूर[9] ओ मक़्हूर[10] गिरोह की मायूस[11] ज़िंदगी बसर कर रहे थे क्यों अचानक सूरते-हाल मुन्क़लिब हो जाये और शैख़ उलजिबाल टम्पलरों से ख़िराज लेने की जगह ख़िराज देने पर मजबूर हो जाये? इतना ही नहीं बल्कि उन तबाहे-हाल टम्पलरों से इस दर्जे ख़ौफ़ज़दा हो कि उनके हाकिमाना अहकाम की बिला चूं ओ चरा तामील कर दे?

जो बात क़रीने-क़यास मालूम होती है, वो यह कि टम्पलरों और हास्पिटलरों के ताल्लुक़ात शैख़ उलजिबाल से क़दीमी थे और इस वाबस्तगी की वजह से हर तरह की साज़-बाज़ उसके कारिंदों के साथ करते रहते थे। शैख़ उलजि-

१. मुक्त २. सम्मान ३. प्रसन्न ४. शंकास्पद ५. व्याख्या
६. उत्कर्ष ७. महानता ८. संबंध ९. घिरे हुये १०. संकटग्रस्त
११. निराश।

बाल ने जब लुइस की आमद का हाल सुना और यह भी सुना कि उसने एक गरांक़दर फ़िदया देकर सुल्ताने-मिस्र की क़ैद से रिहाई हासिल की है, तो हस्बे-मामूल उसे मरऊब[1] करना चाहा और अपने सफ़ीर क़ातिलाना हमलों के मरमूज़[2] पयामों के साथ भेजे। लुइस को मालूम हो चुका था कि टम्पलरों से शैख़ के पुराने ताल्लुक़ात हैं। उसने मामला उनके सुपुर्द कर दिया और उन्होंने बीच में पड़कर दोनों के दरम्यान दोस्ताना इलाक़ा क़ायम करा दिया। फिर तरफ़ैन[3] से तोहफ़ा तहायिफ़ एक दूसरे को भेजे गये और दोस्ताना ख़त ओ किताबत जारी हो गई। अरब मुवर्रिख़ों की तसरीहात से भी सूरते-हाल का ऐसा ही नक़्शा सामने आता है। वो लिखते हैं कि शैख़ उलजिबाल और सलीबियों के बाहमी ताल्लुक़ात इस दर्जे बढ़े हुए थे कि सलीबियों ने कई बार उसके फ़िदाइयों के ज़रिये बाज़ सलातीने-इस्लाम को क़त्ल कराना चाहा था।

लेकिन फिर ज्वैन वेल के बयान की क्या तौजीह की जाये?

मामला दो हालतों से ख़ाली नहीं। मुमकिन है कि टम्पलरों ने हक़ीक़ते-हाल मख़फ़ी रखी हो और शैख़ उलजिबाल के तर्ज़े-अमल की तबदीली को अपने फ़र्ज़ी इक़्तिदार[4] ओ तहक्कुम[5] की तरफ़ मंसूब कर दिया हो। इसलिये ज्वैन वेल पर असलियत न खुल सकी और जो कुछ सुना था, याददाश्त में लिख दिया। फिर मानना पड़ेगा कि ख़ुद ज्वैन वेल की दीनी और क़ौमी असबिय्यत[6] बयाने-हक़ीक़त में हायल हो गई। और उसने सलीबियों का ग़ैर मामूली तफ़व्वुक़[7] और इक़्तिदार दिखाने के लिये असल वाक़े को एक क़लम उलट दिया। ज्वैन वेल ने सलीबियों की शिकस्तों की सर गुज़श्त जिस बेलाग[8] सफ़ाई के साथ क़लम बंद की है उसे पेशे-नज़र रखते हुये ग़ालिबन क़रीने-सवाब[9] पहली ही सूरत होगी।

इस रवायत की कमज़ोरी इस बात से भी निकलती है कि टम्पलरों की निस्बत बयान किया गया है कि उन्होंने सफ़ीरों से कहा — पंद्रह दिन के अंदर शैख़ का जवाब लेकर वापस हो। यानी सात दिन जाने में सर्फ़ करो, सात दिन वापस आने में। यह ज़ाहिर है कि उस ज़माने में अक्का और अलमूत की बाहमी मसाफ़त[10] सात दिन के अंदर तै नहीं की जा सकती थी। मुस्तौफ़ी ने नुज़्हतुलक़ुलूब में उस अहद की मंज़िलों का नक़्शा खींचा है। उससे हमें मालूम हो चुका है कि शुमाली ईरान के क़ाफ़ले बैतुलमुक़द्दस तक की मसाफ़त दो माह से कम में तै नहीं कर सकते थे और अलमूत तक पहुँचने के लिए तो

१. रौब डालना २. सांकेतिक ३. दोनों तरफ से ४. झूठी महानता ५. पराक्रम प्रदर्शन ६. धार्मिक पक्षपात ७. उच्चता ८. निष्पक्ष ९. सत्य के निकट १०. दूरी।

ईरान से भी आगे की मज़ीद[1] मसाफ़त तै करनी पड़ती होगी। हाँ बरीद यानी घोड़ों की डाक के ज़रिये कम मुद्दत में आमद ओ रफ़्त मुमकिन होगी। लेकिन सफ़ीरों का बरीद के ज़रिये सफ़र करना मुस्तबअद[2] मालूम होता है।

ज़्वैन वेल लिखता है कि शैख़ उलजिबाल ने लुइस को जो तोहफ़े भेजे थे उनमें बिल्लोर का तराशा हुआ एक हाथी और एक जीराफ़ (Giraffe) याने ज़र्राफ़ भी था। तेज़ बिल्लोर के सेब और शतरंज के मोहरे थे। यह उसी तरह की बिल्लोरी मसनूआत[3] होंगी जिनकी निस्बत बयान किया गया है कि अलमूत का बाग़े-बहिश्त उनसे आरास्ता किया गया था। बिल्लोरी मसनूआत मग़रिबी एशिया में पहले चीन से आती थीं, फिर अरब सन्नाअ[4] भी बनाने लगे।

इसके बाद उस सिफ़ारत का हाल मिलता है जो लुइस ने शैख़ उलजिबाल के पास भेजी थी। इस सिफ़ारत में भी हमारा पुराना दोस्त लाब्रेतां बतौर मुतरजिम[5] के नुमायां होता है और उसकी ज़बानी शैख़ का एक मकालमा नक़ल किया गया है। लेकिन पूरा मकालमा बईद अज़ क़यास बातों पर मबनी है और क़ाबिले-ऐतना[6] नहीं। बाज़ हिस्से सरीह[7] बनावटी मालूम होते हैं। या सरतासर ग़लतफ़हमियों से वजूदपिज़ीर[8] हुए हैं। मसलन शैख़ उलजिबाल ने सेंट पीटर (पितरस) की तक़दीस[9] की और कहा—"हाबेल की रूह नूह में आई, नूह के बाद इब्राहीम में, और फिर इब्राहीम से पीटर में मुन्तक़िल हुई, उस वक़्त जब कि "ख़ुदा ज़मीन पर नाज़िल[10] हुआ था" (याने हज़रत मसीह का ज़हूर हुआ था!)

मुमकिन है शैख़ ने यह बात ज़ाहिर करने के लिये कि वो हज़रत मसीह का मुन्किर[11] नहीं है यह कहा हो कि जिस वह्ये-इलाही[12] का ज़हूर पिछले नबियों में हुआ था, उसी का ज़हूर हज़रत मसीह में हुआ और लाब्रेतां ने उसे दूसरा रंग दे दिया।

ज़्वैन वेल शीया सुन्नी इख़्तिलाफ़[13] से वाक़िफ़ है, लेकिन उसकी तशरीह[14] यों करता है:

"शीया मुहम्मद की शरीयत[15] पर नहीं चलते, अली की शरीयत पर चलते हैं। अली मुहम्मद का चचा था। उसी ने मुहम्मद को इज़्ज़त की मसनद पर बिठाया। लेकिन जब मुहम्मद ने क़ौम की सरदारी हासिल कर ली तो अपने चचा को हिक़ारत की नज़र से देखने लगा और उससे अलग हो गया।

---

१. ज़्यादा २. दूर की बात ३. कृत्रिम चीज़ें, शिल्पवस्तु ४. कारीगर ५. अनुवादक ६. ध्यान देने लायक ७. स्पष्ट ८. सज्जित ९. सम्मान करना १०. अवतरित ११. इंकार करने वाला, अस्वीकार करने वाला १२. ईश्वरीय ज्ञान १३. विरोध १४. व्याख्या, टीका १५. धर्म मार्ग।

यह हाल देखकर अली ने कोशिश की कि जितने आदमी अपने गिर्द जमा कर सकता है जमा कर ले और फिर उन्हें मुहम्मद के दीन के अलावा एक दूसरे दीन की तालीम दे। चुनांचे इस इख़्तिलाफ़ का नतीजा यह निकला कि जो लोग अब अली की शरीयत पर शामिल[1] हैं वो मुहम्मद के मानने वालों को बेदीन समझते हैं। इसी तरह पैरवाने-मुहम्मद[2] पैरवाने-अली को बेदीन कहते हैं।"

फिर लिखता है: "जब लाम्रेतां शैख़ उलजिबाल के पास गया तो उसे मालूम हुआ कि शैख़ मुहम्मद पर ऐतक़ाद[3] नहीं रखता, अली की शरीयत मानने वाला है।"

ज्वैन वेल का यह बयान तमामतर उन ख़यालात से माख़ूज़[4] है जो उस अहद[5] के कलीसाई[6] हल्क़ों में आम तौर पर फैले हुए थे, और फिर सदियों तक योरप में नस्लन् बाद नस्लिन्[7] इनकी अशायत[8] होती रही। ये बयानात कितने ही ग़लत हों ताहम उन बयानात से तो बहरहाल ग़नीमत हैं जो सलीबी हमले के इब्तदाई दौर में हर कलीसाई वाइज़ की ज़बान पर थे। मसलन यह बयान कि "मोहामत एक सोने का ख़ौफ़नाक बुत[9] है, जिसकी मुसलमान पूजा करते हैं। चुनांचे फ्रांसीसी और तुलयानी (इटालियन) ज़बान के क़दीम ड्रामों में त्रवागां (Tervagant) और (Trivigante) मुसलमानों के एक हौलनाक बुत की हैसियत से पेश किया जाता था। यही लफ़्ज़ क़दीम अंग्रेज़ी में आकर ट्रिवेगेंट (Tervagant) बन गया। और अब टरमेगेंट (Termagant) ऐसी औरत के लिए बोलने लगे हैं जो वहशियाना और बेलगाम मिज़ाज रखती हो।

एक सवाल यह पैदा होता है कि यह शैख़ उलजिबाल कौन था? यह ज़माना तक़रीबन सन् ६४९ हि. का ज़माना था। इसके थोड़े अर्से बाद तातारियों की ताक़त मग़रिबी एशिया में फैली, और उन्होंने हमेशा के लिये इस पुर असरार[10] मरकज़[11] का ख़ात्मा कर दिया। पस ग़ालिबन यह आख़िरी शैख़ उलजिबाल ख़ुद शाह होगा। यहाँ किताबें मौजूद नहीं इसलिये क़तई[12] तौर पर नहीं लिख सकता।

सलीबी जिहाद ने अज़मिनए-उस्ता[13] के योरप को मशरिक़े-उस्ता[14] के दोश बदोश[15] खड़ा कर दिया था। योरप उस अहद के मसीही दिमाग़ की नुमायंदगी[16] करता था, मशरिक़े-उस्ता मुसलमानों के दिमाग़ की। और दोनों

---

१. अमल करने वाले २. मुहम्मद के अनुयायी ३. श्रद्धा ४. लिया गया ५. ज़माना ६. ईसाई ७. पीढ़ी दर पीढ़ी ८. प्रचार ९. प्रतिमा १०. भेद भरे, रहस्यमय ११. केन्द्र १२. निश्चित १३. बीच के ज़माने के १४. मध्यपूर्व १५. बराबर, कंधे से कंधा लगाये १६. प्रतिनिधित्व।

की मुतक़ाबिल[1] हालत से उनकी मुतज़ाद[2] नौइयतें[3] आश्कारा[4] हो गई थीं। योरप मज़हब के मजनूनाना जोश का अलम बरदार[5] था, मुसलमान इल्म ओ दानिश के अलम बरदार थे। योरप दुआओं के हथियार से लड़ना चाहता था, मुसलमान लोहे और आग के हथियारों से लड़ते थे। योरप का ऐतमाद[6] सिर्फ़ ख़ुदा की मदद पर था, मुसलमानों का भी ख़ुदा की मदद पर था, लेकिन ख़ुदा के पैदा किये हुए सरोसामान पर भी था। एक सिर्फ़ रूहानी क़ुव्वतों का मोतक़िद[7] था, दूसरा रूहानी और माद्दी[8] दोनों का। पहले ने मुअजिज़ों[9] के ज़हूर का इंतज़ार किया; दूसरे ने नतायजे-अमल[10] के ज़हूर का। मुअजिज़े ज़ाहिर नहीं हुये, लेकिन नतायजे-अमल ने ज़ाहिर होकर फ़तह ओ शिकस्त का फ़ैसला कर दिया।

ज्वैन वेल की सरगुज़श्त में भी यह मुतज़ाद तक़ाबुल[11] हर जगह नुमायां है। जब मिसरी फ़ौज ने मिंजनीकों (Petrays) के ज़रिये आग के बान फेंकने शुरू किये तो फ्रांसीसी जिनके पास पुराने दस्ती हथियारों के सिवा और कुछ न था बिल्कुल बेबस हो गये। ज्वैन वेल इस सिलसिले में लिखता है :

"एक रात जब हम उन बुर्जियों पर जो दरिया के रास्ते की हिफ़ाज़त के लिये बनाई गई थीं, पहरा दे रहे थे तो अचानक क्या देखते हैं कि मुसलमानों ने एक अंजन जिसे पड़ेरी (यानी मिंजनीक़) कहते हैं लाकर नस्ब[12] कर दिया और उससे हम पर आग फेंकने लगे। यह हाल देखकर मेरे लार्ड वाल्टर ने जो एक अच्छा नाइट था हमें यों मुख़ातिब किया—"इस वक़्त हमारी ज़िंदगी का सबसे बड़ा ख़तरा पेश आ गया है। क्योंकि अगर हमने इन बुर्जियों को न छोड़ा और मुसलमानों ने उनमें आग लगा दी तो हम भी बुर्जियों के साथ जलकर ख़ाक हो जायेंगे। लेकिन अगर हम बुर्जियों को छोड़कर निकल जाते हैं तो फिर हमारी बेइज़्ज़ती में कोई शुबहा नहीं। क्योंकि हम इनकी हिफ़ाज़त पर मामूर[13] किये गये थे। ऐसी हालत में ख़ुदा के सिवा कोई नहीं जो हमारा बचाव कर सके। मेरा मशविरा आप सब लोगों को यह है कि जूं ही मुसलमान आग के बान चलायें, हमें चाहिए कि घुटनों के बल झुक जायें और अपने नजात-दिहंदा[14] ख़ुदावंद से दुआ मांगें कि इस मुसीबत में हमारी मदद करे।" चुनांचे हम सबने ऐसा ही किया। जैसे ही मुसलमानों का पहला बान चला, हम घुटनों के बल झुक गये और दुआ में मशग़ूल हो गये। ये बान इतने बड़े

१. विरोधी २. भिन्न भिन्न ३. क़िस्में ४. प्रगट ५. झंडा उठाने वाला ६. भरोसा ७. श्रद्धालु ८. पार्थिव ९. ईश्वरीय चमत्कार १०. कर्म के परिणाम ११. मुक़ाबला १२. स्थापित कर दिया १३. तैनात १४. मुक्ति देने वाले।

होते थे जैसे शराब के पीपे, और आग का शोला जो उनसे निकलता था उसकी दुम इतनी लंबी होती थी जैसे एक बहुत बड़ा नेज़ा। जब यह आता तो ऐसी आवाज़ निकलती जैसे बादल गरज रहे हों। उसकी शकल ऐसी दिखाई देती थी जैसे एक आतिशी अज़दहा[1] हवा में उड़ रहा है। उसकी रोशनी निहायत तेज़ थी। छावनी के तमाम हिस्से इस तरह उजाले में आ जाते जैसे दिन निकल आया हो।"

इसके बाद ख़ुद लुइस की निस्बत लिखता है :

"हर मर्तबा जब बान छूटने की आवाज़ हमारा वलीसिफ़्त[2] पादशाह सुनता था तो बिस्तर से उठ खड़ा होता था और रोते हुये हाथ उठा उठाकर हमारे नजात दिहंदा से इल्तजायें[3] करता। महरबान मौला! मेरे आदमियों की हिफ़ाज़त कर! मैं यक़ीन करता हूँ कि हमारे पादशाह की इन दुआओं ने हमें ज़रूर फ़ायदा पहुँचाया।"

लेकिन फ़ायदे का यह यक़ीन ख़ुश ऐतक़ादाना वहम[4] से ज़्यादा न था। क्योंकि बिल आख़िर कोई दुआ भी सूदमंद[5] न हुई और आग के बानों ने तमाम बुर्जियों को जला कर ख़ाकसार[6] कर दिया!

यह हाल तो तेरहवीं सदी मसीही का था। लेकिन चंद सदियों के बाद जब फिर योरप और मशरिक़ का मुक़ाबला हुआ, तो अब सूरते-हाल यकसर उलट चुकी थी। अब भी दोनों जमायतों के मुत्तज़ाद ख़सायस उसी तरह नुमायां थे जिस तरह सलीबी जंग के अहद में रहे थे। लेकिन इतनी तबदीली के साथ जो दिमाग़ी जगह पहले योरप की थी; वो अब मुसलमानों की हो गई थी, और जो जगह मुसलमानों की थी उसे अब योरप ने इख़्तियार कर लिया था।

अठारवीं सदी के अवाख़िर में जब नेपोलियन ने मिस्र पर हमला किया तो मुरादबे ने जामे अज़हर के उलमा[7] को जमा करके उनसे मशविरा किया था कि अब क्या करना चाहिये। उलमाये-अज़हर ने बिलइत्तिफ़ाक़ यह राय दी थी कि जामे अज़हर में सहीबुख़ारी का ख़त्म शुरू कर देना चाहिये कि हिसूले मक़ासिद[8] के लिये तीर बहदफ़[9] है। चुनांचे ऐसा ही किया गया। लेकिन अभी सही बुख़ारी का ख़त्म ख़त्म नहीं हुआ था कि अहराम की लड़ाई ने मिस्री हुकूमत का ख़ात्मा कर दिया! शेख़ अबुलरहमान अलजबरती ने इस अहद के चश्मदीद[10] हालात क़लमबंद किये हैं और बड़े ही इबरत अंगेज़[11] हैं। उन्नीसवीं

१. आग का अजगर २. धार्मिक प्रकृति का ३. फ़रियाद ४. ख़ुशफ़हमी-वहम ५. फ़ायदेमंद ६. राख, भस्म ७. धार्मिकों को ८. मक़सद की पूर्णता के लिये ९. निशाने पर तीर १०. आँखों देखे ११. नसीहत भरे।

सदी के अवायल में जब रूसियों ने बुख़ारा का मुहासिरा[1] किया था तो अमीरे बुख़ारा ने हुक्म दिया कि तमाम मदरिसों और मस्जिदों में ख़त्मे-ख़्वाजगान पढ़ा जाये। उधर रूसियों की क़िलाशिकन[2] तोपें शहर का हिसार[3] मुनहदिम[4] कर रही थीं, इधर लोग ख़त्मे-ख़्वाजगान के हल्क़ों में बैठे "या मुक़ल्लिबुल-क़ुलूब या मुहव्विलुल अहवाल"[5] के नारे बुलंद कर रहे थे। ब्रिल आख़िर वही नतीजा निकला जो एक ऐसे मुक़ाबले का निकलना था—जिसमें एक तरफ़ गोला बारूद हो, दूसरी तरफ़ ख़त्मे-ख़्वाजगान !

दुआयें ज़रूर फ़ायदा पहुँचाती हैं मगर उन्हीं को पहुँचाती हैं जो अज़्म ओ हिम्मत[6] रखते हैं; बेहिम्मतों के लिये तो वो तर्के-अमल[7] और तअत्तुले क़ुवा[8] का हीला बन जाती हैं।

ज़्वैन बेल ने इस आतिशफ़िशानी[9] को "यूनानी आग" से ताबीर किया है और इसी नाम से इसकी योरप में शोहरत हुई। ग़ालिबन इस तस्मिया[10] की वजह यह थी कि जिस मवाद[11] से यह आग भड़कती थी वो क़ुस्तुंतुनिया में सलीबियों ने देखा था। और इसलिये उसे यूनानी आग के नाम से पुकारने लगे थे।

आतिशफ़िशानी के लिये रोग़ने-नफ़्त याने मिट्टी का तेल काम में लाया जाता था। मिट्टी के तेल का यह पहला इस्तेमाल है जो अरबों ने किया। अज़रबैजान के तेल के चश्मे उस ज़माने में भी मशहूर थे। वहीं से यह तेल शाम और मिस्र में लाया जाता था। इब्ने फ़ज़लुल्लाह और नुवैरी ने इसके इस्तेमाल का मुफ़स्सल[12] हाल लिखा है।

आतिशफ़िशानी के लिये दो तरह की मशीनें काम में लाई जाती थीं। एक तो मिजनीक़ की क़िस्म की थी जो पत्थरों के फेंकने के लिये ईजाद हुई थी। दूसरी एक तरह का आला[13] कमान की शक्ल का था और तोप की बेड़ियों की तरह ज़मीन में नस्ब कर दिया जाता था। इसकी मार मिजनीक़ से भी ज़्यादा दूर तक पहुँचती थी। ज़्वैल बेल ने पहले को (Petray) से और दूसरे को (Swivel cross bow) से मौसूम[14] किया है। "मिजनीक़" का लफ़्ज़ उसी यूनानी लफ़्ज़ की तारीब[15] है जिससे अंग्रेज़ी का (Mechanic), फ़्रांसीसी का (Mechanicus) और जरमन का (Mechanikus)

१. घेरा डालना २. क़िला तोड़ने वाली ३. प्राचीर ४. ध्वस्त, नष्ट ५. अय ख़ुदा ! दिलों के बदलने वाले और हालात बदलने वाले ६. दृढ़ता और हिम्मत ७. निष्क्रियता ८. निष्क्रियता ९. आग फेंकना १०. नाम ११. सामग्री १२. विस्तृत १३. औज़ार १४. नाम देना १५. किसी शब्द को अरबी बनाना तारीब कहलाता है।

निकला है। यह आला अरबों ने रूसियों और ईरानियों से लिया था। लेकिन दूसरा ख़ुद अरबों की ईजाद था। चुनांचे उसे अरबी में "मिदफ़ा" कहते थे याने फेंकने वाला। यही "मिदफ़ा" बाद को तोप के लिये बोला जाने लगा।

अरबी में मिट्टी के तेल के लिये "नफ़्त" मुस्तअमल[1] हुआ, यही "नफ़्त" है जिसने योरप की ज़बानों में Naphthalene और Naphtha वग़ैरह की शक्ल इख़्तियार कर ली है।

अबुलकलाम

१. इस्तेमाल।

क़िलअ़-अहमदनगर
१७ दिसंबर सन् १६४२ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

वक़्त वही है, मगर अफ़सोस, वो चाय नहीं है जो तबअ़े-शोरिशपसंद[1] को सरमस्तियों की और फ़िक्रे-आलम-आशोब[2] को आसूदगियों[3] की दावत दिया करती थी :

फिर देखिये अंदाज़े-गुलअफ़शानिये-गुफ़्तार[4]
रख दे कोई पैमानये-सहबा[5] मेरे आगे !

वो चीनी चाय जिसका आदी था, कई दिन हुये ख़त्म हो गई और अहमदनगर और पूना के बाज़ारों में कोई इस जिंसे-गरांमाया[6] से आश्ना नहीं :

यक नालये-मस्ताना ज़ जाये न शुनीदेम
वीरां शवद आं शहर कि मयख़ाना नदारद ।[7]

मजबूरन[8] हिन्दुस्तान की उसी स्याह पत्ती का जोशांदा[8] पी रहा हूँ जिसे ताबीर ओ तस्मिया[9] के इस क़ायदे के बमुजिब कि—

बर अक्स निहंद नामे-ज़ंगी काफ़ूर ![10]

लोग चाय के नाम से पुकारते हैं और दूध डाल कर इसका गर्म शरबत बनाया करते हैं ।

दरमांदये-सलाह ओ फ़सादेम, अलहज़र
ज़ीं रस्महा कि मुर्दुमे-आक़िल निहादा अंद ![11]

इस कारगाहे-सूद ओ ज़यां[12] की कोई इशरत[13] नहीं कि किसी हसरत[14] से पैवस्ता[15] न हो । यहाँ ज़ुलाले-साफ़ी[16] का कोई जाम नहीं भरा गया कि दुर्दे-कुदूरत[17]

---

१. विक्षुब्ध २. दुनिया को परेशान करने वाली चिंता ३. राहत, चैन ४. वाणी की पुष्प वृष्टि के अंदाज़ ५. अंगूरी शराब का प्याला ६. बहुमूल्य वस्तु ७. किसी जगह से एक भी शराबी के शोर ओ गुल की आवाज़ नहीं सुनी । वह शहर वीरान हो जाये जहाँ कि मयख़ाना न हो । ८. अर्क़ ६. वर्णन और नामकरण १०. काले हब्शी का नाम उल्टे क़ाफ़ूर (कपूर) रख लेते हैं । जैसे कि हिन्दी में कहते हैं आँख के अंधे नाम नैनसुख । ११. इन विद्वानों ने जो तरह तरह की रस्में डाल दी हैं उसके कारण अफ़सोस है कि हम लोग इष्ट और अनिष्ट की दुविधा में पड़े हुये हैं १२. लाभ हानि की दुनिया १३. ऐश्वर्य १४. पश्चाताप १५. संबद्ध १६. निर्मल जीवनामृत १७. मैल की गाद ।

अपनी तह में न रखता हो। बादये-कामरानी[1] के तआक़ुब[2] में हमेशा ख़ुमारे-नाकामी[3] लगा रहा, और ख़ंदये-बहार[4] के पीछे हमेशा गिरियये-ख़िज़ां[5] का शीवन[6] बरपा हुआ। अबुलफ़ज़ल क्या ख़ूब कह गया है—क़दहे पुर नशुद कि तिही न करदंद,—सफ़हा तमाम न शुद कि वरक़ बर नगरदीद[7]

नेकू न बुवद हेच मुरादे ब कमाल
चुं सफ़हा तमाम शुद वरक़ बर गरदद ![8]

उम्मीद है, कि आपकी "अंबरी" चाय का ज़ख़ीरा जिसका एक मर्तबा रमज़ान में आपने ज़िक्र किया था, इस नायाबी[9] की गज़ंद[10] से महफ़ूज़[11] होगा :

उम्मीद कि चुं बंदा तुनुक माया न बाशी
मय ख़ुरदने-हर रोज़ा ज़ आदाते-किराम स्त[12]

मालूम नहीं कभी इस मसले के हक़ायक़[13] व मआरिफ़[14] पर भी आपकी तवज्जो[15] मबज़ूल[16] हुई है या नहीं ? अपनी हालत क्या बयान करूं ? वाक़या यह है कि वक़्त के बहुत से मसायल की तरह इस मामले में भी तबीयत कभी सवादे-आज़म[17] के मसलक[18] से मुत्तफ़िक़[19] न हो सकी। ज़माने की बेराह-रवियों[20] का हमेशा मातमगुसार[21] रहना पड़ा :

अज़ां कि पैरवीये-ख़ल्क़ गुमरही आरद
न मीरवेम ब राहे कि कारवां रफ़्ता स्त[22]

चाय के बाब[23] में अब्नाये-ज़माने[24] से मेरा इख़्तिलाफ़[25] सिर्फ़ शाख़ों और पत्तों के मामले ही में नहीं हुआ कि मुफ़ाहिमत[26] की सूरत निकल सकती। बल्कि सिरे से जड़ में हुआ। यानी इख़्तिलाफ़ फ़रअ़[27] का नहीं असलुल उसूल[28] का है :

१. सफलता की शराब २. पीछे ३. असफलता की अलसता ४. बसंत की हँसी ५. पतझड़ के आँसू ६. रोना धोना ७. कोई प्याला नहीं भरा गया कि ख़ाली न किया गया हो, और कोई पृष्ठ पूरा नहीं हुआ कि पन्ना न उलट दिया गया हो। ८. किसी इच्छा का पूर्ण हो जाना अच्छा नहीं होता क्योंकि जब पृष्ठ पूरा हो जाता है तो पन्ना उलट जाता है। ९. अप्राप्यता १०. मुसीबत ११. सुरक्षित १२. तू मेरी तरह कम पूंजी वाला न हो यही आशा है, रोज़ शराब पीना यह गुरुजनों की आदतें हैं। १३. सूक्ष्मता १४. साक्षात्कार या ज्ञान का स्तर १५. ध्यान १६. लगना, आकर्षित १७. बहुमत majority १८. रास्ता १९. सहमत २०. कुमार्ग गामिता २१. शोक संतप्त २२. इसलिये कि दुनिया के मार्ग पर चलने से गुमराही का परिणाम निकलता है मैं उस मार्ग से नहीं जाता जिस मार्ग से कि कारवां गुज़र गया है। २३. अध्याय २४. ज़माने के लोगों से २५. विरोध २६. समझौता २७. शाखा २८. जड़ों की जड़ याने मूल सिद्धान्त।

दहन[1] का ज़िक्र क्या, यां सर ही ग़ायब है गरेबां से !

सबसे पहला सवाल चाय के बारे में खुद चाय का पैदा होता है। मैं चाय को चाय के लिये पीता हूँ, लोग शकर ओ दूध के लिये पीते हैं। मेरे लिये वो मक़ासिद[2] में दाख़िल हुई, उनके लिये वसायल[3] में। ग़ौर फ़रमाइये मेरा रुख़ किस तरफ़ है और ज़माना किधर जा रहा है ?

तू व तूबा ओ मा व क़ामते-यार
फ़िक्रे-हर कस बक़द्रे-हिम्मते-ऊं स्त ![4]

चाय चीन की पैदावार है और चीनियों की तसरीह[5] के मुताबिक़ पंद्रह सौ बरस से इस्तेमाल की जा रही है। लेकिन वहाँ कभी किसी के ख़याल में भी यह बात नहीं गुज़री कि इस जौहरे-लतीफ़[6] को दूध की कसाफ़त[7] से आलूदा[8] किया जा सकता है। जिन-जिन मुल्कों में चीन से बराहे-रास्त[9] गई, मसलन रूस, तुर्किस्तान, ईरान वहाँ भी किसी को यह ख़याल नहीं गुज़रा। मगर सतरहवीं सदी में जब अंग्रेज़ इससे आशना हुये तो नहीं मालूम उन लोगों को क्या सूझी, उन्होंने दूध मिलाने की बिदात[10] ईजाद की। और चूंकि हिन्दुस्तान में चाय का रिवाज उन्हीं के ज़रिये हुआ इसलिये यह बिदाते-सैयआ[11] यहाँ भी फैल गई। रफ़्ता रफ़्ता मामला यहाँ तक पहुँच गया कि लोग चाय में दूध डालने की जगह दूध में चाय डालने लगे। बुनियादे-ज़ुल्म दर जहाँ अंदक बूद, हर कि आमद बर आं मज़ीद कर्द[12]। अब अंग्रेज़ तो यह कह कर अलग हो गये कि ज्यादा दूध नहीं डालना चाहिये। लेकिन उनके तुख़्मे-फ़साद[13] ने जो बर्ग[14] ओ बार फैला दिये हैं, उन्हें कौन छाँट सकता है ? लोग चाय की जगह एक तरह का सय्याल[15] हलवा बनाते हैं, खाने की जगह पीते हैं और खुश होते हैं कि हमने चाय पी ली। इन नादानों से कौन कहे कि :

हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं !

फिर एक बुनियादी सवाल चाय की नौइयत[16] का भी है। और इस बारे में भी एक अजीब आलमगीर[17] ग़लतफ़हमी फैल गई है। किस किस से

---

१. मुँह २. साध्य ३. साधन ४. तेरा ख़याल स्वर्गके वृक्ष तूबा की तरफ़ है और मेरा प्रियतम के क़द की तरफ़, प्रत्येक व्यक्ति का ख़याल उसकी हिम्मत के मुताबिक होता है। ५. व्याख्या, टीका ६. नाज़ुक चीज़ ७. मैल ८. मलिन ९. सीधी १०. मज़हब में कोई नई बात पैदा करने को बिदात कहते हैं। ११. बुरी बिदात १२. दुनिया में ज़ुल्म की बुनियाद बहुत थोड़ी थी लेकिन जो आया उसने उसे ज़्यादा किया। १३. झगड़े का बीज १४. पत्ते १५. तरल बहता हुआ १६. क़िस्म १७. विश्वव्यापी।

झगड़िये और किस किस को समझाइये।

रोज़ ओ शब मुर्बदा बा ख़ल्क़े-ख़ुदा न तवां कर्द ![1]

आम तौर पर लोग एक ख़ास तरह की पत्ती जो हिन्दुस्तान और सीलोन में पैदा होती है, समझते हैं चाय है। और फिर उसकी मुख़्तलिफ़ क़िस्में करके एक को दूसरी पर तरजीह[2] देते हैं और इस तरजीह के बारे में बाहम रद्द ओ कद[3] करते हैं। एक गिरोह कहता है सीलोन की चाय बेहतर है, दूसरा कहता है दारजिलिंग की बेहतर है। गोया यह भी वो मामला हुआ कि :

दर रहे-इश्क़ न शुद कस ब यक़ीं महरमे-राज़
हर कसे बर हस्बे-फ़हम गुमाने दारद ![4]

हालांकि इन फ़रेबख़ुर्दगाने[5]-रंग ओ बू को कौन समझाये कि जिस चीज़ पर झगड़ रहे हैं, वो सिरे से चाय है ही नहीं :

चुं न दीदंद हक़ीक़त रहे-अफ़साना ज़दंद ![6]

दर असल यह आलमगीर ग़लती इस तरह पैदा हुई कि उन्नीसवीं सदी के अवायल[7] में जब चाय की माँग हर तरफ़ बढ़ रही थी हिन्दुस्तान के बाज़ अंग्रेज काश्तकारों को ख़याल हुआ कि सीलोन और हिन्दुस्तान के बुलंद और मरतूब मुक़ामात में चाय की काश्त का तजरुबा करें। उन्होंने चीन से चाय के पौदे मँगाये और यहाँ काश्त शुरू की। यहाँ की मिट्टी ने चाय पैदा करने से तो इंकार कर दिया मगर तक़रीबन इसी शक्ल ओ सूरत की एक दूसरी चीज़ पैदा कर दी। इन ज़याकारों[9] ने इसीका नाम चाय रख दिया और इस ग़रज़ से कि असली चाय से मुमताज़[10] रहे, इसे काली चाय के नाम से पुकारने लगे :

ग़लतीहाये - मज़ामीन मत पूछ
लोग नाले को रसा बाँधते हैं

दुनिया जो इस जुस्तजू में थी कि किसी न किसी तरह यह जिंसे-कमयाब अरज़ां[11] हो, बेसमझे बूझे इसी पर टूट पड़ी, और फिर तो गोया पूरी नौए-इंसानी[12] ने इस फ़रेबख़ुर्दगी पर इजमा[13] कर लिया। अब आप हज़ार सर पीटिये सुनता कौन है :

---

१. रात दिन दुनिया के लोगों से झगड़ा नहीं कर सकते २. प्रधानता ३. लड़झगड़ ४. इश्क़ की राह में विश्वासपूर्वक कोई भी रहस्य का जानने वाला नहीं हुआ, प्रत्येक अपनी जानकारी और समझ के मुताबिक़ गुमान रखता है। ५. रंग और महक से छले हुये ६. जब हक़ीक़त का इल्म नहीं होता तो क़िस्से और कहानियाँ गढ़ लेते हैं ७. आरंभ ८. आर्द्रनम ९. बदकार १०. विशिष्ट ११. सस्ती १२. मानव जाति १३. सबकी एक राय होना, सहमति।

उसी की सी कहने लगे अहले-महशर[1]
कहीं पुरसिशे - दादख़्वाहां[2] नहीं !

मामले का सबसे दर्दअंगेज़ पहलू यह है कि ख़ुद चीन के बाज़ साहिली[3] बाशिंदे भी इस आलमगीर फ़रेब की लपेट में आ गये और इसी पत्ती को चाय समझ कर पीने लगे। यह वही बात हुई कि बदख़्शानियों ने लाल पत्थर को लाल समझा, और कश्मीरियों ने रंगी हुई घास को ज़ाफ़रान समझ कर अपनी दस्तारें रँगनी शुरू कर दीं :

चु कुफ़ अज़ काबा बरख़ेज़द कुजा मानद मुसलमानी ![4]

नौए-इंसानी की अक्सरियत[5] के फ़ैसलों का हमेशा ऐसा ही हाल रहा है। जमीय्यते-बशरी[6] की यह फ़ितरत है कि हमेशा अक्लमंद आदमी इक्का दुक्का होगा, भीड़ बेवकूफ़ों की ही रहेगी। मानने पर आयेंगे तो गाय को ख़ुदा मान लेंगे, इंकार पर आयेंगे तो मसीह को सूली पर चढ़ा देंगे। हकीम सनाई ज़िंदगी भर मातम करता रहा :

गाव रा दारंद बावर दर ख़ुदाई आमियां
नूह रा बावर न दारंद अज़ पये पैग़ंबरी ![7]

इसीलिये उर्फ़ीये-तरीक़ को कहना पड़ा :

इंकारिये - ख़ल्क़ बाश, तस्दीक़ ईनस्त
मशग़ूल ब ख़ेश बाश, तौफ़ीक़ ईनस्त
तबग्निय्यते ख़ल्क़ अज़ हक़ीक़त बातिल कर्द
तर्के - तक़लीद गीर, तहक़ीक़ ईनस्त[8]

यह तो उसूल की बहस हुई, अब फ़रूअ[9] में आइये। यहाँ भी कोई गोशा नहीं जहाँ ज़मीन हमवार मिले। सबसे अहम मसला शकर का है। मिक़दार[10] के लिहाज़ से भी और नौइयत के लिहाज़ से भी :

१. क़यामत के दिन ख़ुदा के सामने सब जमा होते हैं उन्हें अहले-मशहर कहते हैं। २. न्याय चाहने वालों की पूछ ३. तटीय ४. जब कुफ़्र काबे से उठने लगा तो फिर मुसलमानी कहाँ रही ५. बहुमत ६. लोगों की भीड़ ७. जाहिल और मूर्ख लोग गाय पर भी भरोसा करते हैं और उसे ख़ुदा मान लेते हैं, और नूह के पैग़ंबर होने पर भी विश्वास नहीं करते। ८. ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले धार्मिक लोग ९. दुनिया की बातों को अस्वीकार करो सचाई यही है और अपने आप में लीन और मक़बूल रहो ईश्वर कृपा यही है। दुनिया के अनुकरण ने मुझे सचाई से झुठला दिया है, अनुकरण का त्याग कर सचाई और हक़ीक़त यही है १०. भेदों में ११. परिमाण।

दर्दा कि तबीब सब्र मीफ़रमायद
वीं नफ़्से हरीस रा शकर मीबायद ![1]

जहाँ तक मिक़दार का ताल्लुक़ है, इसे मेरी महरूमी[2] समझिये या तल्ख़-कामी[3] कि मुझे मिठास के ज़ौक़[4] का बहुत कम हिस्सा मिला है। न सिर्फ़ चाय में बल्कि किसी चीज़ में भी ज़्यादा मिठास गवारा नहीं कर सकता। दुनिया के लिये जो चीज़ मिठास हुई वही मेरे लिये बदमज़गी हो गई। खाता हूँ तो मुँह का मज़ा बिगड़ जाता है। लोगों को जो लज़्ज़त मिठास में मिलती है, मुझे नमक में मिलती है। खाने में नमक पड़ा हो मगर मैं ऊपर से और छिड़क दूँगा। मैं सबाहत[5] का नहीं, मलाहत का क़तील[6] हूँ :

वलिन्नासि फ़ीमा या शिक़ून मज़ाहिबु[7]

गोया कह सकता हूँ कि—"अख़ि युसुफ़ ! असबहु व अना अम्लहु मिनहु[8]

गर नुक्तादाने-इश्क़ी, ख़ुशबिशनौ ईं हिकायत ![9]

इस हदीस के तज़किरे ने याराने-क़सस[10] व मवाइज़[11] की वो ख़ानासाज़[12] रवायत याद दिला दी कि—"अलईमानु हुल्वुन् वलमोमिनु युहिब्बुल हलवा[13]" लेकिन अगर मदारिजे-ईमानी[14] के हुसूल और मरातिबे ईक़ानी[15] की तकमील का यही मैयार[16] ठहरा तो नहीं मालूम उन तिहीदस्ताने-नक़्दे-हलावत[17] का क्या हश्र होने वाला है, जिनकी मुहब्बते-हलावत की सारी पूँजी चाय की चंद प्यालियों से ज़्यादा नहीं हुई। और उनमें भी कम शकर पड़ी हुई, और फिर इस कम शकर पर भी तास्सुफ़[18] कि न होती तो बेहतर था। हा, मौलाना शिबली मरहूम का बेहतरीन शेर याद आ गया :

दो दिल बूदन दरीं रह सख़्ततर ऐबे स्त सालिकरा
ख़जिल हस्तम ज़ कुफ़्रे ख़ुद कि दारद बूये ईमां हम ![19]

---

१. अफ़सोस कि वैद्य तो सब्र और परहेज़ करने को कहते हैं और इस लालची जी को शकर चाहिये २. वंचना ३. कटु स्वाद को पसंद करना ४. रुचि ५. सबाहत गौर वर्ण को और मलाहत सांवलेपन को कहते हैं इसे हिन्दी में लावण्य कहते हैं और लावण्य लवण याने नमक से संबंधित है। ६. मारा हुआ ७. लोगों की पसंद अलग-अलग होती है। ८. मेरा भाई यूसफ़ गोरा चिट्टा ज़रूर है मगर मैं उससे ज़्यादा नमकीन हूँ। ९. अगर तू इश्क़ का पारखी है तो यह कहानी अच्छी तरह सुन १०. कहानीकार ११. उपदेश १२. घर की बनी १३. ईमान मीठा है और मोमिन को मिठास पसंद है १४. ईमान के दर्जे १५. निष्ठा के पद की पूर्णता १६. मापदंड १७. मिठास की पूँजी से वंचित १८. अफ़सोस १९. इस प्रेम की राह में पुजारी के लिये दिल में दुई रखना सबसे बड़ा दोष है। अपने कुफ़्र से शर्मिंदा हूँ कि उसमें ईमान की बू भी है।

बच्चों का मिठास का शौक़ ज़र्बुलमसल[1] है, मगर आपको सुन कर ताज्जुब होगा कि मैं बचपने में भी मिठास का शायक़[2] न था। मेरे साथी मुझे छेड़ा करते थे कि तुझे नीम की पत्तियाँ चबानी चाहियें। और एक मर्तबा पिसी हुई पत्तियाँ खिला भी दी थीं।

इसी बायस[3] से दाया तिफ़्ल[4] को अफ़यून[5] देती है
कि ता हो जाये लज़्ज़त-आश्ना[6] तल्ख़ीये-दौरां[7] से!

मैंने यह देख कर कि मिठास का शायक़ न होना नुक़्स समझा जाता है कई बार बतकल्लुफ़ कोशिश की कि अपने आपको शायक़ बनाऊँ मगर हर मर्तबा नाकाम रहा। गोया वही चंद्रभान वाली बात हुई कि :

मरा दिले स्त ब कुफ़् आश्ना, कि चंदीं बार
ब काबा बुरदम ओ बाज़श बरहमन आवुर्दम।[8]

बहरहाल यह तो शकर की मिक़दार का मसला था, मगर मामला इस पर ख़त्म कहाँ होता है?

कोतह नज़र बबीं कि सुख़न मुख़्तसर गिरफ़्त![9]

एक दक़ीक़ सवाल उसकी नौइयत का भी है। आम तौर पर समझा जाता है कि जो शकर हर चीज़ में डाली जा सकती है, वही चाय में भी डालनी चाहिये। इसके लिये किसी ख़ास शकर का एहतिमाम[10] ज़रूरी नहीं चुनांचे बारीक दानों की दोबारा शकर जो पहले जावा और मोरिशस से आती थी और अब हिन्दुस्तान में बनने लगी है, चाय के लिये भी इस्तेमाल की जाती है हालांकि चाय का मामला दूसरी चीज़ों से बिल्कुल मुख़्तलिफ़ वाक़े हुआ है। इसे हलवे पर क़यास[11] नहीं करना चाहिये। इसका मिज़ाज इस क़दर लतीफ़[12] और बेमेल है कि कोई चीज़ भी जो ख़ुद उसी की तरह साफ़ और लतीफ़ न होगी फ़ौरन इसे मुकद्दर कर देगी। गोया चाय का मामला भी वही हुआ कि :

नसीमे-सुबह जो छू जाय, रंग हो मैला!

यह दोबारा शकर अगरचे साफ़ किये हुये रस से बनती है मगर पूरी तरह साफ़ नहीं होती। इस गरज़ से कि मिक़दार कम न हो जाये, सफ़ाई के आख़िरी

---

१. लोकोक्ति २. प्रेमी ३. वजह से ४. बालक ५. अफ़ीम ६. स्वाद से परिचित ७. दुनिया की कटुता ८. मेरा दिल कुफ़् का प्रेमी है कि कई बार इसे काबे ले गया लेकिन फिर भी उसे ब्राह्मण का ब्राह्मण ही लाया। ९. नज़र की कोताही को देखो कि बात को संक्षिप्त ही लेती है। १०. प्रबंध ११. अनुमान १२. सुकुमार १३. गंदला।

मरातिब[1] छोड़ दिये जाते हैं। नतीजा यह है कि ज़ूं ही इसे चाय में डालिये, मअन उसका ज़ायक़ा मुतासिर[2] और लताफ़त[3] आलूदा[4] हो जायेगी। अगरचे यह असर हर हाल में पड़ता है, ताहम दूध के साथ पीजिये तो चंदां[5] महसूस नहीं होता। क्योंकि दूध के ज़ायक़े की गरानी[6] चाय के ज़ायक़े पर ग़ालिब[7] आ जाती है और काम चल जाता है। लेकिन सादा चाय पीजिये तो फ़ौरन बोल उठेगी। इसके लिये ऐसी शकर चाहिये जो बिल्लोर की तरह बेमैल और बर्फ़ की तरह शफ़्फ़ाफ़[8] हो। ऐसी शकर डलियों की शक्ल में भी आती है और बड़े दानों की शक्ल में भी। मैं हमेशा बड़े दानों की शफ़्फ़ाफ़ शकर काम में लाता हूँ, और उससे वो काम लेता हूँ जो मिर्ज़ा ग़ालिब गुलाब से लिया करते थे।

आसूदा बाद ख़ातिरे-ग़ालिब की ख़ूये-ऊ स्त
आमेख़्तन ब बादये-साफ़ी गुलाबरा[9]

मेरे लिये शकर की नौइयत का यह फ़र्क़ वैसा ही महसूस और नुमायां हुआ जैसे शरबत पीने वालों के लिये क़ंद और गुड़ का फ़र्क़ हुआ। लेकिन यह अजीब मुसीबत है कि दूसरों को किसी तरह भी महसूस नहीं करा सकता। जिस किसी से कहा उसने या तो इसे मुबालग़े[10] पर महमूल[11] किया, या मेरा वहम ओ तख़य्युल समझा। ऐसा मालूम होता है कि या तो मेरे ही मुँह का मजा बिगड़ गया है या दुनिया में किसी के मुँह का मजा दुरुस्त नहीं। यह न भूलिये कि बहस चाय के तकल्लुफ़ात[12] में नहीं है, उसकी लताफ़त ओ कैफ़ियत[13] के ज़ौक़[14] ओ अहसास में है। बहुत से लोग चाय के लिये साफ़ डलियाँ और मोटी शकर इस्तेमाल करते हैं, और योरप में तो ज्यादातर डलियों ही का रिवाज है। मगर यह इसलिये नहीं किया जाता कि चाय के ज़ायक़े के लिये यह कोई ज़रूरी चीज़ हुई, बल्कि महज़ तकल्लुफ़ के ख़याल से क्योंकि इस तरह की शकर निस्बतन[15] क़ीमती होती है। आप उन्हें मामूली शकर डाल कर चाय दे दीजिये वे ग़िल ओ ग़श भी जायेंगे और ज़ायक़े में कोई तबदीली महसूस नहीं करेंगे।

शकर के मामले में अगर किसी गिरोह को हक़ीक़त आशना पाया तो वो ईरानी हैं। अगरचे चाय की नौइयत के बारे में चंदां ज़ीहिस[16] नहीं, मगर यह नुक़्ता उन्होंने पा लिया है। ईराक़ और ईरान में आम तौर पर यह बात नजर

---

१. दर्जे २. प्रभावित ३ निर्मलता ४. गंदली मलिन ५. इतना ६. भारीपन ७. छा जाना ८. साफ़ ९ ग़ालिब का दिल खुश रहे कि उसकी आदत है कि वो साफ़ शराब में गुलाब की पत्तियां मिलाता है। १०. अतिशयोक्ति ११. आश्रित १२. आडंबर १३. मजा १४. रुचि १५. अपेक्षाकृत १६. जानकार।

आई थी कि चाय के लिये क़ंद की जुस्तजू में रहते थे और उसे मामूली शकर पर तरजीह देते थे। क्योंकि क़ंद साफ़ होती है, और वही काम देती है जो मोटे दानों की शकर से लिया जाता है। कह नहीं सकता कि अब वहाँ का क्या हाल है।

और अगर "तुअरफ़ुल अशियाउ ब अजदादिहा[1]" की बिना पर पूछिये कि चाय के मामले में सबसे ज़्यादा ख़ीरा मज़ाक़[2] गिरोह कौन हुआ ? तो मैं बिला ताम्मुल[3] अंग्रेज़ों का नाम लूंगा। यह अजीब बात है कि योरप और अमरीका में चाय इंगलिस्तान की राह से गई, और दुनिया में इसका आलमगीर रिवाज भी बहुत कुछ अंग्रेज़ों ही का मिन्नतपिज़ीर[4] है। ताहम ये नज़दीकाने-बेबसर[5] हक़ीक़ते-हाल से इतने दूर जा पड़े कि चाय की हक़ीक़ी लताफ़त ओ कैफ़ियत का ज़ौक़ उन्हें छू भी नहीं गया। जब इस राह के इमामों[6] का यह हाल है तो उनके मुक़ल्लिदों[7] का जो हाल होगा, मालूम है।

आश्नारा हाल ईं अस्त, वाये बर बेगानये ![8]

उन्होंने चीन से चाय पीना तो सीख लिया मगर और कुछ सीख न सके। अव्वल तो हिन्दुस्तान और सीलोन की स्याह पत्ती उनके ज़ौक़े-चायनोशी[9] का मुंतिहाये-कमाल[10] हुआ। फिर क़यामत यह है कि उसमें भी ठंडा दूध डालकर उसे यकक़लम गंदा कर देंगे। मज़ीद[11] सितमज़रीफ़ी[12] देखिये कि इस गंदे मशरूब[13] की मैयारसंजियों[14] के लिये माहरीने-फ़न[15] की एक पूरी फ़ौज मौजूद रहती है। कोई इन जयांकारों से पूछे कि अगर चायनोशी से मक़सूद इन्हीं पत्तियों को गरम पानी में डाल कर पी लेना है तो इसके लिये माहरीने-फ़न की दक़ीक़ा संजियों[16] की क्या ज़रूरत है ? जो पत्ती भी पानी को स्याही मायल कर दे, और एक तेज़ बू पैदा हो जाये, चाय है। और इसमें ठंडे दूध का एक चमचा डालकर काफ़ी मिक़दार में गंदगी पैदा कर दी जा सकती है। चाय का एक माहिरे-फ़न भी इससे ज़्यादा क्या ख़ाक बतलायेगा ?

हैं यही कहने को वो भी, और क्या कहने को हैं ?

अगरचे फ्रांस और बर्रे-आज़म में ज़्यादातर रिवाज काफ़ी का हुआ, ताहम आला तबक़े के लोग चाय का भी शौक़ रखते हैं। और उनका ज़ौक़

---

१. वस्तु को उससे प्रतिकूल वस्तु से पहचानो २. कुरुचि रखने वाला ३. निस्संकोच ४. कृतज्ञ ५. आंखों के निकटवर्ती ६. अग्रदूत, मुखिया ७. अनुकरणकर्ता ८. परिचितों का यह हाल है तो अपरिचितों पर तो अफ़सोस है ९. चाय पीने की रुचि १०. चरम उत्कर्ष ११. विशेष १२. हँसी की बात १३. पेय १४. कसौटी १५. कला के विशेषज्ञ १६. सूक्ष्म परख।

बहर हाल अंग्रेजों से बदर्जहा[1] बेहतर है। वो ज्यादातर चीनी चाय पीयेंगे। और अगर स्याह चाय पीयेंगे भी तो अकसर हालतों में बग़ैर दूध के या लीमू की एक क़ाश[2] के साथ जो चाय की लताफ़त को नुक़सान नहीं पहुंचाती। बल्कि और निखार देती है। यह लीमू की तरकीब दरअसल रूस, तुर्किस्तान और ईरान से चली। समरक़ंद और बुखारा में आम दस्तूर है कि चाय का तीसरा फ़िंजान लीमूनी होगा। बाज़ ईरानी भी दौर का खात्मा लीमूनी ही पर करते हैं। यह कमबख्त दूध की आफ़त तो सिर्फ़ अंग्रेजों की लाई हुई है :

सरे ईं फ़ितना ज़ जाये स्त कि मन मीदानम ![3]

अब इधर एक और नयी मुसीबत पेश आ गयी है। अब तक तो सिर्फ़ शकर की आम क़िस्म ही के इस्तेमाल का रोना था। मगर अब मामला साफ़-साफ़ गुड़ तक पहुँचने वाला है। हिन्दुस्ताने-क़दीम में जब लोगों ने गुड़ की मंज़िल से क़दम आगे बढ़ाना चाहा था तो यह किया था कि गुड़ को किसी क़दर साफ़ करके लाल शकर बनाने लगे थे। यह सफ़ाई में सफ़ेद शकर से मंज़िलों दूर थी। मगर नासाफ़ गुड़ के एक क़दम आगे निकल आयी थी। फिर जब सफ़ेद शकर आम तौर पर बनने लगी तो इसका इस्तेमाल ज्यादातर देहातों में महदूद[4] रह गया। लेकिन अब फिर दुनिया अपनी तरक़्क़ीये-माकूस[5] में उसी तरफ़ लौट रही है जहाँ से सैकड़ों बरस पहले आगे बढ़ी थी। चुनांचे आजकल अमरीका में इस लाल शकर की बड़ी माँग है। वहाँ के अहले-ज़ौक़[6] कहते हैं — काफ़ी बग़ैर इस शकर के मज़ा नहीं देती। और जैसा कि क़ायदये-मक़र्रा[7] है, अब उनकी तक़लीद[8] में यहाँ के असहाबे-ज़ौक़[9] भी "ब्राउन शुगर" की सदायें बुलंद करने लगे हैं। मेरी यह पेशीनगोई[10] लिख रखिये कि अन्क़रीब[11] यह ब्राउन शुगर का हल्का सा पर्दा भी उठ जायेगा और साफ़-साफ़ गुड़ की माँग हर तरफ़ शुरू हो जायेगी। याराने-ज़ौक़े-जदीद[12] कहेंगे कि गुड़ के डले डाले बग़ैर न चाय मज़ा देती है न काफ़ी। फ़रमाइये, अब इसके बाद क्या बाक़ी रह गया है जिसका इंतज़ार किया जाये ?

बाये गर दर पसे-इमरोज़ बुवद फ़र्दाये ![13]

शकर और गुड़ की दुनियायें इस दर्जे एक दूसरे से मुख्तलिफ़ वाक़े हुई हैं कि आदमी एक का होकर फिर दूसरे के क़ाबिल नहीं रह सकता। मैंने देखा

१. कई दर्जे २. फाँक ३. इस झगड़े की शुरुआत जहां से है वह मैं जानता हूँ ४. सीमित ५. प्रतिकूल प्रगति ६. अच्छी रुचि के लोग ७. निश्चित क़ायदा ८. अनुकरण ९. रुचि रखनेवाले साहबान १०. भविष्यवाणी ११. जल्दी ही १२. नई रुचि के लोग १३. हा, अगर आज के पर्दे के पीछे कल हो।

है कि जिन लोगों ने ज़िंदगी में दो चार मर्तबा भी गुड़ खा लिया, शकर की लताफ़त का अहसास फिर उनमें बाक़ी नहीं रहा। जवाहरलाल चूंकि मिठास के बहुत शायक़ हैं इसलिये गुड़ का भी शौक़ रखते हैं। मैंने यहाँ हज़ार कोशिश की कि शकर की नौइयत का यह फ़र्क़ जो मेरे लिये इस दर्जे नुमायां है, उन्हें भी महसूस कराऊं। लेकिन न करा सका और बिल आख़िर थक के रह गया।

बहरहाल ज़माने की हक़ीक़त फ़रामोशियों पर कहाँ तक मातम किया जाय :

कोतह न तवां कर्द कि ईं क़िस्सा दराज़ स्त ![1]

आइये, आपको कुछ अपना हाल सुनाऊँ। असहाबे-नज़र का क़ौल है कि हुस्न और फ़न के मामले में हुब्बुलवतनी[2] के जज़्बे[3] को दख़ल नहीं देना चाहिये :

मताअे-नेक़, हर दुकां कि बाशद[4]

पर अमल करना चाहिये। चुनांचे मैं भी चाय के बाब में शाहिदाने-हिंद का नहीं, ख़ूबाने-चीन का मौतक़िद हूँ :

दवाये-दर्दे-दिले-ख़ुद अज़ां मुफ़र्रह जोये
कि दर सुराहिये-चीनी ओ शीशये-हलबी स्त ![5]

मेरे जुग़राफ़िया में अगर चीन का ज़िक्र किया गया है तो इसलिये नहीं कि जनरल चांग काई शेक और मैडम चांग वहां से आये थे। बल्कि इसलिये कि चाय वहीं से आती है :—

मये-साफ़ी ज़ फ़िरंग आयद ओ शाहिद ज़ ततार
मा न दानेम कि बुस्तामी ओ बग़दादी हस्त ![6]

एक मुद्दत से जिस चीनी चाय का आदी हूँ वो व्हाइट जेस्मिन (White jasmine) कहलाती है। याने "यास्मने-सफ़ेद" या ठेठ उर्दू में यूं कहिये कि "गोरी चम्बेली"

कसे कि महरमे-राज़े-सबा स्त, मीदानद
कि बावजूदे-ख़िज़ां बूये-यास्मन बाक़ी स्त ![7]

१. संक्षिप्त नहीं कर सकते कि कहानी लम्बी है २. देश प्रेम, देशभक्ति ३. भावना ४. अच्छी चीज़ जिस किसी दूकान पर भी हो (लेने योग्य है) ५. अपने दर्दे-दिल की दवा उस मुफ़र्रह (Cardial यानी दिल ख़ुश करनेवाली चीज़) से लो जो चीनी सुराही और हलब के शीशे में है। ६. निर्मल शराब फ़िरंग याने योरप से और माशूक़ तातार से आता है, हम नहीं जानते कि बुस्ताम और बग़दाद भी है। ७. जो कोई भी प्रातः समीर के रहस्यों को जानता है वह जानता है कि पतझड़ के बावजूद भी चंबेली की ख़ुशबू बाक़ी है।

इसकी ख़ुशबू जिस क़दर लतीफ़ है, उतना ही कैफ़[1] तुंद भ्रो तेज़ है। रंगत की निस्बत क्या कहूँ ? लोगों ने भ्रातिशे-सय्याल[2] की ताबीर से काम लिया है :

मय मयाने - शीशये - साक़ी निगर
भ्रातिशे गोया बभ्राब भ्रालूदा भ्रन्द ![3]

लेकिन भ्राग का तख़य्युल फिर भ्ररज़ी[4] है भ्रौर इस चाय की भ्रुल्वियत[5] कुछ भ्रौर चाहती है। मैं सूरज की किरनों को मुट्ठी में बंद करने की कोशिश करता हूँ भ्रौर कहता हूँ कि यूं समझिये जैसे किसी ने सूरज की किरनें हल करके बिल्लोरी फ़िंजान में घोल दी हों। मुल्ला मुहम्मद माज़िंदरानी साहबे-बुतख़ाना ने भ्रगर यह चाय पी होती तो ख़ानख़ाना की ख़ानासाज़ शराब की मदह में हरगिज़ यह न कहता :

न मीमानद ईं बादा भ्रसलन ब भ्राब
तू गोई कि हल कर्दा भ्रंद भ्राफ़ताब[6]

लड़ाई की वजह से जहाज़ों की भ्रामद भ्रो रफ़्त बंद हुई तो इसका भ्रसर चाय पर भी पड़ा। मैं कलकत्ते के जिस चीनी स्टोर से मँगवाया करता था, उसका ज़ख़ीरा जवाब देने लगा था। फिर भी चंद डिब्बे मिल गये थे। भ्रौर बाज़ चीनी दोस्तों ने बतौर तोहफ़े के भी भेजकर चारासाज़ी की थी। जब कलकत्ते से निकला तो एक डिब्बा साथ था। एक घर में छोड़ भ्राया था। बंबई से गिरफ़्तार करके यहाँ लाया गया तो सामान के साथ वो भी भ्रा गया भ्रौर फिर क़बल इसके कि ख़त्म हो, घर वाला डिब्बा भी पहुँच गया। इस तरह यहाँ भ्रौर चीज़ों की कितनी ही कमी महसूस हुई हो, लेकिन चाय की कमी महसूस नहीं हुई। भ्रौर भ्रगर चाय की कमी महसूस नहीं हुई तो नतीजा यही निकलता है कि किसी चीज़ की कमी भी महसूस नहीं हुई।

हाफ़िज़ बिगर ब मीतलबी भ्रज़ नसीहे-वहर ?
मय मीख़ुरी भ्रो तुर्रये-दिलदार मीकशी ![7]

इसकी फ़िक्र कभी नहीं हुई कि भ्राख़िरी डिब्बा चलेगा कब तक ? क्योंकि ख्वाजये शीराज़ की मवाज़त[8] हमेशा पेशे-नज़र रहती है :

ता सागरत पुर स्त, बनोशां भ्रो नोश कुन ![9]

१. नशा २. तरल भ्रग्नि ३. साक़ी के शीशे में शराब को देख मानो पानी में भ्राग घोली है ४. पार्थिव ५. उच्चता, भ्रलौकिकता ६. यह शराब हरगिज़ पानी नहीं है, तुम यह कहो कि पानी में सूरज घोला है। ७. दुनिया के ऐश से भ्रय हाफ़िज़ भ्रौर क्या चाहता है ? शराब पी रहा है भ्रौर प्रिया की भ्रलकें खींच रहा है। ८. उपदेश ९. जब तक तेरा प्याला भरा हुभ्रा है पिला भ्रौर ख़ुद भी।

यहाँ हमारे ज़िंदानियों के क़ाफ़िले में इस जिंस का शनाशा कोई नहीं है। अकसर हज़रात दूध और दही के शायक़ हैं। और आप समझ सकते हैं कि दूध और दही की दुनिया चाय की दुनिया से कितनी दूर वाक़े हुई है? उम्रें गुज़र जायें फिर भी यह मसाफ़त[1] तै नहीं हो सकती। कहाँ चाय के ज़ौक़े-लतीफ़[2] का शहरिस्ताने- कैफ़ ओ सुरूर[3] और कहाँ दूध और दही की शिकमपुरी[4] की नगरी!

इक उम्र चाहिये कि गवारा हो नेशे-इश्क़[5]
रक्खी है आज लज़्ज़ते-ज़ख़्मे-जिगर कहाँ!

जवाहरलाल बिला शुबहा चाय के आदी हैं। और चाय पीते भी हैं ख़वासे-योरप[6] की हम मशरबी[7] के ज़ौक़ में बग़ैर दूध की। लेकिन जहाँ तक चाय की नौइयत का ताल्लुक़ है, शाहराहे-आम से बाहर क़दम नहीं निकाल सकते और अपनी लीचू-पीचू ही की क़िस्मों पर क़ानिअ़[8] रहते हैं। ज़ाहिर है कि ऐसी हालत में उन हज़रात को इस चाय के पीने की ज़हमत देना न सिर्फ़ बेसूद था बल्कि "वज़अ़ अुश्शईये फ़ी ग़ैरे महल्लिहि"[9] के हुक्म में दाख़िल था।

मय ब ज़ुह्हाद मकुन अर्ज़ा कि ईं जौहरे-नाब
पेशे-ईं क़ौम ब शोराबये - ज़मज़म नरसद[10]

इन हज़रात में सिर्फ़ एक साहब ऐसे निकले जिन्होंने एक मर्तबा मेरे साथ सफ़र करते हुये यह चाय पी थी। और महसूस किया था कि अगरचे बग़ैर दूध की है, मगर अच्छी है। यानी बेहतर चीज़ तो वही दूध वाला गर्म शरबत हुआ जो रोज़ पिया करते हैं। मगर यह भी चंदां बुरी नहीं। ज़माने की आलमगीर ख़ीरामज़ाक़ी देखते हुये यह उनकी सिर्फ़ "अच्छी है" की दाद भी मुझे इतनी ग़नीमत मालूम हुई कि कभी-कभी उन्हें बुला लिया करता था कि, आइये एक, प्याली इस "अच्छी है" की भी पी लीजिये:

उम्रत दराज़ बाद कि ईं हम ग़नीमत स्त![11]

उनके लिए यह सिर्फ़ "अच्छी" हुई। यहाँ चाय का सारा मामला ही ख़त्म हो जाये मगर यह "अच्छी है" ख़त्म हो जाये। ग़ालिब क्या ख़ूब कह गया है:—

---

१. दूरी २. सुरुचि ३. नशे और मस्ती की नगरी ४. पेट भरने की ५. प्रेम का काँटा ६. योरप के ख़ास लोग ७. एक पंथता ८. संतुष्ट ९. चीज़ को ग़लत जगह रखना १०. शराब तपस्वियों के सामने पेश मत कर क्योंकि यह पवित्र चीज़ इस क़ौम के लोगों के सामने ज़मज़म के ख़ारी पानी के बराबर नहीं है ११. तेरी उम्र लंबी हो कि यह भी ग़नीमत है।

ज़ाहिद मज मा ख़ोशाये-ताके ब चश्मे-कम मबीं
हाँ, न मी दानी कि यक पैमाना ग़ुक़्सां कर्दा श्रेम ![1]

मगर एक डिब्बा कब तक काम दे सकता था ? आख़िर ख़त्म होने पर आया। चीताख़ां ने यहाँ दरयाफ़्त कराया। पूना भी लिखा। लेकिन इस क़िस्म की चाय का कोई सुराग़ नहीं मिला। अब बंबई और कलकत्ता लिखवाया है। देखिए क्या नतीजा निकलता है। एक हफ़्ते से वही हिन्दुस्तानी स्याह पत्ती पी रहा हूँ, और मुस्तक़बिल की उम्मीदों पर जी रहा हूँ :

न कुनी चारा लबे-ख़ुश्क मुसलमानेरा
श्रय ब तरसा बचगां कर्दा मये-नाब सबील।[2]

आज कल चीनी हिन्दुस्तान के तमाम शहरों में फैल गये हैं और हर जगह चीनी रस्टोरां खुल गये हैं। चूंकि अहमदनगर अंग्रेज़ी फ़ौज की बड़ी छावनी है। इसलिये यहाँ भी एक चीनी रेस्टोरां खुल गया है। जेलर को ख़्याल हुआ कि इन लोगों के पास यह चाय ज़रूर होगी। उसने ख़ाली डिब्बा भेज कर दरयाफ़्त कराया। उन्होंने डिब्बा देखते ही कहा कि यह चाय अब कहाँ मिल सकती है ? लेकिन तुम्हें यह डिब्बा कहाँ से मिला ? और इस चाय की यहां ज़रूरत क्या पेश आई ? क्या चीन का कोई बड़ा आदमी यहाँ आ रहा है ? जो वार्डर बाज़ार गया था उसने हरचंद बातें बनाईं मगर उनकी तशफ़्फ़ी[3] नहीं हुई। दूसरे दिन सारे शहर में यह अफ़वाह फैल गई कि मेडम चांग काई शेक क़िले के क़ैदियों से मिलने आ रही है और उसके लिये चीनी चाय का एहतिमाम किया जा रहा है।

ब बीं कि नक़्शे-श्रमलहा च बातिल उफ़्ताद स्त ![4]

चाय के डिब्बे की तह में हमेशा कुछ न कुछ पत्तियों का चूरा बैठ जाया करता है और उसे डिब्बे के साथ फेंक दिया करते हैं। यह आख़िरी डिब्बा ख़त्म होने पर आया तो थोड़ा सा चूरा उसकी तह में भी जमा था। मैंने छोड़ दिया कि इसे क्या काम में लाऊँ। लेकिन चीता ख़ां ने देखा तो कहा — आज-कल लड़ाई की वजह से "ज़ाया मत करो" का नारा ज़बानों पर है। यह चूरा भी क्यों न काम में लाया जाये ? मैंने सोचा कि :

१. श्रय ज़ाहिद हमारी तरफ़ से तू अंगूर के दरख़्त के गुच्छे की तरफ़ उपेक्षा से मत देख, अफ़सोस है कि तू यह नहीं जानता कि मैंने एक पैमाना बरबाद कर दिया है। २. मुसलमान के शुष्क होठों का कोई इलाज नहीं करता और तूने क़ाफ़िरों के बच्चों के लिये पवित्र शराब की प्याऊएँ बना दी हैं ३. सांत्वना ४. देखो उम्मीदों की रेखायें कैसी झूठी हुई हैं।

ब दुर्द ओ साफ़ तुरा हुक्म नेस्त, दम दर कश
कि हर च साक़िये- मा रेख़्त ऐन अल्ताफ़ स्त[1]

चुनांचे यह चूरा भी काम में लाया गया, और उसका एक एक ज़र्रा दम देकर पीता रहा। जब फ़िंजान में चाय डालता था तो उन ज़र्रों की ज़बाने-हाल पुकारती थी :

हर चंद कि नेस्त रंग ओ बूयम
आख़िर न गयाहे- बाग़े-ऊयम ![2]

इस तख़य्युल ने कि इन ज़र्रों के हाथ से कैफ़ ओ सुरूर का जाम ले रहा हूँ, तौसने फ़िक्र[3] की जोलानियों[4] के लिये ताज़ियाने[5] का काम दिया, और अचानक एक दूसरे ही आलम में पहुँचा दिया। हा, मिर्ज़ा बेदिल ने मेरी ज़बानी कहा था :

अगर दिमाग़म दरीं शबिस्तां ख़ुमारे-शर्मे-अदम न गीरद
ब चश्मके-ज़र्रा जाम गीरम ब आं शिकोहे कि जम न गीरद।
दरीं क़लमरौ कफ़े-ग़ुबारम, ब हेच कस हमसरी न दारम
कमाले-मीज़ाने-ऐतबारम बस अस्त कज़ ज़र्रा कम न गीरद ![6]

इस तजरुबे के बाद बेइख़्तियार ख़याल आया कि हम तिश्ना-कामों[7] की क़िस्मत में अब सर-जोश ख़ुम[8] की कैफ़ियतें नहीं रही हैं, तो काश इस तहे-शीशये-नासाफ़[9] ही के चंद घूंट मिल जाया करें। ग़ालिब ने क्या ख़ूब कहा है :

कहते हुये साक़ी से हया आती है, वर्ना
यूं है कि मुझे दुर्दे-तहे-जाम[10] बहुत है।

शकर के मसले ने भी यहाँ आते ही सर उठाया था। मगर मुझे फ़ौरन इसका हल मिल गया, और अब इस तरफ़ से मुतमयिन हूँ। मोटे दानों की साफ़ शकर थोड़ी सी मेरे सफ़री सामान में थी जो कुछ दिनों तक चलती रही।

१. वस्तु मलिन है या निर्मल इससे तुझे कोई सरोकार नहीं और शांत रह। क्योंकि मेरे साक़ी ने जो कुछ ढाला है वह सब उसकी मेहरबानी है २. यद्यपि मुझमें रंग और बू नहीं है पर आख़िरकार हूँ तो मैं उसी के बाग़ की घास। ३. विचारों का घोड़ा ४. रफ़्तार, दौड़ ५. चाबुक ६. अगर मेरा दिमाग़ इस दुनिया में मृत्यु के भय से न डरे तो मैं एक छोटे से छोटे कण से आनंद का जाम पा सकता हूँ और उस शान से कि जमशेद को भी नसीब न हुआ हो। इस दुनिया में मैं एक मुट्ठी ख़ाक हूँ और मेरी किसी से बराबरी नहीं है, लेकिन मेरे ऐतबार की तुला का यही कमाल है कि वह ज़र्रे से कम नहीं स्वीकार करती। ७. तृषित, प्यासे ८. लबरेज़ मटके ९. शीशों की तलछट १०. शराब की प्याली की तलछट

जब ख़त्म हो गई तो मैंने ख़्याल किया कि यहाँ ज़रूर मिल जायगी। नहीं मिली तो डलियों के बक्स तो ज़रूर मिल जायेंगे। लेकिन जब बाज़ार में दरयाफ़्त कराया तो मालूम हुआ, अमन के वक़्तों में भी यहाँ इन चीज़ों की माँग न थी और अब कि जंग की रुकावटों ने राहें रोक दी हैं इनका सुराग़ कहाँ मिल सकता है ? मजबूरन मिसरी मँगवाई और चाहा कि कुटवाकर शकर की तरह काम में लाऊँ। लेकिन कूटने के लिये हावन की ज़रूरत हुई। जेलर से कहा हावन और हावनदस्ता मँगवा दिया जाये। दूसरे दिन मालूम हुआ कि यहाँ न हावन मिलता है न दस्ता। हैरान रह गया कि क्या इस बस्ती में कभी किसी को अपना सर फोड़ने की ज़रूरत पेश नहीं आती ? आख़िर लोग ज़िंदगी कैसे बसर करते हैं ?

हदीसे-इश्क़ च दानद कसे कि दर हमा उम्र
ब सर न कोफ़्ता बाशद दरे-सरायेरा ।[1]

मजबूरन मैंने एक दूसरी तरकीब निकाली। एक साफ़ कपड़े में मिसरी की डलियाँ रखीं और बहुत सा रद्दी काग़ज़ ऊपर तले धर दिया। फिर एक पत्थर उठाकर एक क़ैदी के हवाले किया जो यहाँ काम-काज के लिये लाया गया है कि अपने सर की जगह इसे पीट :

दरीं कि कोहकन अज़ ज़ौक़ दाद जाँ च सुख़न ?
हमीं कि तीशा ब सर देर ज़द, सुख़न बाक़ी स्त ![2]

लेकिन यह गिरफ़्तारे-आलातो वसायल[3] भी कुछ ऐसा :

सर गश्तये-ख़ुमारे-रुसूम ओ क़ुयूद था[4]

कि एक चोट भी क़रीने की[5] न लगा सका। मिसरी तो कुटने से रही। अलबत्ता काग़ज़ के पुर्ज़े-पुर्ज़े उड़ गये। और कपड़े ने भी उसके रूये-सबीह[6] का नक़ाब बनने से इंकार कर दिया :

चली वो बरछी किसी पर किसी के आन लगी !

बहर हाल कई दिनों के बाद ख़ुदा-ख़ुदा करके हावन का चेहरये-ज़श्त[7] नज़र आया। "ज़श्त" इसलिये कहता हूँ कि कभी ऐसा अनघड़ ज़र्फ़ नज़र से नहीं गुज़रा था। आजकल टाटा ने एक किताब शाया की है। यह ख़बर देती है कि

---

१. वह प्रेम की बातें क्या जानता है जिसने तमाम उम्र किसी घर के दरवाज़े को सरसे न पीटा हो २. इस बात में तो शक नहीं कि कोहकन ने अपने अनुराग के कारण जान दे दी। लेकिन बात यही है कि अपने माथे पर बसूला देर में मारा, यह बात शक की है। ३. साधन सामग्री का मोहताज ४. रस्मों और बंदिशों में फँसा था ५. उपयुक्त ६. गोरे चेहरे का ७. बुरा चेहरा, कलमुहाँ।

हज़ारों बरस पहले वस्त[1] हिंद के एक क़बीले ने मुल्क को लोहे और लोहारी की सनअत[2] से आशना किया था। अजब नहीं यह हावन भी उसी क़बीले की दस्तकारियों का बक़िया[3] हो, और इस इंतज़ार में गर्दिशे-लैल ओ नहार[4] के दिन गिनता रहा हो कि कब क़िलऐ-अहमदनगर के ज़िंदानियों का क़ाफ़िला यहाँ पहुँचता है और कब ऐसा होता है कि उन्हें सर फोड़ने के लिये तीशे[5] की जगह हावन दस्ते की ज़रूरत पेश आती है :

शोरीदगी[6] के हाथ से सर है वबाले-दोश[7]
सहरा[8] में अय ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं !

ख़ैर कुछ हो, मिसरी कूटने की राह निकल आई। लेकिन अब कुटी हुई मिसरी मौजूद है, तो वो चीज़ मौजूद नहीं जिसमें मिसरी डाली जाये :

अगर दस्ते कुनम पैदा, नमीयाबम गरेबां रा ![9]

देखिये सिर्फ़ इतनी बात कहनी चाहता था कि चाय ख़त्म हो गई। मगर बाईस सफ़े तमाम हो चुके और अभी तक बात तमाम नहीं हुई :

यक हर्फ़ बेश नेस्त सरासर हदीसे-शौक़
ईं तुर्फ़ातर कि हेच ब पायां नमीरसद ![10]

अबुलकलाम

१. मध्य २. कारीगरी ३. अवशिष्ट ४. रात दिन का चक्कर ५. बसूला ६. परेशानी ७. कंधों का भार ८. जंगल ९. अगर हमारे हाथ हो भी जायें तो गरेबां नहीं है, वह कहाँ से लाऊँ १०. प्रेम की कहानी एक शब्द से ज़्यादा नहीं है फिर भी यह आश्चर्य है कि कोई उसकी अंतिम सीमा तक नहीं पहुँचती।

क़िलये-अहमदनगर
७, जनवरी सन् १९४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुबह चार बजे का जांफ़िज़ा वक़्त है। सर्दी अपने पूरे उरूज[1] पर है। कमरे का दरवाज़ा और खिड़की खुली छोड़ दी है। हवा के बर्फ़ानी झोंके दम ब-दम आ रहे हैं। चाय दम देके अभी-अभी रखी है। मुंतज़िर बैठा हूँ कि पाँच-छह मिनट गुज़र जायें और रंग ओ कैफ़ अपने मैयारी दर्जे पर आ जाये तो दौर शुरू करूँ। दो मर्तबा निगाह घड़ी की तरफ़ उठ चुकी है, मगर पाँच मिनट हैं कि किसी तरह होने पर नहीं आते। ख़्वाजये-शीराज़ का तरानये-सुबहगाही दिल ओ दिमाग़ में गूँज रहा है। बेइख़्तियार जी चाहता है कि गुन-गुनाऊँ मगर हमसायों[2] की नींद में ख़लल पड़ने का अंदेशा लबों को खुलने की इजाज़त नहीं देता। नाचार नोके-क़लम के हवाले करता हूँ :

सुबह स्त ओ ज़ाला मीचकद अज़ अब्रे-बहमनी
बर्गे-सुबूह साज़ ओ बिज़न जामे-यकमनी
गर सुबह दम ख़ुमार तुरा दर्दे-सर दिहद
पेशानिये-ख़ुमार हमां बिह की बिशिकनी
साक़ी, बहोश बाश, कि ग़म दर कमीने-मा स्त
मुतरिब, निगाह दार हमीं रह कि मीज़नी
साक़ी, ब बेनियाज़िये-यज़दां कि मय बयार
ता बशुनवी ज़ सौते मुग़न्नी "हुवलग़नी"[3]

इस इलाक़े में आम तौर पर सर्दी बहुत हल्की होती है। मालूम नहीं कभी इस तरफ़ भी आपका गुज़र हुआ है या नहीं ? और अगर हुआ है तो किस मौसम

---

१. चरम सीमा २. पड़ोसी ३. सुबह का वक़्त है और बहमनी याने फागुनी बादलों से ओस चू रही है। शराब पीने के सामान की तैयारी करो और दस रतल का जाम भर भर कर पीओ याने ख़ूब शराब पीओ। अगर सुबह के वक़्त ख़ुमार की वजह से सर में दर्द हो, तो बेहतर यही है कि ख़ुमार की पेशानी फोड़ दो याने फिर शराब पीओ। साक़ी सावधान रह क्योंकि ग़म मेरे घात में लगा हुआ है, और ऐ गायक जो गीत गा रहा है इसी गीत को जारी रख। ऐ साक़ी तुझे ख़ुदा की बेनियाज़ी याने बेपरवाही की क़सम है तू शराब ला, ताकि गायक के गीत से भी 'हुवलग़नी' की याने वह बेनियाज़ है की आवाज़ सुनने लगे।

में ? लेकिन पूना तो आप बारहा गये होंगे। दिसंबर सन् १९१५ ई. का सफ़र मुझे भी याद है जब मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ़रेंस के इजलास के मौक़े पर आपसे वहाँ मुलाक़ात हुई थी। पूना यहाँ सिर्फ़ अस्सी मील की मसाफ़त पर वाक़े है। और दकन का यह तमाम हिस्सा एक ही सतह-मुर्तफ़ा[1] है। इसलिये यहाँ की मौसमी .हालत को पूना पर क़यास कर लीजिये। अलावा बरीं[2] वक़्त के ज़िंदानी[3] कुछ पूना में रखे गये हैं, कुछ यहाँ। इसलिये वैसे भी अहले-क़यास के नजदीक बक़ौल उर्फ़ी दोनों का हुक्म एक ही हुआ :

यके स्त निस्बते शीराज़ी ओ बदख़्शानी ![4]

फ़ैज़ी को जब अकबर ने सफ़ारत पर यहाँ भेजा था तो मामलात की पेचीदगियों ने उसे दो साल तक हिलने नहीं दिया और यहाँ के हर मौसम के तजरुबे का मौक़ा मिला। उसने अपने मकातीब में अहमदनगर की आबो-हवा के ऐतदाल[5] की बहुत तारीफ़ की थी। फ़ैज़ी से बहुत पहले का यह वाक़या है कि मलिक उत्तुज्जार शीराज़ी ने मौलाना जामी को दकन आने की दावत दी थी और लिखा था कि इस मुल्क में बारह महीने हवाये मौतदिल का लुत्फ़ उठाया जा सकता है। खैर, बारह महीना कहना तो सरीह मुबालग़ा था। मगर इसमें शक नहीं कि यहाँ गरमी के दिन बहुत कम होते हैं और यहाँ की बरसात मालवे की बरसात की तरह बहुत ही पुर लुत्फ़ होती है। ग़ालिबन सन् १९०५ ई० की बात है कि बंबई में मिर्ज़ा फ़ुरसत शीराज़ी साहबे-आसार उलअजम से मिलने का इत्तिफ़ाक़ हुआ था। वो बरसात का मौसम पूना में बसर करके लौटे थे और कहते थे — पूना की हवा के ऐतदाल ने हवाये-शीराज़ की याद ताज़ा कर दी :

अय गुल ब तू ख़ुरसंदम, तू बूये-कसे दारी ![6]

मेरा ज़ाती तजरुबा मामले को यहाँ तक नहीं ले जाता। लेकिन बहर हाल मैं शीराज़ में मुसाफ़िर था और मिर्ज़ाये-मौसूफ़ साहबुल बैत थे — व साहबुल-बैते अदरा बिमा फ़ीहा।[7]

औरंगज़ेब जब दकन आया था तो यहाँ के वर्षाकाल का ऐतदाल उसकी तबए-ख़ुश्क को भी तर किये बग़ैर न रहा था। आपने तारीख़े ख़ाफ़ीख़ां और मासिरूल उमरा वग़ैरह में जा बजा पढ़ा होगा कि बरसात का मौसम अकसर अहमदनगर या पूना में बसर करता था। पूना का नाम उसने "महीनगर"

---

१. पठार २. इसके अलावा ३. क़ैदी ४. शीराज़ी और बदख़्शानियों की एक ही निस्बत है ५. संतुलित ६. अो फूल मैं तुमसे ख़ुश हुआ हूँ, क्योंकि तू किसी की (माशूक़ की) ख़ुशबू रखता है। ७ घर वाला अपने घर की चीज़ों को ज़्यादा जानता है।

रखा था। मगर ज़बानों पर नहीं चढ़ा। उसका इंतक़ाल अहमदनगर ही में हुआ था।

जहाँ तक इस ऐतदाल का ताल्लुक़ गरमी और बरसात के मौसम से है, उसके हुस्न ओ ख़ूबी में कलाम नहीं। मगर मुसीबत यह है कि यहाँ का सर्दी का मौसम भी मौतदिल होता है। हालांकि सर्दी का मौसम एक ऐसा मौसम हुआ कि उसमें जिस क़दर भी ज़्यादती हो, मौसम का हुस्न और ज़िंदगी का ऐश है। इसकी कमी नुक़्स ओ फ़ुतूर का हुक्म रखती है। इसे ऐतदाल कहकर सराहा नहीं जा सकता :

दर मांदये-सलाह ओ फ़सादेम, अलहज़र
ज़ीं रस्महा कि मर्दुमे-आक़िल निहांदा अन्द !

शायद आपको मालूम नहीं कि अवायले-उम्र से मेरी तबीयत का इस बारे में कुछ अजीब हाल रहा है। गरमी कितनी ही मौतदिल हो, मगर मुझे बहुत जल्द परेशां कर देती है, और हमेशा सर्द मौसम का ख़्वास्तगार[1] रहता हूँ। मौसम की ख़ुनकी मेरे लिये ज़िंदगी का असली सरमाया है। यह पूंजी ख़त्म हुई और गोया ज़िंदगी की सारी कैफ़ियतें[2] ख़त्म हो गईं। चूंकि ज़िंदगी बहर-हाल बसर करनी है, इसलिये कोशिश करता रहता हूँ कि हर मौसम से साज़गार रहूँ। लेकिन तबीयत के असली तक़ाज़े पर ग़ालिब नहीं आ सकता। अफ़सोस यह है कि हिन्दुस्तान का मौसमे-सरमा[3] इस दर्जे तुनुकमाया[4] है कि अभी आया नहीं कि जाना शुरू कर देता है, और देखते ही देखते ख़त्म हो जाता है। मेरी तबए-सरासीमा[5] के लिये इस सूरते-हाल में सब्र ओ शिकेब[6] की एक अजीब आज़माइश पैदा हो गई है। जब तक वो आता नहीं उसके इंतज़ार में दिन काटता हूँ। जब आता है तो उसकी आमद की ख़ुशियों में मह्व हो जाता हूँ। लेकिन इसका क़याम इतना मुख़्तसर होता है कि अभी उसकी पिज़ीराइयों[7] के सर ओ बर्ग से फ़ारिग़ नहीं हुआ कि अचानक हिजरान[8] ओ फ़िराक़ का मातम सर पर आ खड़ा होता है :

हम चु ईद कि दर अय्यामे-बहार आमद ओ रफ़्त ![9]

मैं आपको बतलाऊँ, मेरे तख़य्युल में ऐशे-ज़िंदगी का सबसे बेहतर तसव्वुर क्या हो सकता है ? जाड़े का मौसम हो, और जाड़ा भी क़रीब-क़रीब दर्जे इंजमाद[10] का। रात का वक़्त हो। आतिशदान में ऊँचे-ऊँचे शोले भड़क

१. इच्छुक २. ख़ुशियां ३. परिचित ४. जाड़े का मौसम ५. थोड़ा ६. परेशान तबीयत ७. सब्र और धीरज ८. स्वागत ९. साज़सामान १०. वियोग ११. ईद की तरह बहार के दिनों में आयी और चली गई १२. जमने के दर्जे का Freezing point।

रहे हों। और मैं कमरे की सारी मसनदें छोड़कर उसके क़रीब बैठा हूँ और पढ़ने या लिखने में मशग़ूल हूँ :

मन ईं मुक़ाम बदुनिया ओ आक़बत न दिहम
अगरचे दर पैयम उफ़्तंद ख़ल्क़ अंजुमने ![1]

मालूम नहीं बहिश्त के मौसम का क्या हाल होगा ? वहाँ की नहरों का ज़िक्र बहुत सुनने में आया है। डरता हूँ कि कहीं गरमी का मौसम न रहता हो :

सुनते हैं जो बहिश्त की तारीफ़, सब दुरुस्त
लेकिन ख़ुदा करे, वो तेरी जलवागाह हो !

अजीब मामला है। मैंने बारहा ग़ौर किया कि मेरे तसव्वुर में आतिशदान की मौजूदगी को इतनी अहमियत[2] क्यों मिल गई ? लेकिन कुछ बतला नहीं सकता। वाक़या यह है कि सर्दी और आतिशदान का रिश्ता चोली दामन का रिश्ता हुआ। एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। मैं सर्दी के मौसम का नक़्शा अपने ज़हन में खींच ही नहीं सकता, अगर आतिशदान न सुलग रहा हो। फिर आतिशदान भी वही पुरानी रविश का होना चाहिये जिसमें लकड़ियों के बड़े-बड़े कुंदे जलाये जा सकें। बिजली के हीटर से मेरी तस्कीन नहीं होती। बल्कि उसे देखकर तबीयत कुछ चिढ़ सी जाती है। हां गैस के आतिशदान की तरकीब उतनी बेमानी महसूस नहीं होती। क्योंकि पत्थर के टुकड़े रखकर अंगारों के ढेर की सी शक्ल बना देते हैं और उसके नीचे से शोले निकलते रहते हैं। कम से कम शोलों की नौइयत बाक़ी रहती है। फिर भी मैं उसे तरजीह देने के लिये तैयार नहीं। दरअसल मैं सिर्फ़ गरमी ही के लिये आतिशदान का शैदाई नहीं हूँ। मुझे शोलों का मंज़र[3] चाहिये। जब तक शोले भड़कते नज़र न आयें, दिल की प्यास बुझती नहीं। बेदर्दों को जो दिल की जगह बर्फ़ की सिल सीने में छिपाये फिरते हैं, इन मामलात की क्या ख़बर ?

सीनये-गर्म न दारी मतलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नेस्त चु दर मिजमरायत, ऊद मजार ![4]

आप सुनकर हँसेंगे। बारहा ऐसा हुआ कि इस ख़याल से कि सर्दी का ज़्यादा से ज़्यादा अहसास पैदा करूँ, जनवरी की रातों में आसमान के नीचे बैठकर सुबह की चाय पीता रहा, और अपने आपको इस धोके में डालता रहा कि आज सर्दी ख़ूब पड़ रही है :

---

१. मैं यह स्थान इस लोक और परलोक की क़सम नहीं दूंगा। अगर सारी दुनिया मेरे पैरों पर लोगों की भीड़ ही क्यों न पटक दे २. मुख्यता
३. दृश्य ४. पहले आचुका है।

अज़ यक हवीसे-लुत्फ़ कि आं हम दरोग़ बूद
इमशब ज़ दफ़्तरे-गिला सद बाब शुस्ता ऐम ![1]

मेरी तबीयत का भी अजीब हाल है। दूसरों से पहले ख़ुद अपनी हालत पर हँसता हूँ। बचपने में चंद महीने चिनसुरा में बसर किये थे। क्योंकि कलकत्ते में ताऊन[2] फैल रहा था। यह जगह ऐन दरयाये-हुगली पर वाक़े है। मैंने यहीं सबसे पहले तैरना सीखा। सुबह ओ शाम घंटों दरया में तैरता रहता फिर भी जी सैर न होता। अब भी तैराकी के लिये तबीयत हमेशा तरसती रहती है। सुभान अल्ला ! तबए-बूक़लमूं[3] की नैरंग आराइयाँ देखिये ! एक तरफ़ दरया से हम किनारी[4] का यह ज़ौक़ ओ शौक़, दूसरी तरफ़ आग के शोलों से सैराब[5] होने की यह तश्नगी[6] ! शायद यह इसलिये हो कि अक़्लीमे ज़िंदगी की सतह पर पानी बहता है, तह में आग भड़कती रहती है। इसीलिये नुक़्ता सराइयाने[7] हक़ीक़त को कहना पड़ा कि :

हम समंदर बाश ओ हम माही, कि दर अक़्लीमे-इश्क़
रूये-दरया सलसबील ओ क़ारे-दरया आतिश स्त ![8]

लोग गर्मियों में पहाड़ जाते हैं कि वहाँ की गर्मियों का मौसम बसर करें। मैंने कई बार जाड़ों में पहाड़ों की राह ली कि वहाँ जाने का असली मौसम यही है। मुतनब्बी भी क्या बदज़ौक़ था कि लुबनान के मौसम की क़द्र न कर सका। मेरी ज़िंदगी के चंद बेहतरीन हफ़्ते लुबनान में बसर हुये हैं।

वजबालु लुबनानि व कैफ़ बिक़तिम्इहा
वहिअश्शाताअु व सैफ़ुहुन्न शिताउ[9]

ज़िंदगी का एक जाड़ा जो मूसिल में बसर हुआ था, मुझे नहीं भूलता। मूसिल अगरचे जुग़राफ़िया की लकीरों में मोतदिल ख़ित्ते[10] से बाहर नहीं है, लेकिन गिर्द ओ पेश ने उसे सर्द सैर हुदूद में दाख़िल कर दिया है। और कभी कभी तो दियार बकर[11] में ऐसी सख़्त बर्फ़ पड़ती है कि जब तक सड़कों पर खुदाई न हो ले, घरों के किवाड़ खुल नहीं सकते। जिस साल मैं गया था, ग़ैर मामूली बर्फ़ पड़ी थी। बर्फ़बारी के बाद जब आसमान खुलता और आरमीनिया के पहाड़ों की हवायें चलतीं तो क्या अर्ज़ करूँ, ठंडक का क्या आलम

---

१. एक प्यार भरी बात से और वो भी झूठी थी मैंने आज की रात शिकायतों के दफ़्तर के सौ अध्यायों को धो डाला है २. महामारी ३. रंगारंग तबीयत ४. निकटता ५. तृप्त ६. प्यास ७. सत्यद्रष्टा ८. पहले आ चुका है ९. लेबनान के जो पहाड़ हैं उनको कैसे पार किया जा सकता है, यह सर्दी का मौसम है हालांकि वहाँ की गर्मी भी सर्दी होती है। १०. प्रदेश ११. शहर का नाम।

होता ? मुझे याद है कि कभी कभी सर्दी की शिद्दत का यह आलम होता कि मटकों का ढकना हटाते तो पानी की जगह बर्फ़ की सिल दिखाई देती। लेकिन मैं फिर भी सर्दी की बेऐतदालियों का गिलामंद न था। जिस शैख़ के घर मेहमान था, उसके बच्चे दिन भर बर्फ़ के गोलों से खेलते रहते, और कभी कभी कोई छोटी सी गोली मुँह में भी डाल लेते। सित्ती कबीरा यानी शैख़ की मां का लौंडियों को हुक्म था कि मेरा आतिशदान चौबीस घंटे रोशन रखें। खुद भी दिन में दो तीन मर्तबा पुकार के मुझसे पूछ लिया करतीं कि मिजमरा का क्या हाल है ? एक लोहे की केतली आतिशदान की मेहराब में जंजीर से लटकी रहती और पानी हर वक़्त जोश खाता रहता। जिस वक़्त चाहो क़हवा बना कर गरम गरम पी लो। चूंकि देर तक जोश खाये हुये पानी में चाय या काफ़ी बनाना ठीक नहीं, इसलिये मैं उसे उतार कर रख दिया करता। लेकिन लौंडी फिर लटका देती और कहती कि सित्ती का हुक्म ऐसा ही है। चाय बनाने का यही तरीक़ा मैंने शुमाली[1] ईरान के आम घरों में भी देखा। आतिशदान की आग सिर्फ़ कमरा गर्म करने ही के काम में नहीं लाई जाती, बल्कि बावरचीखाने का भी आधा काम दे देती है। लोग आतिशदान की आग पर चाय का पानी भी गरम कर लेते हैं और खाना भी पका लेते हैं। अगर शुमाली ईरान के लोग ऐसा न करें तो इतना ईंधन कहाँ से लायें कि कमरों को भी गर्म रक्खें और बावरचीखाने का चूल्हा भी सुलगता रहे ? वहाँ के मकानों में आतिशदान इतने कुशादा होते हैं कि कई कई देगचियाँ उनमें बयक वक़्त लटक सकती हैं। आतिशदान की मेहराब में तामीर के वक़्त हल्क़े[2] डाल दिये जाते हैं, ठीक उसी तरह के जैसे हमारे मकानों की छतों में पड़े होते हैं। इन्हीं हल्क़ों में जंजीर डाल दी और केतली या देगची लटका दी। बाज शहरों की सरायों के हर कमरे में आतिशदान बना है। जाड़ों में सरायची इसी आतिशदान पर पुलाव दम देकर आपको खिला देगा और कहेगा "जाये-गर्म मगुज़ारीद मो बख़ुरीद !"[3]

अगस्त के महीने में जब हम यहाँ लाये गये तो बारिश का मौसम उरूज पर था और हवा खुशगवार थी। बिल्कुल ऐसी फ़ज़ा रहती थी जैसी आपने जौलाई और अगस्त में पूना की देखी होगी। पानी यहाँ आम तौर पर बीस पच्चीस इंच से ज्यादा नहीं बरसता। लेकिन पानी की दो चार बूंदें भी काफ़ी खुशगवारी पैदा कर देती हैं। ऊमस बहुत कम होती है। हवा बराबर चलती रहती है।

सितंबर और अक्तूबर इसी आलम में गुज़रा। लेकिन जब नवंबर शुरू

१. उत्तरी २. कड़े ३. गर्म जगह को मत छोड़ो और खालो।

हुआ तो तबीयत इस ख़याल से अफ़सुर्दा रहने लगी कि यहाँ सर्दी का मौसम बहुत हल्का होता है। छावनी का कमांडिंग आफ़ीसर जो पिछला जाड़ा यहाँ बसर कर चुका है, कहता था कि पूना से कुछ ज़्यादा सर्दी थी। लेकिन वो भी बमुश्किल दस बारह दिन तक रही होगी। आम तौर पर दिसंबर और जनवरी का मौसम यहाँ ऐसा रहता है जैसा देहली और पंजाब में जाड़े के इब्तदाई दिनों का होता है। इन ख़बरों ने तबीयत को बिल्कुल मायूस[१] कर दिया था। लेकिन जूं ही दिसंबर शुरू हुआ मौसम ने अचानक करवट बदली। दो दिन तक बादल छाया रहा और फिर जो मतला[२] खुला तो कुछ न पूछिये मौसम की फ़ैयाज़ियों[३] का क्या आलम हुआ? देहली और लाहौर के चिल्ले[४] का मज़ा याद आ गया। यहाँ के कमरों में भला आतिशदान कहाँ? लेकिन अगर होता तो मौसम ऐसा ज़रूर हो गया था कि मैं लकड़ियाँ चुननी शुरू कर देता। चीताख़ां जो हर वक़्त ख़ाकी तख़फ़ीफ़ा (याने शर्ट) पहने रहता था, यकायक गर्म सूट पहन कर आने लगा और कहने लगा कि सर्दी से मेरे घुटनों में दर्द होने लगा है। छावनी से ख़बर आई कि एक अंग्रेज़ सिपाही जो रात के पहरे पर था, सुबह निमोनिया में मुब्तिला पाया गया और शाम होते होते ख़त्म हो गया। हमारे क़ाफ़िले के ज़िंदानियों का यह हाल हुआ कि दोपहर के वक़्त भी चादर जिस्म से चिपटी रहने लगी। जिसे देखो, सर्दी की बेजासितानियों का शाकी[५] है, और धूप में बैठ कर तेल की मालिश करा रहा है कि तमाम जिस्म फटकर छलनी हो गया। हत्ता कि जो साहब देहली और यू. पी. के रहने वाले हैं और नैनीताल के मौसम के आदी रह चुके हैं वो भी यहाँ के जाड़े के क़ायल हो गये।

चुनां क़हत साली शुद अंदर दमिश्क़
कि यारां फ़रामोश करदंद इश्क़[६]

ज़िले का कलक्टर इसी इलाक़े का बाशिंदा है। वो आया तो कहने लगा कि सालहा साल गुज़र गये, मैंने ऐसा जाड़ा इस इलाक़े में नहीं देखा। पारा चालीस दर्जे से भी नीचे उतर चुका है। यहाँ सब हैरान हैं कि इस साल कौन सी नई बात हो गई है कि अचानक पंजाब की सर्दी अहमदनगर पहुँच गई। मैंने जी में कहा, इन बेख़बरों को क्या मालूम कि हम ज़िंदानियों और ख़राबातियों की दुआयें क्या असर रखती हैं "रुब्ब अशअस मदफ़ूइन बिल अबवाबि

१. निराश २. आसमान साफ़ होना ३. दाक्षिण्यता ४. पोस महीने से ४० दिन तक बड़े ज़ोरों का जाड़ा पड़ता है उसे चिल्ले का जाड़ा कहते हैं। ५. शिकायत करनेवाला ६. शैख़सादी का शेर है कहता है कि दमिश्क़ में ऐसा अकाल पड़ा कि मित्र-दोस्त आपस के प्रेम को भूल गये।

लव अक़सम अलल्लाहे लअबर्रहु[1]

क़िबाये-शेवये-रहमत कि दर लिबासे-बहार
बउज़्रे ख़्वाहीये-रिंदाने-बादा-नोश आमद ![2]

यहाँ के लोग तो सर्दी की सख़्तियों की शिकायत कर रहे हैं, और मेरे दिले-आरज़ूमंद से अब भी सदाये हल्मिनमज़ीद[3] उठ रही है। कलकत्ते से गरम कपड़े आये पड़े हैं। मैंने अभी तक उन्हें छूआ भी नहीं। इस डर से कि अगर गरम कपड़े पहनूंगा तो सर्दी का अहसास कम हो जायगा और तख़य्युल को जौलानियों का मौक़ा नहीं मिलेगा। अभी तक गर्मियों ही के लिबास में वक़्त निकाल रहा हूँ। अलबत्ता सुबह उठता हूँ तो ऊनी चादर दुहरी करके कांधों पर डाल लेता हूँ। मेरा और सर्दी के मौसम का मामला तो वो हो गया जो नज़ीरी नीशापुरी को पेश आया था :

रू दर विदाम्र ओ मन ब जज़ा, कज मय ओ बहार
रतले सह चार माण्दा व रोज़े सह चार ख़ुश ![4]

यहाँ तक लिख चुका था कि ख़याल हुआ तमहीद में ग्यारह सफ़े स्याह हो गये, और अभी तक हर्फ़े-मुद्दआ ज़बाने-क़लम पर नहीं आया। ताज़ा तरीन वाक़या यह है कि एक माह की महरूमी और इंतज़ार के बाद परसों चीताख़ां ने मुज्दये-कामरानी[5] सुनाया कि बंबई के आर्मी एंड नेवी स्टोर ने व्हाइट जेस्मीन चाय कहीं से ढूंढ़ निकाली है, और एक पौंड का पारसल वी. पी. कर दिया है। चुनांचे कल पारसल पहुँचा। चीताख़ां ने उसकी क़ीमत का गिला करना शुरू कर दिया, कि तुम्हें एक पौंड चाय के लिये इतनी क़ीमत देनी पड़ी। हालांकि वाक़या यह है कि मुझे इसकी अरज़ानी ने हैरान कर दिया है। इस नायाबी के ज़माने में अगर स्टोर इससे दुगनी रक़म का भी तलबगार होता, जब भी यह जिंसे-गरांमाया[6] अरज़ां थी :

१. बहुत से ऐसे लोग कि जिनके बाल बिखरे हुये होते हैं और लोग जिन्हें अपने दरवाज़ों से दुत्कार देते हैं अगर वे अल्लाह पर भरोसा करके किसी चीज़ की क़सम खा बैठें तो अल्लाह उनकी क़सम को पूरा कर ही देता है २. तेरी मेहरबानियों की बलिहारी कि बहार के भेस में पियक्कड़ रिंदों के लिये बहाना बनकर आई ३. और हो तो लाओ की आवाज़ ४. वह जाने के लिये है और मैं अधीर होकर रो रहा हूँ, कि शराब और बहार के दिन तीन या चार पैमाने लुढ़काये और तीन चार दिन ख़ुशी रही ५. कामयाबी की ख़बर ६. क़ीमती।

अयं कि मी गोई "चरा जामे बजाने मी ख़री ?"
ईं सुख़न बा साक़िये मा गो कि अरज़ां कर्दा अस्त[1]

हुस्ने-इत्तिफ़ाक़ देखिये कि इधर यह पारसल पहुँचा, उधर बंबई से बाज़ दोस्तों ने भी चंद डिब्बे चीनी दोस्तों से लेकर भिजवा दिये। अब गिरफ़्तारी का ज़माना जितना भी तूल खींचे चाय की कमी का अंदेशा बाक़ी नहीं रहा।

बहर हाल जो बात कहना चाहता हूँ वो यह है कि इस एक वाक़ये ने सुबह के मामले की पूरी फ़िज़ा बदल दी, और जूये-तबअ़े अफ़सुर्दा[2] का आबे-रफ़्ता[3] फिर वापस आ गया। अब फिर वही सुबह की मजलिसे-तरब[4] आरास्ता है, वही तबअ़े-सियहमस्त[5] की आलमफ़रामोशियाँ[6] हैं, और वही फ़िक्रे-दरमांदाये कार[7] की आसमां-पैमाइयाँ :

गौहरे-मख़ज़ने-असरार हमानस्त कि बूद
हुक़्क़ये-मिहर बदां मुहर ओ निशानेस्त कि बूद
हाफ़िज़ा बाज़ नुमा क़िस्सये-ख़ूनाबये-चश्म
कि दरीं चश्मा हमां आब-रवानस्त कि बूद

अबुलकलाम

१. तू कहता है कि मैं जान के बदले में शराब क्यों ख़रीदता हूँ। यह बात मेरे साक़ी से कह कि उसने इसे सस्ता कर दिया है, याने कि मेरी जान उसकी अपेक्षा बहुत सस्ती है २. तबियत की सूखी नदी ३. गया हुआ पानी ४. ख़ुशी की मजलिस ५. मदमस्त प्रकृति ६. विश्वविस्मृतता ७. काम से थकी हुई फ़िक्र ८. (ईश्वरीय) रहस्य के ख़जाने में वही मोती है जो कि था और (उसकी) कृपा की पिटारी पर वही मुहर और निशान है जो कि था। अब हाफ़िज़ रक्तमिश्रित आँसू बरसानेवाली आँखों की कहानी कह क्योंकि इस दरया में वही पानी बह रहा है जो कि था।

क़िलये-अहमदनगर
६, जनवरी सन १९४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

अनानियती अदबियात (Egotistic Literature) की निस्बत ज़मानये-हाल के बाज़ नक़्क़ादों ने यह राय ज़ाहिर की है कि वो या तो बहुत ज़्यादा दिलपिज़ीर होंगी या बहुत ज़्यादा नागवार। किसी दरम्यानी दर्जे की यहाँ गुंजाइश नहीं। "अनानियती अदबियात" से मक़सूद तमाम इस तरह की ख़ामाफ़रसाइयाँ[1] हैं जिनमें एक मुसन्निफ़ का इग़ो (Ego) याने "मैं" नुमायां तौर पर सर उठाता है। मसलन ख़ुदनविश्ता[2] सवानह उम्रियाँ[3] ज़ाती वारदात ओ तास्सुरात, मशाहिदात ओ तजारिब[4], शख़्सी उस्लूबे-नज़र[5] ओ फ़िक्र। मैंने "नुमायां तौर"[6] की क़ैद इसलिये लगाई कि अगर न लगाई जाये तो दायरा बहुत ज़्यादा वसीअ[7] हो जायेगा। क्योंकि ग़ैर नुमायां तौर पर तो हर तरह की मुसन्नफ़ात[8] में मुसन्निफ़[9] की अनानियत उभर सकती है और उभरती रहती है। अगर इस ऐतबार से सूरते-हाल पर नज़र डालिये तो हमारी दरमांदगियों का कुछ अजीब हाल है। हम अपने ज़हनी आसार को हर चीज़ से बचा ले जा सकते हैं, मग़र ख़ुद अपने आप से बचा नहीं सकते। हम कितना ही ज़मीरे-ग़ायब[10] और ज़मीरे मुख़ातिब[11] के पर्दों में छिप कर चलें, लेकिन ज़मीरे-मुतकल्लिम[12] की परछाईं पड़ती ही रहेगी। हम जहाँ जाते हैं, हमारा साया हमारे साथ जाता है। हमारी कितनी ही ख़ुदफ़रामोशियाँ हैं जो दर असल हमारी ख़ुद परस्तियों ही से पैदा होती हैं। यही वजह है कि एक नुक्ता-शनासे हक़ीक़त को कहना पड़ा था :

फ़क़ुल्तुसहा मा अज़नब्तु क़ालत मुजीबतन
उजूदुक ज़ंबुन लायुक़ा सुबिहि ज़ंबू[13]

कल एक ज़ेरे-तस्वीद[14] किताब का एक ख़ास मुक़ाम लिख रहा था कि मबहस की मुनासिबत से क़ौले-मुंदरजये-सदर[15] ज़हन में ताज़ा हो गया और

१. स्वलिखित २. लेख ३. जीवन चरित्र ४. स्वानुभव ५ अपना दृष्टिकोण और चिंतन ६. प्रगटतः ७. विस्तृत ८ रचना ९. लेखक १०. अन्य पुरुष ११. मध्यम पुरुष १२. उत्तम पुरुष १३. मैंने उससे पूछा कि मैंने क्या गुनाह किया है उसने जवाब दिया कि तेरा अस्तित्व ही गुनाह है जिसकी कोई गुनाह बराबरी नहीं कर सकता १४. जो लिख रहा था १५. उपरोक्त बात।

इस वक़्त हस्बे-मामूल सुबह को लिखने बैठा तो बेइख़्तियार सामने आ खड़ा हुआ। आइये आज थोड़ी देर के लिये रुक कर इस मामले पर ग़ौर कर लें।

एक अदीब,[1] एक शायर, एक मुसव्विर,[2] एक अहले-क़लम[3] की अनानियत (Egotism) क्या है? अभी न तो फ़िलसफ़ा व अख़लाक़ के मज़हबे-अना (Egoism) का रुख़ कीजिये, न "ख़ुदी" (I am-ness) मुस्तलहये-तसव्वुफ़ में जाइये। सिर्फ़ एक आम तहलीली ज़ावियये-निगाह से मामले को देखिये। आपको साफ़ दिखाई देगा कि यह अनानियत दर असल इसके सिवा कुछ नहीं है कि उसकी फ़िक्री इंफ़रादिय्यत[4] का एक क़ुदरती सर-जोश[5] है जिसे वो दबा नहीं सकता। अगर दबाना चाहता है तो और ज़्यादा उभरने लगती है और अपनी हस्ती का अिसबात करती है: अबुलअला मुअर्री ने जब अपना मशहूर लामिया कहा था :

अला फ़ी सबीलिल मज्दि मा अना फ़ाइलुन्
अफ़ाफ़ुन् व अिक़दामुन्[1] व हज़्मुन् व नाइलु

या जब अबू-फ़रास हमदानी ने अपना लाफ़ानी राइय्या कहा :

अराक आसहमअे शीमतुकस्सब्रु
अमालिल हवा नहा अलेक वला अम्रु[7]

या जब इब्ने-सनाउलमुल्क ने अपने ज़माने को मुख़ातिब किया था :

व इन्नक अबदी या ज़मानु व इन्ननि
अलर्रग़्मे मिन्नी इन अरालक सैयदा
व मा अनाराज़िन इन्ननि वातियुस्सरा
बलि हिम्मतुन् ला तरतज़ल उफ़ुक़ मक़अद[8]

या जब फ़िरदौसी के क़लम से निकला था :

बसे रंज बुर्दम दरीं साल सी
अजम ज़िंदा कर्दम बदीं पारसी![9]

१. साहित्यकार २. चित्रकार ३. लेखक ४. विचारों की वैयक्तिता ५. उबाल ६. देखो बुज़ुर्गी के रास्ते में मैं क्या करने वाला हूँ, मन की पवित्रता, प्रगति, सम्हाल और दृढ़ता ७. मैं देख रहा हूँ कि तू आँसू बहाने से इंकार करता है और तेरी आदत सब्र करने की है, क्या मुहब्बत ने तुझे इस बात के करने का कोई हुक्म नहीं दिया। ८ ओ ज़माने तू मेरा ग़ुलाम है और मैं अपनी तबियत से मजबूर हूँ कि तुझे अपना सरदार मानूँ और मैं ख़ुश नहीं हूँ कि मैं ज़मीन पर चलूँ और मेरी हिम्मत तो यह है कि मैं आसमान पर बैठना भी पसंद नहीं करता ९. इन तीस सालों में मैंने बहुत सी तकलीफ़ें उठाई और इस शाहनामे से फ़ारस को ज़िंदा कर दिया।

या[1] मसलन जब फ़ैज़ी ने नल दमन नज़्म करते हुये ये अशआर कहे थे :

इमरोज़ न शायरम, हकीमम
दानिंदये-हादिस ओ क़दीमम
हर मूये ज़ मन तमाम गोशस्त
ख़ामोशिये-मन बसद ख़रोशस्त
ईं बादा कि जोशद अज़ अयाग़म
ख़ूने स्त चकीदा अज़ दिमाग़म
सद दीदा बवर्तये-दिल उफ़्ताद
कीं मौज गुहर ब साहिल उफ़्ताद
बगुदाख़्ता आबगीनये - दिल
आईना दिहम बदस्ते - महफ़िल
आनम कि बसहरकारीये-अर्फ़
अज़ शोला तराशकर्दाअम हर्फ़
बांगे क़लमम दरीं शबे - तार
बस मानिये-ख़ुफ़्ता कर्दा बेदार
मी रेख़्त ज़ सहरकारीये - अर्फ़
अज़ सुबह सितारा ओ ज़ मन हर्फ़
हर नग़मा कि बस्ताअम बरीं तार
नाक़ूश निहुफ़्ताअम ब ज़ुन्नार
ईं गुल कि ब बोस्तां निसारी स्त
अज़ मन ब बहार यादगारी स्त ![1]

१. आज मैं कवि नहीं, बल्कि ज्ञानी हूँ। नित्य और अनित्य सब बातों का जानने वाला हूँ। मेरे प्रत्येक बाल एक कान हैं, मेरी ख़ामोशी में भी सैकड़ों बातें हैं। यह शराब जो मेरे प्याले से छलक रही है, मेरे दिमाग़ से टपका हुआ ख़ून है। दिल के भँवर में सैकड़ों आँखें पड़ी हैं और इस मौज ने मोतियों को किनारे पर ला पटका है। दिल का नगीना पिघला दिया है और उससे मैंने आईना बना कर महफ़िल के हाथ में दिया है। मैं वो हूँ कि अपने जादू से अँगारे से शब्द तराशे हैं और मेरी क़लम की आवाज़ ने इस अँधेरी रात में बहुत से गूढ़ अर्थों को जगा दिया है। जादूगरी से सुबह से सितारे और मुझ से शब्द लेकर बखेर दिये हैं। हर गीत जो मैंने इस तार पर बाँधा है मैंने जनेऊ के डोरे में शंख छिपा दिया है। यह गुल जो बाग़ पर निछावर है वह मेरी तरफ़ से बहार की यादगारी है।

या जब हमारे मीर अनीस ने कहा था :

> लगा रहा हूँ मज़ामीने-नौ के फिर अंबार
> ख़बर करो मिरे ख़िरमन के ख़ोशाचीनों को

तो यह महज़ शायराना तअल्लियाँ[1] न थीं। यह उनकी पुरजोश इंफ़रादिय्यत[2] थी जो बेइख़्तियार चीख़ रही थी !

लेकिन साथ ही हम देखते हैं कि अनानियत का यह शऊर कुछ इस नौइयत[3] का वाक़े हुआ है कि हर इंफ़रादी अनानियत अपने अंदरूनी आईने में जो अक्स डालती है, बैरूनी आईनों में उससे बिल्कुल उल्टा अक्स पड़ने लगता है। अंदर के आईनों में एक बड़ा वजूद दिखाई देता है, बाहर के तमाम आईनों में एक छोटी से छोटी शक्ल उभरने लगती है :

> ख़ुदी आईना दारद कि महरूम स्त इज़हारश ![4]

यही सूरते-हाल है जहाँ से हर मुसन्निफ़ की जो ख़ुद अपनी निस्बत कुछ कहना चाहता है, सारी मुश्किलें उभरनी शुरू हो जाती हैं। वो जबकि ख़ुद अपने अक्स को जो उसके अंदरूनी आईने में पड़ रहा है, झुठला नहीं सकता तो अचानक क्या देखता है कि बाहर के तमाम आईने उसे झुठला रहे हैं। जो "मैं" ख़ुद उसके लिये बेहद अहमियत[5] रखती है, वही दूसरों की निगाहों में यकसर[6] ग़ैर अहम हो रही है। वो अपने आपको एक ऐसी हालत में महसूस करने लगता है जैसे एक मुसव्विर तसवीर खींचने के लिये मू क़लम[7] उठाये, मगर उसे यक़ीन हो कि मैं कितनी ही मुसव्विराना क़ुव्वत काम में लाऊँ, मेरी निगाह के सिवा और कोई निगाह इस मुरक़्क़े[8] की दिलावेज़ी नहीं देख सकेगी :

> आईना नक़्श-बंद तिलिस्मे-ख़याल नेस्त
> तसवीरे-ख़ुद बलोहे-दिगर मीकशेम मा ![9]

इस मुश्किल से सिर्फ़ ख़ाल ख़ाल[10] मुसन्निफ़ ही ओहदा बरा[11] हो सकते थे, और हुये हैं। ये वो लोग हैं जो अपनी "अनानियत" को बग़ैर किसी नुमाइशी वज़ा[12] में सजाये दूसरों के सामने ले आने की सलाहियत[13] रखते थे। दुनिया के सामने उनकी "अनानियत" आई, मगर इस तरह आई जैसे एक बेतकल्लुफ़ आदमी बग़ैर सज धज बनाये आ खड़ा हो। यह बात कि एक आदमी बग़ैर किसी बनावट के अपनी वाक़ई सूरत में सामने आ गया, नमूदे हक़ीक़त की एक

---

१. बड़प्पन २. अहं ३. प्रकार का ४. ख़ुदी वह आईना है कि जिसका इज़हार नहीं हो सकता ५. विशेषता ६. बिल्कुल ७. तूलिका ८. चित्र की ९. आईना ख़यालों के तिलिस्म की नक़्शबंदी नहीं कर सकती हम अपनी तसवीर दूसरे काग़ज़ पर उतारते हैं १०. थोड़े ही ११. सफल १२. प्रदर्शन के रूप में १३. योग्यता।

ख़ास दिलकशी रखती है और इसलिये दुनिया की निगाहों को बेइख़्तियार अपनी तरफ़ खींच लेती है। जो ख़ास ख़ास अदीब ऐसा कर सके उनकी "मैं" ख़ुद उनके लिये कितनी ही बड़ी और दूसरों के लिये कितनी ही छोटी वाक़े हुई हो, लेकिन दुनिया उसकी दिलपिज़ीरी से इंकार न कर सकी। दुनिया को उनकी अनानियत की मिक़दार नापने की मोहलत ही नहीं मिली। वो उसकी बेतकल्लुफ़ाना वाक़ईयत देखकर बेख़ुद हो गई!

एक आदमी जब अपनी तसवीर उतरवानी चाहता है तो ख़ुद उसे इसका शऊर हो या न हो, लेकिन इस ख़्वाहिश की तह में उसकी अनानियत की एक धीमी आवाज़ ज़रूर बोलने लगती है। तसवीर उतरवाने की मुख़्तलिफ़ हालतें होती हैं। एक हालत वो है जिसे मुसव्विराना वज़ा (Pose) से ताबीर किया जाता है। यानी तसवीर उतरवाने के लिये एक ख़ास तरह का अंदाज़ बतकल्लुफ़ इख़्तियार कर लेना। एक माहिरे-फ़न मुसव्विर जानता है कि किस चेहरे और जिस्म की मुसव्विराना वज़ा कैसी होनी चाहिये? वो जब तक निशस्त ओ वज़ा[1] की नोक पलक दुरुस्त नहीं कर लेगा, तसवीर नहीं उतारेगा। सौ में निन्यानवे आदमियों की ख़्वाहिश यही होती है कि निशस्त और ढंग सजा के तसवीर उतरवायें। लेकिन फ़र्ज़ करो, एक आदमी बग़ैर किसी तैयारी और बनाई अंदाज़[2] के आलये-इनअकास[3] के सामने आ गया। और इसी आलम में उसकी तसवीर उतर आई, तो ऐसी तसवीर किस निगाह से देखी जायेगी? ऐसी तसवीर महज़ इसलिये कि बेसाख़्तगी और वाक़ईयत की ठीक ठीक ताबीर पेश करती है, यक़ीनन एक ख़ास क़द्र ओ क़ीमत पैदा कर लेगी। और जिस साहबे-नज़र के सामने जायेगी उसकी तवज्जो अपनी तरफ़ खींच लेगी। वो यह नहीं देखेगा कि जिसकी तसवीर है वो ख़ुद कैसा है? वो इसमें मह्व[4] हो जायेगा कि ख़ुद तसवीर कितनी बेसाख़्ता है!

बिऐनिहि[5] यही मिसाल उस सूरते-हाल की भी समझ लीजिये। जो मुसन्निफ़ अपनी अनानियत की बेसाख़्ता तसवीर खींच दे सकते हैं, वो इस मामले की सारी मुश्किलों पर ग़ालिब आ जाते हैं। उन्होंने अपनी तसवीर ख़ुद अपने क़लम से खींचीं, लेकिन यह बात उसकी दिलावेज़ी में कुछ मुख़िल[6] न हो सकी। क्योंकि तसवीर बेतकल्लुफ़ और बेसाख़्ता खींचीं। वो लोगों को बा अज़मत[7] दिखाई दे या न दे लेकिन उसकी बेसाख़्तगी की गीराई[8] सबकी निगाहों को लुभा लेगी। ऐसे ही मुसन्निफ़ हैं जो अपनी अनानियत को लाफ़ानी दिलपिज़ीरी का जामा पहना देते हैं।

---

१. बैठने का तौर तरीक़ा २. तौर तरीक़े के ढंग के ३. कैमरे के ४. तल्लीन ५. ज्यों की त्यों ६. ख़लल डालनेवाली ७. शानदार ८. पकड़।

लेकिन यह बात भी याद रखनी चाहिये कि इंसान की तमाम मानवी महसूसात[1] की तरह उसकी इंफ़रादिय्यत की नमूद भी मुख्तलिफ़ हालतों में मुख्तलिफ़ तरह की नौइयत रखती है। कभी वो सोती रहती है, कभी जाग उठती है, कभी उठकर बैठ जाती है, और फिर कभी ज़ोर शोर से उछलने लगती है। इंसान की सारी क़ुव्वतों की तरह वो भी नश्वो नुमा की मोहताज हुई। जिस तरह हर इंसान का ज़हन ओ इदराक यकसां दर्जे का नहीं होता, उसी तरह इंफ़रादिय्यत का जोश भी हर देग में एक ही तरह नहीं उबलता। मदारिज का यही फ़र्क़ है जो हम तमाम अदीबों, शायरों, मुसव्विरों और मूसीक़ी नवाज़ों में पाते हैं। अक्सरों की इंफ़रादिय्यत इतनी पुरजोश होती है कि जब कभी बोलेगी, सारा गिर्द ओ पेश गूंज उठेगा :

यक बार नाला कर्दाअम अज़ दर्दे-इश्तियाक़
अज़ शिश जहत हनूंज़ सदा मीतवां शुनीद ![2]

इसीलिये अरब शायर को कहना पड़ा था :

व मद्दहरु इल्ला मिन रुवाति क़सायिदी
इज़ाक़ुल्तु शेरन् अस्बहद्दहरु मुंशिदन्[3]

ऐसे अफ़राद[4] अपनी "मैं" का सर-जोश किसी तरह नहीं दबा सकते। उनकी ख़ामोशी भी चीख़ने वाली और उनका सुकून[5] भी तड़पने वाला होता है। उनकी इंफ़रादिय्यत दबाने से और ज्यादा उछलने लगेगी। ऐसे अफ़राद जब कभी "मैं" बोलते हैं, तो उसमें क़स्द[6] बनावट, और नुमाइश को कोई दख़ल नहीं होता। वो सरतासर हक़ीक़ते-हाल की एक बेइख्तियाराना चीख़ होती है। फ़ैज़ी की एक चीख़ भी जो इस वक़्त तक हमारे सामिआ[7] से टकरा रही है :

मी कशद शोला सरे अज़ दिले-सद पारये-मा
जोशे-आतिश बुवद इमरोज़ बफ़व्वारये मा ![8]

लेकिन हर क़ानून की तरह यहाँ भी मुस्तस्नियात हैं। हमें तसलीम[9] करना पड़ता है कि कभी कभी ऐसी शख्सीयतें भी दुनिया के मसरह (स्टेज) पर नमूदार हो जाती हैं जिनकी अनानियत की मिक़दार इज़ाफ़ी[10] नहीं होती,

१. स्वानुभव २. मैंने प्रेम के दर्द के कारण एक बार चीख़ की है आज छहों दिशाओं से उसकी आवाज़ सुनी जा सकती है ३. दुनिया के सिवा मेरे क़शीदों का कोई पढ़ने वाला नहीं है, जब मैं शेर कहता हूँ तो सारी दुनिया शेर कहने लगती है ४. व्यक्ति ५. मौन ६. इरादा ७. कानों से ८. मेरे दिल के सौ टुकड़ों से शोले उठ रहे हैं आज मेरे फ़व्वारे में आग का जोश है ९. अपवाद १०. सापेक्ष।

बल्कि मुतलक़[1] नोइयत रखती है। याने खुद उन्हें उनकी अनानियत जितनी बड़ी दिखाई देती है, उतनी ही बड़ी दूसरे भी देखने लगते हैं। उनकी अनानियत की परछाईं जब कभी पड़ेगी, तो ख्वाह अंदर का आईना हो ख्वाह बाहर का, उसके अबग्रादे-सलासा (Dimensions) हमेशा यकसां तौर पर नमूदार होंगे।

ऐसे अख़स्सुलख़वास[2] अफ़राद को आम मैयारे-नज़र से अलग रखना पड़ेगा। ऐसे लोग फ़िक्र ओ नज़र के आम तराज़ुओं में नहीं तोले जा सकते। अदब ओ तसनीफ़ के आम क़वानीन[3] उन्हें अपने कुल्लियों[4] से नहीं पकड़ सकते। ज़माने को उनका यह हक़ तस्लीम कर लेना पड़ता है कि वो जितनी मर्तबा भी चाहें "मैं" बोलते रहें। उनकी हर "मैं" उनकी हर "वो" और "तुम" से कहीं ज़्यादा दिलपिज़ीर होती है।

अनानियती अदबियात की कोई ख़ास क़िस्म ले लीजिये। मसलन खुद-नविश्ता सवानह ओ वारदात। और फिर मिसाल के लिये बग़ैर काविश[5] के चंद शख्सीयतें चुन लीजिये। मसलन संट आगस्टाइन, (Augustine) रूसो, स्ट्रेंडबर्ग (Strind Berg) टालस्टाय, अनातोले-फ्रांस, आन्द्री जीद (Andre Gide)। इनके खुद नविश्ता सवानह छह मुख्तलिफ़ नोइयतों की छह मुख्तलिफ़ तस्वीरें हैं। लेकिन सबने यकसां तौर पर अदबियाते-आलम[6] में दायमी[7] जगह हासिल कर ली। क्योंकि तसवीरें बेसाख्ता और वाक़ई हैं। मशरिक़ी अदबियात में मसलन ग़ज़ाली, इब्ने-खल्लदून, बाबर, जहाँगीर और मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी के खुद नविश्ता हालात सामने लाइये। हम कितनी ही मुख़ालिफ़ाना निगाहों से उन्हें पढ़ें, लेकिन उनकी दिलावेज़ी के मुतालबे[8] से इंकार नहीं कर सकते। ग़ज़ाली ने अपने फ़िक्री इंफ़आलात[9] की सरगुज़श्त सुनाई। इब्ने खल्लदून ने अपने तालीमी और सियासी इख़्तलाफ़ की दास्तांसराई की, बाबर ने जंग ओ अमन के वाक़यात ओ वारदात क़लमबंद किये। जहाँगीर ने तख्ते-शहंशाही पर बैठकर वक़ाया-निगारी का क़लमदान तलब किया। इन सब में उनकी अनानियतें बेपर्दा बोल रही हैं। हम इन्हें खुद उनकी निगाहों से नहीं देख सकते। ताहम देखते हैं और उनकी लाफ़ानी दिलावेज़ी से इंकार नहीं कर सकते। क्योंकि बग़ैर किसी बनावट के सामने आ गई हैं।

बदायूनी का मामला औरों से अलग है। तबक़ये-अवाम[10] का एक फ़र्द

---

१. विशुद्ध २. विशिष्टों में विशिष्ट व्यक्ति ३. क़ानून का बहुवचन ४. सिद्धान्तों में ५. प्रयत्न के ६. दुनिया के साहित्य में ७. शाश्वत ८. तलब ९. वैचारिक प्रतिक्रियायें १०. आम लोगों में का।

जिसने वक़्त की दर्सयाती तालीम हासिल करके उल्मा के हल्के में अपनी जगह बनाई और दरबारे-शाही तक रसाई हासिल कर ली। उसकी ज़िंदगी की तमाम सरगर्मियों में अगर ख़ुसूसियत के साथ कोई चीज़ उभरती है तो वो उसकी बेलचक तंगनज़री, बेरोक तास्सुब, और बेमेल रासिख़-उल-ऐतक़ादी[1] है। हमें उसकी अनानियत न सिर्फ़ बहुत छोटी दिखाई देती है, बल्कि क़दम क़दम पर इंकार ओ तबर्रा[2] की दावत देती है। ताहम यह क्या बात है कि इस पर भी हम अपनी निगाहों को उसकी तरफ़ उठने से रोक नहीं सकते? हम उसे पसंद नहीं करते, फिर भी उसे पढ़ते हैं और जी लगाकर पढ़ते हैं। ग़ौर कीजिये यह वही बात हुई जो अभी थोड़ी देर हुई हम सोच रहे थे। जिस शख़्स की यह तसवीर है, वो ख़ुद ख़ूबसूरत नहीं है लेकिन तसवीर ब हैसियत एक तसवीर के ख़ूबसूरत है। इसलिये हमारी निगाहों को बेइख़्तियार अपनी तरफ़ मुतवज्जा कर लेती है। यह साहबे-तसवीर नहीं था जिसने हमारी निगाहों को खींचा। यह तसवीर की बेसाख़्तगी थी जिसके बुलावे की कशिश से हम अपने आपको न बचा सके।

टालस्टाय ग़ालिबन उन ख़ास शख़्सों में से था जिनकी अनानियत की मिक़दार इज़ाफ़ी होने की जगह एक मुतलक़ नौइयत रखती थी। उसकी अनानियत ख़ुद उसे जितनी बड़ी दिखाई दी, दुनिया ने भी उसे उतना ही बड़ा देखा। पिछली सदी के आख़िरी और इस सदी के इब्तदाई दौर में शायद ही वक़्त का कोई मुसन्निफ़ इस ख़ुद ऐतमादी[3] के साथ "मैं" बोल सका, जिस तरह यह अजीब ओ ग़रीब रूसी बोलता रहा। उसके ख़ुद नविश्ता हालात, उसके शख़्सी वारदात ओ तास्सुरात, उसके मुख़्तलिफ़ वक़्तों के मकालमे[4] और रोज़-नामचे, उसके अदबी ओ फ़न्नी मवाहिस, सब में उसकी अनानियत बग़ैर किसी नक़ाब के दुनिया के सामने आई, और दुनिया उसे आलमगीर नविश्तों के साथ जमा करती रही। उसके ख़ुद-नविश्ता सवानह जो एक बेरंग सादगी के साथ लिखे गये हैं, उसकी वार एण्ड पीस और अना केरेनिना से कम दिलपिज़ीर नहीं हैं। और दर असल इन दोनों अफ़सानों में भी उसकी अनानियत ही की सदायें हम सुन रहे हैं। ज़माना उसकी क़लमकारियों का रंग ओ रोग़न अभी तक मद्धम नहीं कर सका। पिछली जंग के ज़माने में लोग वार एण्ड पीस अज़-सरे-नौ ढूंढ़ने लगे थे और अब फिर ढूंढ़ रहे हैं।

मौजूदा अहद[5] में टालस्टाय की अज़मत[6] बहैसियत एक मुफ़क्किर[7] के बहुत दिमाग़ों को मुतवज्जा कर सकेगी। योरप और अमरीका के दिमाग़ी

---

१. धार्मिक कट्टरपन २. बरी होने की ३. आत्मविश्वास ४. संवाद ५. ज़माने में ६. महानता ७. चिंतक।

तबक़ों में बहुत कम लोग ऐसे निकलेंगे जो उसके मआशिरती[1], फ़िलस्फ़ी और जमालयाती (Aesthetics) अफ़कार को उस नज़र से देखने के लिए तैयार हों, जिस नज़र से इस सदी के इब्तदाई दौर के लोग देखा करते थे। ताहम उसकी अनानियती अदबियात की दिलपिज़ीरी से अब भी कोई इंकार नहीं कर सकता। उसकी अजीब ज़िंदगी का मुअम्मा अब भी बहस ओ नज़र का एक दिलपसंद मौज़ू है। हर दूसरे तीसरे साल कोई न कोई नई किताब निकलती रहती है।

पिछली सदी के आख़िरी और इस सदी के इब्तदाई दौर में बकसरत ख़ुदनविश्ता सवानह उम्रियाँ लिखी गईं। कहा जा सकता है कि इस अहद के हर चौथे मुसन्निफ़ ने ज़रूरी समझा कि अपनी गुज़री हुई ज़िंदगी को आख़िरी उम्र में फिर एक मर्तबा दोहरा लें दुनिया के कुतुबख़ानों ने उन सबको अपनी अलमारियों में जगह दी है, लेकिन दुनिया के दिमाग़ों में बहुत कम के लिये जगह निकल सकी।

मैंने इब्तदाई सुतूर[2] में "ईग़ो" का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है। यह वही यूनानी "Ego" की तारीब[3] है जो अरस्तू के अरबी मुतरज्जिमों[4] ने इब्तदा ही में इख़्तियार कर ली थी और फिर फ़ाराबी और इब्ने-रुश्द वग़ैरहुमा बराबर इस्तेमाल करते रहे। मैं ख़याल करता हूँ कि फ़िलसफ़ियाना मबाहिस में "अना" की जगह "ईग़ो" का इस्तेमाल ज़्यादा मौज़ूं होगा। यह बराहे-रास्त फ़िलसफ़ियाना इस्तलाह[5] को रुनुमा कर देता है और ठीक वही काम देता है जो योरप की ज़बानों में "ईगो" दे रहा है। यह उस इश्तबाह[6] को भी दूर कर देगा जो "अना" मुस्तलहये-फ़िलसफ़ा और "अना" मुस्तलहये-तसव्वुफ़ में बाहम दिगर पैदा हो जा सकता है। उर्दू में हम "इगो" बिजिन्सिहि ले सकते हैं। क्योंकि हमें गाफ़ से एहतराज़[7] करने की ज़रूरत नहीं।

अबुलकलाम

१. समाजी २. प्रारंभिक पंक्तियों में ३. अरबी शब्द है ४. अनुवादकों ने ५. परिभाषा को ६. शंका ७. परहेज।

हिकायते-ज़ाग़ ओ बुलबुल[1]

क़िलअ़-अहमदनगर
२, मार्च सन् '४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

कल आलमे-तसव्वुर[2] में हिकायते-ज़ाग़ ओ बुलबुल तरतीब दे रहा था :

मजमूअ़ये-ख़याल अभी फ़र्द फ़र्द था[3]

इस वक़्त ख़याल हुआ, एक फ़सल आपको भी सुना दूं।

ता फ़स्ले अज़ हक़ीक़ते-अशया नविश्ता अेम
आफ़ाक़ रा मुरादिफ़े-अन्क़ा नविश्ता अेम[4]

एक दिन सुबह चाय पीते हुये नहीं मालूम सैयद महमूद साहब को क्या सूझी एक तश्तरी में थोड़ी सी शकर लेकर निकले और सहन में जा-बजा कुछ ढूंढ़ने से लगे।

गोई ईं तायफ़ा ईं जा गुहरे याफ़्ता अंद।[5]

जब उनका तआ़क़ुब[6] किया गया तो मालूम हुआ, चींटियों के बिल ढूंढ़ रहे हैं। जहां कोई सूराख़ दिखाई दिया, शकर की एक चुटकी डाल दी। मैंने जो यह हाल देखा तो यह कह कर उनके समन्दे-सई[7] पर एक ताज़ियाना[8] लगा दिया कि —

व लिलअरज़ी मिन कासिल किरामि नसीबु[9]

कहने लगे इसका तर्जुमा कीजिये। मैंने कहा—ख़्वाजये-शीराज़ मय इज़ाफ़े[10] के कर चुके हैं :

अगर-शराब ख़ुरी जुरअ़ये फ़शां बर ख़ाक
अज़ां गुनाह कि नफ़अ़े रसद ब ग़ैर च बाक[11]

१. कौवे और बुलबुल की कहानी २. ख़यालों की दुनिया ३. ख़यालों का मजमुआ अभी अलग-अलग था ४. दुनिया की चीजों के बारे में अर्थात् फ़लसफ़े के बारे में कुछ लिखूं मैंने दुनिया को अन्क़ा का पर्यायवाची मान लिया है जिसका कि कोई अस्तित्व नहीं है। यानी दुनिया भी नहीं है। ५. मानो इस जमात को यहां मोती मिला है ६. पीछा ७. प्रयत्न का घोड़ा ८. कोड़ा ९. बुज़ुर्ग लोग जो शराब पीते हैं उसमें ज़मीन का भी हिस्सा होता है। १०. वृद्धि ११. अगर तू शराब पीता है तो एक घूंट धरती पर भी छिड़क दे। क्योंकि जिस गुनाह से दूसरे को फ़ायदा पहुंचे उसमें क्या डर है।

यहाँ कमरों की छतों में गौरैयाओं के जोड़ों ने जाबजा घोंसले बना रखे हैं। दिन भर उनका शोर ओ हंगामा बरपा रहता है। चंद दिनों के बाद महमूद साहब को ख़याल हुआ, इनकी भी कुछ तवाज़ा[1] करनी चाहिये। मुमकिन है, गौरैयाओं की ज़बाने-हाल ने उन्हें तवज्जो दिलाई हो कि।

निगाहे-लुत्फ़ के उम्मीदवार हम भी हैं।

छपरा में एक मर्तबा उन्होंने मुर्ग़ियाँ पाली थीं। दाना हाथ में लेकर आ आ करते तो हर तरफ़ से दौड़ती हुई चली आतीं। यही नुस्ख़ा चिड़ियों पर भी आज़माना चाहा। लेकिन चंद दिनों के बाद थक कर बैठ रहे। कहने लगे, अजीब मामला है। दाना दिखा दिखा कर जितना पास जाता हूँ, उतनी ही तेज़ी से भागने लगती हैं। गोया दाने की पेशकश[2] भी एक जुर्म हुआ :

ख़ुदाया जज़्बये-दिल की मगर तासीर उल्टी है
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाय है मुझसे

मैंने कहा, तलब ओ नियाज़ की राह में क़दम उठाया है तो ग़िश्वा व नाज़[3] की तग़ाफ़ुल कीशियों[4] के लिये सब्र ओ शकेब[5] पैदा कीजिये। नियाज़े-इश्क़[6] के दावों के साथ नाज़े-हुस्न की गिलामंदियाँ ज़ेब[8] नहीं देतीं —

ब नाज़ुकी न बरी पै ब मंज़िले-मक़सूद
मगर तरीक़े-रहश अज़ सरे-नियाज़ कुनी
अगर ब नाज़ बरांनद मरो कि आख़िरकार
बसद नियाज़ बख़्वानद तुरा ब नाज़ कुनी[9]

यहाँ कभी-कभी सुबह को जंगली मैनाओं के भी दो तीन जोड़े आ निकलते हैं, और अपनी ग़ुटर ग़ुटर और च्यू च्यू के शोर से कान बहरा कर देते हैं। अब महमूद साहब ने गौरैयाओं के इश्क़ पर तो वासोख़्त[10] पढ़ा, मगर इन आहवाने-हवाई[11] के लिये दामे-ज़याफ़त[12] बिछा दिया :

मन ओ आहूये सहराये कि दायम मीरमीद अज़ मन[13]

रोज़ सुबह रोटी के छोटे छोटे टुकड़े हाथ में लेकर निकल जाते और सहन में

---

१. ख़ातिरदारी २. भेंट ३. नाज़ नख़रों ४. उपेक्षाओं के लिये ५. शांति और धीरज ६. प्रेम की विनीतता ७. शिकायतें ८. शोभा ९. नज़ाकत के साथ मक़सद की मंज़िल पर क़दम मत रख बल्कि उसकी राह पर विनय के साथ सर झुका कर चल, अगर नाज़ के साथ चलाये तो मत चल, क्योंकि आख़िरकार वह तुझे सैकड़ों नियाज़ के साथ बुलायेगा और तू नाज़ करेगा १०. मुँह फेर लिया ११. हवाई हिरनों के लिये १२. मेहमानदारी का जाल १३. मैं हूँ और जंगल के हिरन हैं जो कि हमेशा मुझ से दूर भागते हैं।

जा खड़े होते। फिर जहाँ तक हलक़[1] काम देता आ, आ, आ करते जाते और टुकड़े फ़ज़ा को दिखा दिखा कर फेंकते रहते। यह सलाये-आम[2] मैनाओं को तो मुल्तफ़ित[3] न कर सकी। अलबत्ता शहरिस्ताने-हवा के दर्यूज़ागराने[4]-हर-जाई याने कौवों ने हर तरफ़ से हुजूम शुरु कर दिया। मैंने कौवों को शहरिस्ताने-हवा का दर्यूज़ागर इसलिये कहा कि कभी उन्हें महमानों की तरह कहीं जाते देखा नहीं। तुफ़ैलियों[5] के गोल में भी बहुत कम दिखाई पड़े। हमेशा इसी आलम में पाया कि फ़क़ीरों की तरह हर दरवाज़े पर पहुँचे, सदायें[6] लगाईं और चल दिये :

फ़क़ीराना आये, सदा कर चले।

बहर हाल महमूद साहब आ आ के तसलसुल[7] से थक कर जूं ही मुड़ते, ये दर्यूज़ागराने-कोतह आस्तीन[8] फ़ौरन बढ़ते और अपनी दराज-दस्तियों[9] से दस्तरख़्वान साफ़ करके रख देते :

अय कोतह आस्तीनां ! ता कै दराज़दस्ती ![10]

सहन के शुमाली किनारे में नीम का एक तनावर दरख़्त है। इस पर गिलह-रियों के झुंड कूदते फिरते हैं। उन्होंने जो देखा कि :

सलाये-आम है याराने-नुक्तादां के लिये !

तो फ़ौरन लब्बैक-लब्बैक[11] और "मरहमते आली ज़याद[12]" कहते हुये उस दस्तरख़्वान पर टूट पडीं —

यारां ! सलाये-आम स्त गर मी कुनेद कारे ![13]

कौवों की दराज़दस्तियों से जो कुछ बचता, इन कोताहदस्तों की कामजोइयों[14] का खाजा बन जाता। पहले रोटी के टुकड़ों पर मुँह मारतीं, फिर फ़ौरन गरदन उठा लेतीं। टुकड़ा चबाती जातीं और सर हिला हिलाकर कुछ इशारे भी करती जातीं। गोया महमूद साहब को दादे-ज़याफ़त[15] देते हुए बतरीक़े-हुस्ने-तलब[16] यह भी कहती जाती हैं कि—

---

१. गला २. आम निमंत्रण ३. आकर्षित ४. हर जगह जाने वाले भिखमंगे ५. बिन बुलाये जो मेहमान के साथ आते हैं उन्हें तुफ़ैली कहते हैं। ६. आवाज़ ७. किसी बात के अनवरत होने को तसलसुल कहते हैं ८. ओछे भिखमंगे, कोतह आस्तीन का शाब्दिक अर्थ है, जिसकी आस्तीनें छोटी हों ९. हाथ मारना १०. ओ कोतह आस्तीनों अर्थात कमीनों यह कब तक जुल्म करते रहोगे। ११. हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ १२. आप जो दयालु हैं ईश्वर करे आपकी दयालुता और ज़्यादा हो १३. यारो आम निमंत्रण है अगर कुछ करना है तो करो १४. इच्छाओं १५. मेहमाननवाज़ी की दाद १६. ख़ूबसूरती से माँगना।

गरचे ख़ूब स्त, व लेकिन क़दरे बेहतर अज़ीं ।[1]

ख़ैर, बेचारी गिलहरियों का शुमार तो इस सुफ़रये-करम[2] के रेज़ाचीनों[3] में हुआ। लेकिन कौवे जिन्हें तुफ़ैली समझ कर मेज़बाने-आलीहिम्मत ने चंदां[4] तारुंज़[5] नहीं किया था, अचानक इस क़दर बढ़ गये कि मालूम होने लगा, पूरे अहमदनगर को इस बख्शिशे-आम की ख़बर मिल गई है। और इलाक़े के सारे कौवों ने अपने-अपने घरों को ख़ैर बाद कहकर यहाँ धूनी रमाने की ठान ली है। बेचारी मैनाओं को जो इस एहतिमामे-ज़याफ़त की असली मेहमान थीं, अभी तक ख़बर भी नहीं पहुँची थी। और अब अगर पहुँच भी जाती तो भला तुफ़ैलियों के इस हुजूम में उनके लिए जगह कहाँ निकलने वाली थी।

तुफ़ैली जमा शुद चंदां कि जाये-मेहमां गुम शुद[6]

महमूद साहब के सलाये-आम से पहले ही यहां कौवों की काँय काँय की रोशन चौकी बराबर बजती रहती थी। अब जो उनका दस्तरख्वाने करम बिछा तो नक़्क़ारों पर भी चोब पड़ गई। एक दो दिन तक तो लोगों ने सब्र किया। आख़िर उनसे कहना पड़ा कि अगर आपके दस्ते-करम की बख्शिशें रुक नहीं सकतीं तो कम अज़ कम चंद दिनों के लिये मुल्तवी ही कर दीजिये। वर्ना इन तुर्कानि-यग़मा[7] दोस्त की तुर्कताज़ियाँ[8] कमरों के अंदर के गोशानशीनों को भी अमन चैन से बैठने न देंगी। और अभी तो सिर्फ़ अहमदनगर ही के कौवों को ख़बर मिली है। अगर फ़ैज़े-आम का यह लंगरख़ाना इसी तरह जारी रहा तो अजब नहीं तमाम दकन के कौवे क़िलये-अहमदनगर पर हमला बोल दें और आपको सायब का शेर याद दिलायें कि—

दूरदस्तांरा ब एहसां याद कर्दन हिम्मत स्त
वर्ना हर नख़्ले बपाये-ख़ुद समर मीअफ़गनद।[9]

अभी महमूद साहब इस दरख्वास्त पर ग़ौर कर ही रहे थे कि एक दूसरा वाक़या ज़हूर में आ गया। एक दिन सुबह क्या देखते हैं कि छत की मुंडेर पर दो मुअम्मर[10] ओ मशय्यन[11] गिध की तशरीफ़ ले आये हैं—

पीरी से कमर में इक ज़रा ख़म
तौक़ीर की सूरत - मुजस्सम[12]

---

१. यद्यपि यह ख़ूब अच्छा है लेकिन जरा इससे बढ़कर हो २. प्रीतिभोज ३. टुकड़े चुनने वाले ४. इतना ५. विरोध ६. तुफ़ैली इतने जमा हो गये कि मेहमान के लिये जगह नहीं रही ७. उम्दा माल लेकर भाग जानेवाले तुर्क याने कौवे ८. हमले ९. जो दूर हैं उन्हें किसी भेंट के साथ याद करना हिम्मत की बात है। वरना हर पेड़ अपने पैरों पर तो फल गिराता ही है १०. बड़ी उम्र के ११. मोटे १२. मानो बड़प्पन की साक्षात् मूर्ति हों।

और गरदन उठाये सलाये-सुफ़रा के मुंतज़िर हैं—

अब ख़ाना बर अंदाज़े-चमन ! कुछ तो इधर भी !

मालूम होता है, इन नाख्वांदा महमानों की आमद महमूद साहब पर भी बा ईं हमा जूद[1] ओ सख़ाये-आम, गरां[2] गुज़री। कहने लगे, बुज़ुर्गों ने कहा है गिधों का आना मनहूस होता है। बहर हाल इन हज़रात के बारे में बुज़ुर्गाने-सलफ़[3] का कुछ ही ख़याल रहा हो, लेकिन वाक़या यह है कि उनकी तशरीफ़ आवरी हमारे लिये तो बड़ी ही बा बरकत साबित हुई। क्योंकि इधर उनका मुबारक क़दम आया, उधर महमूद साहब ने हमेशा के लिये अपना सुफ़रये-करम[4] लपेटना शुरू कर दिया। एक लिहाज़ से मामले पर यूं भी नज़र डाली जा सकती है कि उनकी आमद की आबादी में इस हंगामये-ज़याफ़त[5] की वीरानी पोशीदा थी। देखिये, क्या मौक़े से मोमिन खां का क़सीदा याद आ गया—

शैख़ जी आपके आते ही हुआ दैर[6] ख़राब

क़स्द काबे का न कीजियेगा बईं युम्ने-क़ुदूम[7]

ख़ैर, चंद दिनों के बाद बात आई गुज़री हुई। लेकिन कौवों के ग़ोलों से अब नजात[8] कहाँ मिलने वाली थी ? दर्यूज़ागरों ने करीम की चौखट पहचान ली। वो रोज़ मुअय्यन[9] वक़्त पर आते और अपने फ़रामोशे-कार[10] मेज़बान को पुकार पुकार कर दुआएँ देते—

मियां ख़ुश रहो, हम दुआ कर चले !

इसी असना[11] में मौसम ने पल्टा खाया। जाड़े ने रख़्ते-सफ़र[12] बाँधना शुरू किया। बहार की आमद आमद का ग़लग़ला बरपा हुआ। अगरचे अभी तक :

उड़ती सी इक ख़बर थी ज़बानी तुयूर[13] की !

हम जब गुज़श्ता साल अगस्त में यहाँ आये थे तो सहन बिल्कुल चटियल मैदान था। बारिश ने सब्ज़ा[14] पैदा करने की बार-बार कोशिशें कीं, लेकिन मिट्टी ने बहुत कम साथ किया। इस बेरंग मंज़र[15] से आँखें उकता गई थीं और सब्ज़ा ओ गुल के लिये तरसने लगी थीं। ख़याल हुआ कि बाग़बानी का मशग़ला क्यों न इख़्तियार किया जाये कि मशग़ले का मशग़ला होता है और असहाबे-सूरत और असहाबे-मानी दोनों के लिये सामाने-ज़ौक़[16] बहम पहुंचाता है :

१. आम दया और दाक्षिण्यता २. भारी ३. पुराने बुज़ुर्ग लोगों का ४. मेहरबानी का दस्तरख़्वान ५. मेहमानदारी की प्रवृत्ति ६. दुनिया, देवालय ७. मुबारक क़दम ८. मुक्ति ९. ठीक, निश्चित १०. काम को भूला हुआ ११. बीच में १२. सफ़र का सामान १३. चिड़ियों की १४. घास १५. दृश्य १६. रुचि का सामान।

ब बू असहाबे-मानीरा, बरंग असहाबे-सूरतरा[1]

जवाहरलाल जिनका जौहरे-मुस्तैदी हमेशा ऐसी तजवीज़ों की राह तकता रहता है, फौरन कमरबस्ता हो गये। और इस ख़राबे में रंग ओ बू की तामीर का सरोसामान शुरू हो गया :

दिल के वीराने में भी हो जाय दम भर चाँदनी

इस कारख़ानये-रंग ओ बू के हर गोशे में वजूद[2] की पैदाइश और जामये-हस्ती[3] की आराइश के लिये दो बातों की दुरुस्तगी ज़रूरी होती है। पहली यह कि बीज दुरुस्त हो !

गर जां बदिहद संगे-सियह लाल न गरदद
बा तीनते-असली च कुनद बद गुहर उफ़्ताद ![4]

दूसरी यह कि ज़मीन मुस्तैद हो—

जौहरे-तीनते-आदम ज ख़मीरे दिगर स्त
तो तवक़्क़ो ज़ गिले-कूज़ागरां मीदारी ![5]

चुनांचे यहाँ भी सबसे पहले इन्हीं दो बातों की फ़िक्र की गई। बीज के लिये चीताख़ां को कह कर पूना लिखवाया गया कि वहाँ के बाज़ बाग़ों के ज़ख़ीरे बीज़ों की ख़ूबी ओ सलाहियत के लिये मशहूर हैं। लेकिन ज़मीन की दुरुस्तगी का मामला इतना आसान न था। अहाते की पूरी ज़मीन दर असल क़िले की पुरानी इमारतों का मलबा है। ज़रा खोदिये और पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े और चूने और रेत का बुरादा हर जगह निकलने लगता है। दरम्यानी हिस्सा तो गोया गुंबदों और मक़बरों का मदफ़न है। नहीं मालूम किन किन फ़रमां-रवाओं और कैसे-कैसे परी चेहरों की हड्डियों से इस ख़राबे की मिट्टी गूंधी गयी है, और ज़माने-हाल से कह रही है—

क़दह बशर्ते-अदब गीर, ज़ां कि तरकीबश
ज़ कासये-सरे-जमशेद ओ बहमन स्त ओ क़बाद ![6]

नाचार तख़्तों की दाग़बेल डाल कर दो-दो तीन-तीन फुट ज़मीन खोद दी गई।

१. ख़ुशबू से असहाबे-मानी अर्थात अर्थ की बारीकियों को समझने वालों को और रंग से रूप परस्तों को ख़ुश करने वाला २. किसी चीज़ का होना ३. हस्ती का लिबास ४. अगर काला पत्थर जान भी दे दे तो लाल नहीं हो सकता। अपनी स्वभाव से मजबूर है कि वही खोटा है ५. आदमी की प्रकृति का जौहर किसी और ही ख़मीर से है लेकिन तेरा ध्यान कूज़े बनाने वाले की मिट्टी से है कि वह उसी का बना हुआ है ६. शराब का प्याला अदब के साथ हाथ में पकड़ो क्योंकि उसकी बनावट जमशेद, बहमन और क़ैक़ुबाद की खोपड़ियों से हुई है।

और बाहर से मिट्टी और खाद मंगवाकर उन्हें भरा गया। कई हफ़्ते इसमें निकल गये। जवाहरलाल सुब्ह ओ शाम फावड़ा और कुदाल हाथ में लिये कोह कंदन[1] और काह[2] बर आवुर्दन में लगे रहते थे—

आग़िश्ता आयम हर सरे-ख़ारे ब ख़ूने-दिल

क़ानूने-बाग़बानिये-सहरा नविश्ता श्रेम![3]

इसके बाद आबपाशी का मरहला पेश आया, और इस पर ग़ौर किया गया कि केमिस्ट्री के हक़ायक़[4] से फ़ने-ज़राअत[5] के ऐमाल[6] में कहाँ तक मदद ली जा सकती है। इस मौज़ू[7] पर अरबाबे-फ़न[8] ने बड़ी नुक्ता आफ़रीनियाँ[9] कीं। हमारे क़ाफ़िले में एक साहब बंगाल के हैं जिनकी साइंटिफ़िक मालूमात हर मौक़े पर ज़रूरत हो या न हो अपनी जलवा तराज़ियों[10] का फ़य्याज़ाना[11] अिसराफ़[12] करती रहती हैं। उन्होंने यह दक़ीक़[13] नुक्ता सुनाया कि अगर फूलों के पौदों को हैवानी ख़ून से सींचा जाये तो उनमें नबाताती[14] दर्जे से बुलंद होकर हैवानी दर्जे में क़दम रखने का वलवला पैदा हो जायेगा, और हफ़्तों की राह दिनों में तय करने लगेंगे। लेकिन आजकल जबकि जंग की वजह से आदमियों को ख़ून की ज़रूरत पेश आ गई है, और उसके बेंक खुल रहे हैं, भला दरख़्तों के लिये कौन अपना ख़ून देने के लिये तैयार होगा? एक दूसरे साहब ने कहा, यहाँ क़िले के फ़ौजी मेस में रोज़ मुर्ग़ियाँ ज़िबह की जाती हैं। उनका ख़ून जड़ों में क्यों न डाला जाये? इस पर मुझे इर्तजालन[15] एक शेर सूझ गया। हालांकि शेर कहने की आदत मुद्दतें हुई भुला चुका हूँ—

कलियों में एहतिज़ाज़[16] है परवाज़े हुस्न की
सींचा था किसने बाग़ को मुर्ग़ी के ख़ून से

अगर मुर्ग़ी की जगह बुलबुल कर दीजिये तो ख़याल बंदों की तर्ज़ का अच्छा ख़ासा शेर हो जायेगा—

ग़ुंचों में एहतिज़ाज़ है परवाज़े-हुस्न की
सींचा था किसने बाग़ को बुलबुल के ख़ून से

शेर सुनकर आसफ़ अली साहब के शायराना वलवले जाग उठे। उन्होंने इस

१. पत्थर फोड़ना २. मिट्टी बाहर निकालना ३. अपने दिल के ख़ून से हर काँटे को रक्त रंजित कर दिया है, याने कि हमने जंगल में बाग़बानी करने के तरीक़े लिख दिये हैं ४. तथ्य ५. कृषि की कला ६. काम ७. विषय ८. कला के जानकार ९. बारीक बातें निकालीं १०. प्रगटन ११. जी खोलकर १२. अपव्यय १३. सूक्ष्म १४. वानस्पतिक १५. बिन सोचे १६. ख़ुशी में हिलना।

ज़मीन में ग़ज़ल कहनी शुरू कर दी। लेकिन फिर शिकायत करने लगे कि क़ाफ़िया तंग है। मैंने कहा, वैसे भी यहाँ क़ाफ़िया तंग ही हो रहा है।

देखिये, समंदे-फ़िक्र[1] की वहशत-ख़रामी[2] बार बार जादये-सुख़न[3] से हटना चाहती है और चौंक चौंक कर बाग खींचने लगता हूँ। जो बात कहनी चाहता था, वो यह है कि सितंबर और अक्तूबर में बीज डाले गये। दिसंबर के शुरू होते ही सारे मैदान की सूरत बदल गई, और जनवरी आई तो इस आलम में आई कि हर गोशा मालन की झोली था, हर तख़्ता गुलफ़रोश का हाथ था, गोया—

कुनूं कि दर चमन आमद गुल अज अदम ब वजूद
बनफ़्शा दर क़दमे-ऊ निहाद सर ब सजूद
बबाग़-ताज़ा कुन आईने दीने-ज़रदुश्ती
कुनूं कि लाला बरअफ़रोख़्त आतिशे-नमरूद
ज़ दस्ते शाहिदे सीमीं ग़िज़ारे-ईसा दम
शराब नोश ओ रिहा कुन हदीसे-आद ओ समूद[4]

का आलम तारी हो गया। लेकिन आईने-ज़रदुश्ती के ताज़ा करने का सामान यहाँ कहाँ था? और शाहिदे-सीमी-ग़िज़ार[5] के अन्फ़ासे-ईसवी[6] की ऐजाज़-फ़रमाइयाँ[7] कहाँ मयस्सर आ सकती थीं? सो इसकी कमी आलमे-तसव्वुर की जौलानियों से पूरी की गई। ज़माने की तुनुक मायगी[8] जिस क़दर कोताहियाँ करती रहती है, फ़िक्रे-फ़राख़[9] हौसले की आसूदगियाँ[10] उतनी ही बढ़ती जाती हैं :

चु दस्ते-मा ब दामने-वस्लश नमीरसद
पाये-तलब शिकस्ता बदामां निशस्ता ऐम[11]

---

१. विचारों का घोड़ा २. इधर-उधर भटकना ३. बात का रास्ता ४. अब वह वक़्त आ गया है कि बाग़ में फूल नेस्ती से हस्ती में आ गये हैं याने फूल खिल गये हैं और बनफ़्शे के फूल ने उनके स्वागत में अपना सिर झुका दिया है। अब बाग़ में ज़रदुश्ती मज़हब के विधान को ताज़ा करो क्योंकि अब लाला के फूल ने नमरूद की आग भड़का दी है। (नमरूद एक बादशाह का नाम है जिसने अग्नि पूजा प्रारंभ की) और ऐसा माशूक़ जिसके गाल चाँदी की तरह गोरे और जिसकी सांस में ईसा की तरह ज़िंदा कर देनेवाली फूंक हो उसके हाथ से शराब पी और आद और समूद की बातें छोड़ दे। (आद हज़रत नूह की क़ौम और समूद भी एक क़बीले का नाम है)। ५. गोरे गाल की माशूक़ ६. ईसा की ज़िंदा करनेवाली सांसों की ७. चमत्कारपूर्ण बातें ८. पूंजी की कमी ९. ऊंचे हौसलेवाली कल्पनायें १०. राहत, आराम ११. चूंकि मेरा हाथ उसके मिलन के दामन तक नहीं पहुँचता, मैं अपनी इच्छाओं को तोड़कर उसके दामन पर बैठा हूँ।

वक़्त की रियायत से अक्सर फूल मौसमी थे। चालीस से ज्यादा क़िस्में गिनी जा सकती थीं। सबसे पहले मॉर्निंग ग्लोरी (Morning Glory) ने इस ख़राबये-बेरंग को अपनी शिगुफ़्तियों से रंगीन किया। जब सुबह के वक़्त आसमान पर सूरज की किरनें मुस्कुराने लगतीं तो ज़मीन पर मॉर्निंग ग्लोरी की कलियाँ खिलखिलाकर हँसना शुरू कर देतीं। अबू तालिब कलीम को क्या ख़ूब तमसील[1] सूझी थी :

शीरीनिये-तबस्सुम हर गुंचारा मपुर्स
दर शीरे-सुबह ख़ंदये-गुलहा शकर-गुदाख़्त[2]

कोई फूल याक़ूत[3] का कटोरा था, कोई नीलम की प्याली थी, किसी फूल पर गंगा जमनी की क़लमकारी की गई थी, किसी पर छींट की तरह रंग बिरंग की छपाई हो रही थी। बाज़ फूलों पर रंग की बूँदें इस तरह पड़ गयी थीं कि ख़याल होता था, सन्नाये-क़ुदरत[4] के मूक़लम में रंग ज्यादा भर गया होगा। साफ़ करने के लिए छिटकना पड़ा और उसकी छींटें क़बाये-गुल[5] के दामन पर पड़ गईं :

तकल्लुफ़ से बरी है हुस्ने-ज़ाती
क़बाये-गुल में गुलबूटा कहाँ है ?

"ग्लोरी" का उर्दू में तर्जुमा कीजिये तो बात बनती नहीं। "अजलाले-सुबह"[6] वग़ैरह कह सकते हैं, लेकिन ज़ौक़े-सलीम[7] हर्फ़गीरी[8] करता है। इसलिये मैं मॉर्निंग-ग्लोरी को "बहारे-सुबह" के नाम से पुकारता हूँ।

यह वक़्त है शिगुफ़्तने-गुलहाये-नाज़ का

बहारे-सुबह की बेलें बरामदे की छत तक पहुँचा कर फिर अंदर की तरफ़ फैला दी गई थीं। चंद दिनों के बाद नज़र उठाई तो सारी छत पर फूलों से लदी हुई शाखें फैल गई थीं। लोग फूलों की सेज बिछाते हैं और अपनी करवटों से उसे पामाल करते रहते हैं। हमारे हिस्से में काँटों का फ़र्श आया तो हमने अपनी फूलों की सेज बिस्तर से उठाकर छत पर उलट दी। तलवों के काँटे चुभते रहते हैं मगर निगाह हमेशा ऊपर की तरफ़ रहती है।

गुज़र चुकी है यह फ़स्ले-बहार हम पर भी !

सामने दो तख़्तों में ज़िनिया (Zinnia) के फूल रंग बिरंग के साफ़े बाँधे नमूदार हो गये। ज़िनिया के फूल कई क़िस्म के होते हैं। ये बड़े ज़िनिया

१. उपमा २. प्रत्येक कली की मुस्कुराहट की मिठास को मत पूछो सुबह के दूध में फूलों की मुस्कुराहट शक्कर मिला रही है ३. लाल ४. प्रकृति के शिल्पी ५. फूल का चोग़ा ६. सुबह की शोभा ७. सुरुचि ८. ऐब-गीरी, ग़लती निकालना।

के फूल थे। उनके साफ़ों की लपेट इतनी मुरत्तब[1] और मुदव्वर[2] वाक़े हुई थी कि मालूम होता था किसी मश्शाक़[3] दस्तारबंद[4] ने क़ालिब[5] पर चढ़ाकर पेचों की एक एक सिलवट निकाल दी है। जूं जूं उम्र बढ़ती गई, साफ़ों की ज़ख़ामत[6] भी बढ़ती गई। और फिर तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे पहरेदारों की सफ़ें रंग बिरंग की पगड़ियाँ बाँधे खड़ी हैं और ज़िंदानियाने-क़िले[7] की तरह इस बाग़े-नौ रुस्ता[8] की भी पासबानी[9] हो रही है।

कि बुलबुलां हमा मस्तंद ओ बाग़बां तनहा![10]

इन तख़्तों के दरम्यान गुले-ख़तमी याने हाली हाक (Holly hock) का हल्क़ा है। यह रंग बिरंग के वाइन ग्लास हाथों में लिये खड़े थे। हर शाख़ इतने ग्लास सँभाले हुयी थी कि दिल अंदेशानाक[11] रहता, कहीं ऐसा न हो हवा के झोंकों की ठोकर लगे और ग्लास गिर कर चूर चूर हो जायें। दानिश मशहदी ने ग़ालिबन इन्हीं फूलों की एक शाख़ देखकर कहा था :

दीदा अम शाख़े-गुले, बरख़ेश मीपेचम कि काश
मी तवानिस्तम बयक दस्त ईं क़दर साग़र गिरफ़्त[12]

तख़य्युल दर असल अमीर ख़ुसरू से माख़ूज़[13] है, जिसने इसी ज़मीन में कहा था :

हस्त सहरा चूं कफ़े-दस्त ओ बुरद अज़ लाला जाम
ख़ुश कफ़े-दस्ते कि चंदीं जामे-सहबा बर गिरफ़्त[14]

गुले-ख़तमी के फूलों की तश्बीह[15] कितनी ही दिलकश हो, मगर यह मानना पड़ेगा कि हुस्ने-नज़ाकत की अदायें यहाँ नहीं मिल सकतीं। ग्लास ख़ुशनुमा हैं, मगर नाज़ुक नहीं हैं। पिटुनिया (Petunia) ने भी मैदान के हर गोशे को दामने-रंगीं बना दिया था, लेकिन उसकी रंगतों की सादगी से तख़य्युल की प्यास कहाँ बुझ सकती थी? मैदान के वस्त[16] में झंडे के चबूतरे के दोनों तरफ़ अस्टर (Aster) कार्नफ्लावर (Corn flower) स्वीट पीज़ (Sweet peas) कोकनार (Poppy) फ़्लक्स (Phlax) कलि-

---

१. तरतीबवार २. गोल ३. प्रवीण ४. पगड़ी बाँधनेवाला ५. साँचा ६. मुटाई ७. क़िले के क़ैदी ८. नया उगा हुआ बाग़ ९. पहरेदारी १०. सब बुलबुलें मस्त हैं और माली अकेला है ११. सहमा हुआ १२. मैंने फूल की डाल देखी है और मुझे ख़ुद पर झुंझलाहट होती है कि काश मैं भी एक हाथ में इतने शराब के प्याले पकड़ सकता १३. लिया हुआ १४. जंगल हथेली की तरह है और लाला फूल के जाम लिये हुए हैं। यह हथेली कितनी अच्छी है कि इतने शराब के प्यालों को पकड़े हुए है १५. उपमा १६. बीच में।

योप्सिस (Calliopsis) और कासमस (Casmas) के छोटे छोटे झुंड निकल आये थे। गोया मैदान की कमर में बुक़लमूं[1] रंगों का एक पटका बँध गया था। लेकिन वो भी तमाशाई का सामाने-दीद[2] था, अहले-बीनश[3] के लिये नज़र का सामान न था। हालां कि—

बज़्म में अहले-नज़र भी थे तमाशाई भी

इस ग़र्ज़ के लिये पिंक्स (Pinks) सल्विया (Salvia) और पेंज़ी (Pansy) वग़ैरह के तख़्तों का रुख़ करना पड़ता था, जिनकी जलवा फ़रोशियां हर दम दीदा ओ दिल को दावते-नज़्ज़ारा देती रहती थीं। क़ुदरत के क़लमे-सनअत[4] की यह भी एक अजीब करिश्मा संजी है कि फूलों के वरक़ और तितलियों के परों पर एक ही मूक़लम[5] से मीनाकारी कर दी और एक ही रंग की दवातें काम में लाई गईं। इन फूलों के औराक़[6] का मुताला[7] कीजिये तो ऐसा मालूम होता है, जैसे बड़े फूलों की कतरन से कुछ काग़ज़ बच रहा था, उसे भी ज़ाया नहीं किया गया और क़ैंची से तराश तराश कर नन्हें नन्हें फूलों के वरक़ बना लिये। अगर एक चीज़ नाज़ुक और ख़ूबसूरत होती है तो हम कहते हैं, यह फूल है। लेकिन अगर ख़ुद फूलों के लिये कुछ कहना चाहें तो उन्हें किस चीज़ से तश्बीह दें? हक़ीक़त यह है कि ज़बाने-दरमांदा को यहाँ याराये-सुख़न नहीं, और ख़ामोशी के बग़ैर चाराये-कार नहीं। हुस्न की जलवा-तराज़ियाँ[8] महवियत[9] का पयाम होती है, ख़ामा-फ़रसाई[10] और सुख़न-आराई[11] का तक़ाज़ा नहीं होता।

अज़ निगह् चश्म तिही गश्त ओ तमाशा मांदा स्त
बर ज़बां हर्फ़ न मांदा स्त ओ सुख़नहा मांदा स्त[12]

इन फूलों को मौसमी कहा जाता है, क्योंकि इनकी पैदाइश और ज़िंदगी सिर्फ़ मौसम ही तक महदूद रहती है। इधर मौसम ख़त्म हुआ, उधर उन्होंने भी दुनिया को ख़ैर बाद कह दिया। गोया ज़िंदगी का एक ही पैराहन उनके हिस्से में आया था, वही कफ़न का भी काम दे गया।

हमचु माही ग़ैर दामम पोशिशे-दीगर न बूद
ता कफ़न आमद, हमी यक जामा बर तन दाश्तम[13]

१. रंगारंग २. देखने की वस्तु ३. द्रष्टा ४. कारीगरी की क़लम ५. तूलिका, Brush ६. वरक़ का बहुवचन, पृष्ठ ७. अध्ययन। ८. प्रदर्शन ९. तल्लीनता १०. लिखना ११. साहित्य सृजन १२. आँख से दृष्टि चली गई और तमाशा रह गया। ज़बान में शब्द नहीं रहा लेकिन बातें रह गई हैं १३. मछली की तरह उसके जिस्म के दामों के अलावा मेरा कोई दूसरा वस्त्र नहीं था, मरते दम तक इसी एक वस्त्र को शरीर पर पहने रहा।

मीर मुबारक अल्ला वाजह आलमगीरी को यही ख़याल पानी का बुलबुला देख कर हुआ था। देखिये क्या ख़ूब कह गया है।

इश्क़ फ़रमाये दिलम नेस्त बजुज़ ऐशे-हुबाब
याफ़्त यक पैरहने-हस्ती ओ आं हम कफ़न स्त[1]

बहार में फूलों से दरख़्त लद जाते हैं, ख़िजां में ग़ायब हो जाते हैं। फिर ज्यूं ही मौसम का दौर पलटता है, दुबारा आ मौजूद होते हैं। मगर मौसमी फूलों के पौदों का शेवये-यक रंगी[2] ओ यक साख़्तगी[3] देखिये कि जब एक मर्तबा दुनिया को पीठ दिखा दी तो फिर दुबारा मुड़कर देखना नहीं चाहते। गोया अबूतालिब कलीम का इशारा इन्हीं की तरफ़ था।

बज़मे-ज़माना क़ाबिले-दीदन दोबारा नेस्त
रू पस न कर्दां, हर कि अर्ज़ीं ख़ाकदां गुज़श्त[4]

फूलों के जमालयाती (Aesthetics) मंज़र से अलग नज़र हटाइये तो फिर एक और गोशा सामने आ जाता है। यह उनकी अजायब[5] आफ़रीनियों का गोशा है। रूहे-नबाती[6] भी रूहे-हैवानी की तरह क़िस्म क़िस्म के जिस्मों में उभरती है और तरह तरह के अफ़आल[7] ओ ख़वास[8] की नुमाइश[9] करती रहती है। यह कहीं सोई हुई दिखाई देती है, कहीं करवट बदलने लगती है और फिर कहीं उठकर बैठ जाती है। हमारे इस छोटे से गोशये-चमन में अभी सिर्फ़ एक ही फूल ऐसा है जिसे इस क़िस्म के ग़ैर मामूली फूलों में से शुमार किया जा सकता है याने ग्लोरिओसा सुपर्बा (Gloriosa Superba)। इसकी पांच जड़ें गमलों में लगाई गई थीं। चार बार आवर[10] हुईं। अब उनकी शाख़ें कलियों से लदी हुई हैं। इनका फूल पहले पंजे की तरह खिलेगा, फिर प्याले की तरह उलट जायेगा। फिर फ़ानूस की तरह मुदव्वर[11] होने लगेगा, फिर थोड़ी देर दम लेने के लिये रुक जायेगा। और फिर देखिये तो जिन मंज़िलों से गुज़रता हुआ आया था उन्हीं मंज़िलों से गुज़रता हुआ उल्टे पांव वापस होने लगेगा। वापसी में पहले फ़ानूस की उठी हुई शाख़ें फैलकर एक प्याला बनायेंगी। फिर अचानक यह प्याला उलट जायेगा। गोया ज़िंदगी के जामे-वाज़गूं[12] में अब कुछ बाक़ी न रहा —

---

१. बुलबुले की ज़िंदगी के सिवा मेरा दिल किसी और पर रश्क नहीं करता। जीवन का एक पैरहन पाया है और वह भी कफ़न है २. एक-रंगी प्रकृति ३. एक बार का अस्तित्व ४. इस दुनिया की बनावट दुबारा देखने लायक़ नहीं है, इस दुनिया से जो गुज़र गया उसने मुंह न फेरा ५. विचित्र बातों का ६. बनस्पति जगत की आत्मा ७-८. प्रवृत्ति और प्रकृति ९. प्रदर्शन १०. सफल हुईं, फलीं ११. गोल १२. उलटा हुआ प्याला।

लिये बैठा है इक दो चार जामे-वाजगूं वो भी

हर फूल की आमद ओ रफ़्त की यह मुसाफ़िरत दस से बारह दिन के अंदर तै हुआ करती है। छह दिन आने में लगते हैं, छह वापसी में। और दर असल उसका आना भी जाने ही के लिये होता है—

तिरा आना न था ज़ालिम, मगर तम्हीद[1] जाने की

रंगत के ऐतबार से भी उसकी बूक़लमूनियों का कुछ अजीब हाल है। कलियां जब नमूदार होंगी तो हल्के सब्ज़ रंग की होंगी। फिर जूं जूं खिलने का वक़्त आने लगेगा, ज़र्दी उभरने लगेगी। और फिर ज़र्दी बतदरीज[2] सुर्ख़ी-मायल होना शुरू हो जायेगी। पहले आधा सुर्ख़ आधा ज़र्द रहेगा, फिर ज़र्दी तेज़ी के साथ घटने लगेगी और पूरा फूल सुर्ख़ होकर मिर्च की कलियों की तरह चमकने लगेगा। यह अजीब बात है कि इसकी नस्ल हिन्दुस्तान की तरफ़ मंसूब[3] की जाती है, मगर यहां इसकी शोहरत नहीं।

आलम हमा अफ़सानये-मा दारद ओ मा हेच ![4]

यह फूल नबातात[5] की उस क़िस्म में दाख़िल है जिसे इत्तिहादे-तनासुली[6] के लिये ख़ारिज[7] की मदाख़लत मतलूब होती है और कभी हवा के झोंकों से और कभी तितलियों और मक्खियों की निशस्त[8] ओ बरख़ास्त[9] से फ़ितरत[10] यह काम ले लिया करती है। इस फूल का जुज़े-रजूलिय्यत[11] उसके उनूसियत[12] के जुज़ से इस तरह बेताल्लुक़ वाक़े हुआ है कि जब तक ख़ारिज का हाथ माद्दये-तलक़ीह[13] को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह न पहुँचा दे, तलक़ीह का अमल अंजाम नहीं पा सकता। जिन फूलों को यह ख़ारजी अयानत[14] मिल जाती है वो बारदार हो जाते हैं और अपना बीज छोड़ जाते हैं। जिन्हें नहीं मिलती बांझ होकर बग़ैर बीज बनाये ख़त्म हो जाते हैं। इन पौधों के लिये तितलियों का एक गिरोह बर वक़्त पहुँच गया था। चुनांचे अक्सर फूल बारदार हो गये।

ख़ैर, यह चमन-आराई का ज़िक्र तो एक जुमलये-मौतरज़ा[15] था जो बिला क़स्द[16] इतना तूलानी[17] हो गया। अब असल हिकायत की तरफ़ वापस होना चाहिये। फ़रवरी में अब्र[18] ओ बाद[19] की आमद ओ रफ़्त से मौसम का उतार-चढ़ाव जारी रहा। मगर जूं ही महीना ख़त्म होने पर आया, मौसमे-बहार का

---

१. प्रस्तावना २. क्रमशः ३. संबंधित होना ४. सारी दुनिया में मेरी बात है और मैं कुछ नहीं हूँ ५. वनस्पति ६. वंशवृद्धि के लिये आपस में मिलना, जुफ़्ती ७. बाहर की ८-९. उठने बैठने से १०. प्रकृति ११. पराग केसर याने नर-अंश १२. गर्भ केसर या मादा अंश १३. नर-अंश १४. मदद १५. आपत्तिजनक वाक्य या बात, (Parenthatical words) १६. अनिच्छा से १७. लंबा १८-१९. बादल और हवा।

पेशख़ीमा पहुँच गया। याने मौतदिल हवाओं के झोंके चलने लगे। फिर एक दिन क्या देखते हैं कि ख़रामां ख़रामां चलती हुई ख़ुद बहार भी आ मौजूद हुई है और जवानाने-चमन ने उसकी ख़ुशामदीद का जश्न[1] मनाना शुरू कर दिया है।

नफ़से-बादे-सबा मुश्क फ़शां ख़्वाहिद शुद
आलमे-पीर दिगर बार जवां ख़्वाहिद शुद ![2]

उसी ज़माने का वाक़या है कि एक दिन दोपहर के वक़्त कमरे में बैठा था कि अचानक क्या सुनता हूँ, बुलबुल की नवाओं[3] की सदायें आ रही हैं।

बाज़ नवाये-बुलबुलां इश्क़े-तू याद मीदिहद
हर कि ज़ इश्क़ नेस्त ख़ुश उम्र बबाद मीदिहद[4]

बाहर निकल कर देखा तो खतमी के शिगुफ़्ता[5] फूलों के हुजूम में एक जोड़ा बैठा है और गर्दन उठाये नग़मा संजी[6] कर रहा है। बेइख़्तियार ख़्वाजये-शीराज़ की ग़ज़ल याद आ गई।

सफ़ीरे-मुर्ग़ बर आमद, बते-शराब कुजा स्त !
फ़ुग़ां फ़ताद ज़ बुलबुल, "नक़ाबे-गुल के दरीद"[7]

यह इलाक़ा अगरचे सर्द-सैर नहीं है। लेकिन चूंकि बुलंद सतह पर वाक़े हुआ है, इसलिये पहाड़ी बुलबुलों से ख़ाली नहीं है। ये बुलबुलें अगरचे सर्द सैर ईरान की बुलबुलों की तरह हज़ार दास्तां नहीं होतीं लेकिन रसीले गले की एक तान भी क्या कम है। दोपहर की चाय का, जो क़ैलूला[8] के बाद पीता हूँ, आख़िरी फिंजान बाक़ी था, मैंने उठाया और इस नग़मये-अंदलीब पर ख़ाली कर दिया।

तू नीज़ बादा बचंग आर ओ राहे-सहरा गीर
कि मुर्ग़े-नग़मा सरा साज़े-ख़ुशनवा आवुर्द[11]

दूसरे दिन सुबह बरामदे में बैठा था कि बुलबुल के तराने की आवाज़ फिर उठी। मैंने एक साहब को तवज्जो दिलाई कि सुनना बुलबुल की आवाज़ आ

१. उत्सव २. प्रातः समीर की साँसें ख़ुशबू बखेरती हुई आयेगी, बूढ़ी दुनिया फिर से जवान होगी। ३. रागों ४. फिर से बुलबुलों की आवाज़ें तेरे प्रेम की याद दिला रही है, जो शख़्स प्रेम से ख़ुश नहीं है वह उम्र ज़ाया करता है। ५. खिले हुये ६. राग अलापना ७. पक्षियों की आवाज़ आ रही है, शराब की सुराही कहाँ है। बुलबुल आह भर रही है कि फूल की नक़ाब किसने फाड़ दी है। ८. ठंडा ६. दोपहर की झपकी १०. बुलबुल की रागिनी ११. तू भी शराब हाथ में ले और जंगल की राह पकड़ क्योंकि राग अलापता हुआ पंछी सुखद रागनी के साज़-सामान ले आया है।

रही है। एक दूसरे साहब जो सहन में टहल रहे थे कुछ देर के लिये रुक गये और कान लगा कर सुनते रहे, फिर बोले कि हां, क़िले में कोई छकड़ा जा रहा है, उसके पहियों की आवाज़ आ रही है। सुबहान अल्ला ! ज़ौक़े-समा[1] की दिक़्क़ते-इम्तियाज़[2] देखिये। बुलबुल की नवाओं और छकड़े के पहियों की रीं रीं में यहां कोई फ़र्क़ महसूस नहीं होता।

हुमाये गो मफ़गन सायये-शरफ़ हरगिज़
बरां दयार कि तूती कम अज़ ज़ग़न बाशद ![3]

ख़ुदारा[4] इंसाफ़ कीजिये, अगर दो ऐसे कान एक क़फ़स[5] में बंद कर दिये जायें कि एक में तो बुलबुल की नवायें बसी हों, दूसरे में छकड़े के पहियों की रीं रीं, तो आप इसे क्या कहेंगे ?

नवाये-बुलबुल अय गुल कुजा पसंद उफ़्तद
कि गोशे-होश ब फ़रमाने-हरज़ागो दारी[6]

असल यह है कि हर मुल्क की फ़ज़ा[7] तबीयतों में एक ख़ास तरह का तबई ज़ौक़[8] पैदा कर दिया करती है। हिन्दुस्तान का आम तबई ज़ौक़ बुलबुल की नवाओं से आश्ना नहीं हो सकता था। क्योंकि मुल्क की फ़ज़ा दूसरी तरह की सदाओं से भरी हुई थी। यहाँ के परिंदों की शोहरत तोता और मैना के परों से उड़ी और दुनिया के अजायब में से शुमार की गई

शक्कर शिकन शवंद हमा तूतियाने-हिंद
ज़ीं क़ंदे-पारसी कि ब बंगाला मीरवद[9]

बुलबुल की जगह यहाँ कोयल की सदायें शायरी के काम आईं। और इसमें शक नहीं कि उसकी कूक दर्द-आश्ना दिलों को ग़म ओ अलम की चीख़ों से कम महसूस नहीं होती।

बुलबुल की नवाओं का ज़ौक़ तो ईरान के हिस्से में आया है। मौसमे-बहार में बाग़ ओ सहरा ही नहीं बल्कि हर घर का पाईं बाग उनकी नवाओं से गूंज उठता है। बच्चे झूले में उनकी लोरियां सुनते-सुनते सो जायेंगे और मायें इशारा करके बतलायेंगी कि देख यह बुलबुल है जो तुझे अपनी कहानी

---

१. श्रवण की रुचि २. फ़र्क़ करने की मुश्किल ३. हुमा से कहो कि अपनी गरिमा का साया हरगिज़ उस शहर में न डाले जहाँ तूती ज़ग़न से कम समझा जाता है ४. ईश्वर के लिये ५. पिंजरा ६. बुलबुल की रागिनी ओ फूल तुझे कब पसंद आ सकती है, तेरे होश के कान तो बेहूदा [illegible]ों पर लगे हुये हैं। ७. वातावरण ८. स्वाभाविक रुचि ९. हिन्दुस्तान [illegible] तूतियें शकर खाने वाली होंगी, इस फ़ारसी क़ंद की वजह से जो [illegible] को जाता है।

सुना रही है। जनूब से शुमाल की तरफ़ जिस क़दर बढ़ते जायें, यह अफ़सूने-फ़ितरत[1] भी ज़्यादा आम और गहरा होता जाता है। हक़ीक़त यह है कि जब तक एक शख़्स ने शीराज़ या क़ज़वीन के गुलगश्तों की सैर न की हो, वो समझ नहीं सकता कि हाफ़िज़ की ज़बान से ये शेर किस आलम में टपके थे।

बुलबुल ब शाख़े-सर्व ब गुल बांगे-पहलवी
मीख़्वांद दोश दर्से-मुक़ामते-मानवी
याने बया, कि आतिशे-मूसा नमूद गुल
ता अज़ दरख़्त नुक्तये-तहक़ीक़ बशुनवी।
मुग़नि-बाग़ क़ाफ़िया संजन्द ओ बज़ला गो
ता ख़्वाजा मय ख़ुरद ब ग़ज़लहाये-पहलवी[2]

यह जो कहा कि मुग़नि-बाग़ "क़ाफिया संजी" करते हैं तो यह मुबालग़ा[3] नहीं है, वाक़या है। मैंने ईरान के चमन ज़ारों में हज़ार[4] को क़ाफ़ियासंजी करते हुये ख़ुद सुना है। ठहर ठहर के लय बदलती जायेगी, और हर लय एक ही तरह के उतार पर ख़त्म होगी। जो सुनने में ठीक ठीक शेरों के क़वाफ़ी[5] की तरह मुतवाज़िन[6] और मुतजानिस[7] महसूस होंगे। घंटों सुनते रहिये इन क़ाफ़ियों का तसलसुल[8] टूटने वाला नहीं। आवाज़ जब टूटेगी एक ही क़ाफ़िये पर टूटेगी।

हक़ीक़त यह है कि नवाये-बुलबुल बहिश्त का मलकूती[9] तराना है। जो मुल्क इस बहिश्त से महरूम[10] है, वो इस तराने के ज़ौक़ से भी महरूम है। गर्म मुल्कों को इस आलम की क्या ख़बर। ज़मिस्तान[11] की बर्फ़-बारी और पतझड़ के बाद जब मौसम का रुख़ पलटने लगता है और बहार अपनी सारी रानाइयों[12] और जलवा-फ़रोशियों[13] के साथ बाग़ ओ सहरा पर छा जाती है, तो उस वक़्त बर्फ़ की बेरहमियों से ठिठुरी हुई दुनिया यकायक महसूस करने लगती है कि अब मौत की अफ़सुर्दगियों की जगह ज़िंदगी की सरगर्मियों की एक नई दुनिया नमूदार हो गई। इंसान अपने जिस्म के अन्दर देखता है तो ज़िंदगी का ताज़ा ख़ून एक एक रग के अंदर उबलता दिखाई देता है। अपने से बाहर

१. प्रकृति का जादू २. बुलबुल सर्व की शाख़ पर पहलवी ज़बान में कल अर्थ की बारीकियों का पाठ पढ़ रही थी। याने कि आओ हज़रत मूसा की आग फूलों के रूप में प्रगट हुई है ताकि पेड़ से सत्य की बारीकियां सुन सकें। बाग़ के पंछी दिल लुभाने वाली रागनियां गा रहे हैं ताकि मालिक पहलवी ग़ज़लों के साथ शराब पीये। ३. अतिशयोक्ति ४. बुलबुल ५. अंत्यानुप्रास ६. एक वज़न के ७. एक ही तरह के ८. क्रम ९. फ़रिश्तों का, स्वर्गीय १०. वंचित ११. जाड़ा १२. सौंदर्य १३. रूप प्रदर्शन।

देखता है तो फ़ज़ा का एक एक ज़र्रा ऐश ओ निशाते-हस्ती[1] की सरमस्तियों में रक़्स[2] करता हुआ नज़र आता है। आसमान ओ ज़मीन की चीज़ जो कल तक महरूमियों की सोगवारी और अफ़सुर्दगियों[3] की जांकाही[4] थी, आज आंखें खोलिये तो हुस्न की इश्वा-तराज़ी[5] है, कान लगाइये तो नग़मे की जांनवाज़ी है, सूंघिये तो सरता सर बू की इत्रबेज़ी है।

सबा ब तहनियते-पीरे-मय फ़रोश आमद
कि मौसमे-तरब ओ ऐश ओ नाय ओ नोश आमद
हवा मसीहे-नफ़स गश्त ओ बाद नाफ़ा कुशा
दरख़्त सब्ज़ शुद ओ मुर्ग़ दर ख़रोश आमद
तनूरे-लाल चुनां बरफ़रोख़्त बादे-बहार
कि ग़ुंचा ग़र्क़े-अर्क़ गश्त ओ गुल ब जोश आमद[6]

ऐन जोश ओ सरमस्ती की इन आलमगीरियों में बुलबुल के मस्ताना तरानों की गत शुरू हो जाती है और यह नग़मा-सराये[7] बहिश्ती इस महवियत[8] और ख़ुदरफ़्तगी[9] के साथ गाने लगता है कि मालूम होता है, खुद साज़े-फ़ितरत के तारों से नग़मे निकलने लगे। उस वक़्त इंसानी अहसासात में यह तहलका मचने लगता है, मुमकिन नहीं कि हर्फ़ ओ सौत[10] से उनकी ताबीर[11] आश्ना हो सके। शायर पहले मुज़्तरिब होगा कि उस आलम की तसवीर खींच दे, जब नहीं खींच सकेगा तो फिर खुद उसकी तसवीर बन जायेगा। वो रंग, बू और नग़मे के इस समंदर को पहले किनारे पर खड़े होकर देखेगा, फिर कूद पड़ेगा और खुद अपनी हस्ती को भी उसी की एक मौज बना देगा।

बया ता गुल बर अफ़शानेम ओ मय दर साग़र अंदाज़ेम
फ़लक रा सक़्फ़ बशिगाफ़ेम ओ तरहे-नौ दर अंदाज़ेम

१. जीवन का आनन्द २. नृत्य ३. उदासी ४. जीकी घुटन ५. नाज़ नख़रों का प्रदर्शन ६. प्रातः समीर मय फ़रोश पीर को मुबारकबाद देने आई कि आनंद और खुशी और शराब पीने का समय आ गया है। हवा ईसा का दम भरती है और समीर मुश्कनाभि की सुगंध भरती है। पेड़ हरे हो गये और पंछी चहचहाने लगे। लाला के फूल के तनूर को बसंत की समीर ने ऐसा भड़काया कि कली पसीने में ग़र्क़ हो गई और फूल जोश में आ गये ७. स्वर्गीय गीत गाने वाला ८-९. तल्लीनता १०. शब्द और आवाज़ ११. उपमा।

चु दर दस्त स्त रूदे ख़ुश, बज़न मुतरिब सरूदे ख़ुश
कि दस्त अफ़शां ग़ज़ल ख़्वानेम ओ पा कोबां सर अंदाज़ेम ![1]

हिन्दुस्तान में सिर्फ़ कश्मीर एक ऐसी जगह है जहाँ इस आलम की एक झलक देखी जा सकती है। इसीलिये फ़ैज़ी को कहना पड़ा था :

हज़ार क़ाफ़िलये-शौक़ मीकशद शबगीर
कि बारे-ऐश कशायद बख़ित्तये-कश्मीर[2]

लेकिन अफ़सोस है, लोगों को फल खाने का शौक़ हुआ, आलमे-बहार की जन्नत-निगाहियों[3] का शौक़ न हुआ। कश्मीर जायेंगे भी तो बहार के मौसम में नहीं, बारिश के बाद फलों के मौसम में। मालूम नहीं दुनिया अपनी हर बात में इतनी शिकम-परस्त[4] क्यों हो गई है? हालां कि इंसान को मेदे के साथ दिल ओ दिमाग़ भी दिया गया था।

हिन्दुस्तान के पहाड़ों में पहाड़ी बुलबुल का तरन्नुम नैनीताल और कांगड़ा में ज़्यादा सुना जा सकता है। मसूरी और शिमले की चट्टानी फ़ज़ा उसके लिये काफ़ी कशिश पैदा नहीं कर सकती थी।

हिन्दुस्तान में आम तौर पर चार क़िस्म की बुलबुलें पाई जाती हैं। उनमें सबसे ज़्यादा ख़ुश-नवा क़िस्म वो है जिसके चेहरे के दोनों तरफ़ सफ़ेद बूटे होते हैं। और इसलिये आजकल नेचरल हिस्ट्री की तक़सीम में उसे व्हाइट चीक्ड (White Checked) के नाम से मौसूम किया गया है। शामा को अगरचे आम तौर पर बुलबुल नहीं समझा जाता लेकिन इसे भी मैदानी सर-ज़मीनों का बुलबुल ही तसव्वुर करना चाहिये। मग़रिबी यू. पी. और पंजाब में इसकी मुतअद्दद[5] क़िस्में पाई जाती हैं।

इस वक़्त तक बुलबुल के तीन जोड़े यहाँ दिखाई दिये हैं। तीनों मामूली पहाड़ी क़िस्म के हैं जिन्हें अंग्रेज़ी में (White Whiskered) के नाम से पुकारते हैं। एक ने तो फूल की एक बेल में आशियाना भी बना लिया है। दोपहर को पहले बिल्कुल ख़ामोशी रहेगी। फिर जूं ही मैं कुछ देर लेटने के बाद उठूंगा और लिखने के लिये बैठूंगा, मअन उनकी नवायें शुरू हो जायेंगी गोया उन्हें मालूम हो गया कि यही वक़्त है, जब एक हम सफ़ीर अपने दिल ओ जिगर के ज़ख़्मों की पट्टियाँ खोलता है। इसलिये नाला ओ फ़रियाद के

---

१. आओ ताकि फूल बखेरें और प्यालों में शराब डालें, आसमान की छत को चीर दें और नई रीत शुरू करें। जब तेरे हाथ में सुन्दर वीणा है ओ गायक इससे सुन्दर गीत गा ताकि ऐसी ग़ज़ल पढ़ें कि मस्ती से झूमने लगें और हाथ पछाड़ने लगें और सिर पटकने लगें। २. पहले आ चुका है ३. स्वर्गीय दृश्य देखने का ४. पेट पूजक ५. कई।

पैहम[1] चरके लगाना शुरू कर दें। मेरा यही हाल हुआ जो अरबी के एक शायर का हुआ था।

व मिम्मा शजानी इन्ननि कुंतु नाइमन्
व अल्लिलु मिन बरदिन् बतीबिसमस्सुमि
इला अनवअत वरक़ाअ मिन ग़ुस्ने ऐकतिन
तफ़र्रद मबकाहा बिहुस्नित् तरन्नुमिन्
फलौक़ब्ल मबकाहा बकैतु सबाबतन्
बिसुअदा सफ़ैतुन्नफ़्स क़ब्लत् तनद्दुमि
व लाकिन बकत क़ब्लि फ़हैयजा लिलबुका
बुकाहा फ़कुल्तु अलफ़ज़्लु लिलमुतक़द्दिमि[2]

1. लगातार 2. और जिस बात ने मुझे ग़मगीन किया, वो यह है कि जब कि मैं सो रहा था और मीठी नींद के मजे ले रहा था, तो अचानक एक खुश आवाज परिंद ने दरख़्तों के झुंड में तरानासंजी शुरू कर दी। उसकी रोने की आवाज अपने तरन्नुम की खूबी में आप ही अपनी मिसाल थी। अगर उसके रोने से पहले मैंने सुआद के इश्क़ में चंद आंसू बहाये होते तो मेरे हिस्से में शर्मिंदगी न आती। मगर वाक़या यह है कि मैं ऐसा न कर सका और यह उस परिंद का रोना था जिससे मेरे अंदर भी रोनेधोने का जोश उमड़ आया। इसलिये मुझे शरमिंदगी के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि बेशक यही बड़प्पन उसी के लिये है जिसने पहला क़दम उठाया।"

चिड़िया चिड़े की कहानी

क़िलअे-अहमदनगर
१७, मार्च सन् १९४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

ज़िंदगी में बहुत सी कहानियाँ बनाईं। ख़ुद ज़िंदगी ऐसी गुज़री जैसे एक कहानी हो :

है आज जो सरगुज़श्त अपनी
कल इसकी कहानियाँ बनेंगी

आइये आज आपको चिड़िया चिड़े की कहानी सुनाऊं :

दिगरहा शुनीदस्ती ईं हम शुनौ।[1]

यहाँ कमरे जो हमें रहने को मिले हैं, पिछली सदी की तामीरात का नमूना हैं। छत लकड़ी के शहतीरों की है, और शहतीरों के सहारे के लिए महराबें डाल दी हैं। नतीजा यह है कि जा बजा घोंसला बनाने के क़ुदरती गोशे निकल आये और गोरैयाओं की बस्तियाँ आबाद हो गईं। दिन भर उनका हंगामये-तग-ओ-दौ[2] गरम रहता है। कलकत्ते में बालीगंज का इलाक़ा चूंकि खुला और दरख़्तों से भरा है, इसलिए वहाँ भी मकानों के बरामदों और कार्निसों पर चिड़ियों के ग़ोल हमेशा हमला करते रहते हैं। यहाँ की वीरानी देखकर घर की वीरानी याद आ गई।

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब
हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है

गुज़श्ता साल जब अगस्त में यहाँ हम आये थे तो इन चिड़ियों की आशियाँ साज़ियों[3] ने बहुत परेशाँ कर दिया था। कमरे के मशरिक़ी[4] गोशे में मुंह धोने की टेबल लगी है। ठीक उसके ऊपर नहीं मालूम कब से एक पुराना घोंसला तामीर पा चुका था। दिन भर मैदान से तिनके चुन चुन कर लातीं और घोंसले में बिछाना चाहतीं, वो टेबल पर गिर के उसे कूड़े करकट से अट देते। इधर पानी का जग भरवा के रखा, उधर तिनकों की बारिश शुरू हो गई। पच्छिम की तरफ़ चारपाई दीवार से लगी थी। उसके ऊपर नई तामीरों की सरगर्मियाँ जारी थीं। इन नई तामीरों का हंगामा और ज़्यादा आजिज़[5] कर देने वाला था। इन चिड़ियों को ज़रा सी तो चोंच मिली है और मुट्ठी भर का भी बदन नहीं। लेकिन तलब ओ सई[6] का जोश इस बला का पाया है कि

---

१. और कहानियाँ सुनी हैं यह भी सुनो २. भाग दौड़ का हंगामा ३. घोंसला बनाना ४. पूर्वी ५. परेशान ६. प्रयत्न।

चंद मिनटों के अंदर बालिश्त भर कुल्फ़ात[1] खोद के साफ़ कर देंगी। हकीम अर्शमीदश (Archimedes) का मक़ूला मशहूर है — Dos moi pan sto kai ten gen kinest मुझे फ़ज़ा में खड़े होने की जगह दे दो, मैं कुर्रये-अरज़ी[2] को उसकी जगह से हटा दूंगा। इस दावे की तस्दीक़[3] इन चिड़ियों की सरगर्मियाँ देखकर हो जाती है। पहले दीवार पर चोंच मार मार के इतनी जगह बना लेंगी कि पंजे टेकने का सहारा निकल आये। फिर उस पर पंजे जमा कर चोंच का फावड़ा चलाना शुरू कर देंगी, और इस ज़ोर से चलायेंगी कि सारा जिस्म सुकड़ सुकड़ कर काँपने लगेगा। और फिर थोड़ी देर के बाद देखिये तो कई इंच कुल्फ़ात उड़ चुकी होगी। मकान चूंकि पुराना है, इसलिये नहीं मालूम कितनी मर्तबा चूने और रेत की तहें दीवार पर चढ़ती रही हैं। अब मिल मिलाकर तामीरी मसाले का एक मोटा सा दल बन गया है। टूटता है तो सारे कमरे में गर्द का धूंआ फैल जाता है, और कपड़ों को देखिए तो ग़ुबार की तहें जम गई हैं।

इस मुसीबत का इलाज बहुत सरल था, याने मकान की अज सरे-नौ मरम्मत कर दी जाये और तमाम घोंसले बंद कर दिये जायें। लेकिन मरम्मत बग़ैर इसके मुमकिन न थी कि मैमार बुलाये जायें। और यहाँ बाहर का कोई आदमी अंदर क़दम रख नहीं सकता। यहाँ हमारे आते ही पानी के नल बिगड़ गये थे। एक मामूली मिस्तरी का काम था। लेकिन जब तक एक अंग्रेज फ़ौजी इंजीनियर कमांडिंग आफ़ीसर का परवानये-राहदारी लेकर नहीं आया उनकी मरम्मत न हो सकी।

चंद दिनों तक तो मैंने सब्र किया, लेकिन फिर बरदाश्त ने साफ़ जवाब दे दिया और फ़ैसला करना पड़ा कि अब लड़ाई के बग़ैर चारा नहीं।

मन ओ गुर्ज ओ मैदां ओ अफ़रासियाब[4]

यहाँ मेरे सामान में एक छतरी भी आ गई है। मैंने उठाई और ऐलाने-जंग कर दिया। लेकिन थोड़ी ही देर के बाद मालूम हो गया कि इस कोताहदस्ती के साथ इन हरीफ़ाने-सक़फ़ ओ महराब का मुक़ाबला मुमकिन नहीं। हैरान होकर कभी छतरी की नारसाई देखता, कभी हरीफ़ों की बुलंद आशयानी बेइख्तियार हाफ़िज़ का शेर याद आ गया।

ख़याले-क़द्दे-बुलंदे तू मीकुनद दिले-मन
तू दस्ते-कोतहे-मन बीं ओ आस्तीने-दराज़[5]

---

१. गारा २. धरती का गोला ३. पुष्टि ४. फ़िरदौसी के शाहनामे से है जिसमें रुस्तम कहता है — मैं हूं यह गदा है, यह मैदान है और अफ़रासियाब है ५. मेरा दिल तेरे ऊँचे क़द का ख़याल करता है, तू मेरे छोटे हाथों को और मेरी लंबी आस्तीनों को देख।

अब किसी दूसरे हथियार की तलाश हुई। बरामदे में जाला साफ़ करने का बांस पड़ा था। दौड़ता हुआ गया और उसे उठा लाया। अब कुछ न पूछिये कि मैदाने-कारज़ार[1] में किस ज़ोर का रन पड़ा। कमरे में चारों तरफ़ हरीफ़ तवाफ़[2] कर रहा था और मैं बांस उठाये दीवानावार उसके पीछे दौड़ रहा था। फ़िरदौसी और निज़ामी के रजज़[3] बेइख़्तियार ज़बान से निकल रहे थे।

ब ख़ंजर ज़मींरा मयस्तां कुनम
ब नेज़ा हवारा नयस्तां कुनम[4]

आख़िर मैदान अपने ही हाथ रहा और थोड़ी देर के बाद कमरा इन हरीफ़ाने-सफ़फ़ ओ महराब मे बिल्कुल साफ़ था।

बयक ताख़्तन ता कुजा ताख़्तम
च गर्दन कशांरा सर अंदाख़्तम[5]

अब मैंने छत के तमाम गोशों पर फ़तहमंदाना नज़र डाली और मुतमअिन[6] होकर लिखने में मशग़ूल हो गया। लेकिन अभी पंद्रह मिनट भी पूरे नहीं गुज़रे होंगे कि क्या सुनता हूं, हरीफ़ों की रजज़[7] ख़्वानियों और हवा पैमाइयों की आवाज़ें फिर उठ रही हैं। सर उठा के जो देखा तो छत का हर गोशा उनके क़ब्ज़े में था। मैं फ़ौरन उठा और बांस लाकर फिर मार्कये-कारज़ार[8] गर्म कर दिया।

बर आरम बिमार अज़ हमा लश्करश
ब आतिश बिसोज़म हमा किश्वरश[9]

इस मर्तबा हरीफ़ों ने बड़ी पामर्दी दिखाई। एक गोशा छोड़ने पर मजबूर होते तो दूसरे में डट जाते, लेकिन बिल आख़िर मैदान को पीठ दिखानी ही पड़ी। कमरे से भाग कर बरामदे में आये और वहां अपना लाव लश्कर नये सिरे से जमाने लगे। मैंने वहां भी तआक़्क़ुब किया और उस वक़्त तक हथियार हाथ से नहीं रखा कि सरहद से बहुत दूर तक मैदान साफ़ नहीं हो गया था।

अब दुश्मन की फ़ौज तितर बितर हो गई थी, मगर यह अंदेशा बाक़ी था कि कहीं फिर इकट्ठी होकर मैदान का रुख़ न करे। तजरुबे से मालूम हुआ था कि बांस के नेज़े की हैबत दुश्मनों पर ख़ूब छा गई है। जिस तरफ़ रुख़

---

१. लड़ाई का मैदान २. प्रदक्षिणा ३. वीर रसपूर्ण कविता को कहते हैं ४. ख़ंजर से ज़मीन को शराब की दुनिया और नेज़े से हवा को बांसों की दुनिया करता हूं ५. एक दौड़ में मैं कहां भागा और कैसे कैसे सरकशों के सर को निशाना बनाया ६. निश्चिंत ७. लड़ाई के गीत पढ़ना ८. लड़ाई का हंगामा ९. उसके तमाम लश्कर में हलाकत करता हूं और उसके तमाम मुल्क को आग से जलाता हूं।

करता था, उसे देखते ही कलमये-फ़रार पढ़ते थे। इसलिये फ़ैसला किया कि अभी कुछ अर्से तक इसे कमरे ही में रहने दिया जाय। अगर किसी इक्का-दुक्का हरीफ़ ने रुख करने की जुरअत भी की तो यह सरबफ़लक नेज़ा देखकर उल्टे पाँव भागने पर मजबूर हो जायगा। चुनांचे ऐसा ही किया गया। सबसे पुराना घोंसला मुंह धोने की टेबल के ऊपर था। बांस इस तरह वहाँ खड़ा कर दिया गया कि उसका सिरा ठीक ठीक घोंसले के दरवाज़े के पास पहुँच गया था। अब गो मुस्तक़बिल[1] अंदेशों से खाली न था, ताहम तबीयत मुतमइन थी कि अपनी तरफ़ से सरोसामाने-जंग में कोई कमी नहीं की गई। मीर का यह शेर ज़बानों पर चढ़कर बहुत पामाल हो चुका है, ताहम मौक़े का तक़ाज़ा टाला भी नहीं जा सकता।

शिकस्त ओ फ़तह नसीबों से है वले अय मीर
मुक़ाबला तो दिले-नातवां ने[2] ख़ूब किया !

अब ग्यारह बज रहे थे। मैं खाने के लिये चला गया। थोड़ी देर के बाद वापस आया तो कमरे में क़दम रखते ही ठिठक के रह गया। क्या देखता हूँ कि सारा कमरा फिर हरीफ़ के क़ब्ज़े में है और इस इत्मीनान ओ फ़राग़त से अपने कामों में मशग़ूल हैं, जैसे कोई हादसा[3] पेश आया ही नहीं। सबसे बढ़कर यह कि जिस हथियार की हैबत पर इस दर्जे भरोसा किया गया था, वही हरीफ़ों की काम-जोइयों[4] का एक नया आला साबित हुआ। बांस का सिरा जो घोंसले से बिलकुल लगा हुआ था, घोंसले में जाने के लिये अब दहलीज़ का काम देने लगा है। तिनके चुन चुन कर लाते हैं और इस नौतामीर दहलीज़ पर बैठकर ब इत्मीनाने-तमाम घोंसले में बिछाते जाते हैं। साथ ही चूं चूं भी करते जाते हैं। अजब नहीं यह मिसरा गुनगुना रहे हों कि—

अदू शवद सबबे-ख़ैर गर ख़ुदा ख़्वाहद[5]

अपनी वहमी फ़तहमंदियों का यह हसरत अंगेज़ अंजाम देखकर बेइख्तियार हिम्मत ने जवाब दे दिया। साफ़ नज़र आ गया कि चंद लमहों के लिये हरीफ़ को आजिज़ कर देना तो आसान है, मगर उनके जोशे-इस्तक़ामत[6] का मुक़ाबला करना आसान नहीं। और अब इस मैदान में हार मान लेने के सिवा कोई चारये-कार नहीं रहा।

बया, कि मा सिपर अंदाख़्तेम अगर जंग स्त ![7]

अब यह फ़िक्र हुई कि ऐसी रस्म ओ राह इख्तियार करनी चाहिये कि इन ना-

---

१. भविष्य २. कमज़ोर दिल ३. घटना ४. प्रवृत्तियों का
५. ईश्वर चाहे तो दुश्मन भी शुभ हेतु का कारण बन जाता है ६. दृढ़ता
७. आओ, अगर लड़ाई है तो हमने ढाल फेंक दी है।

ख्वांदा महमानों के साथ एक घर में गुज़ारा हो सके। सबसे पहले चारपाई का मामला सामने आया। यह बिलकुल नई तामीरात की ज़द[1] में थी। पुरानी इमारत के गिरने और नई तामीरों के सरो सामान से जिस क़दर गर्द ओ ग़ुबार और कूड़ा करकट निकलता, सबका सब इसी पर गिरता। इसलिये इसे दीवार से इतना हटा दिया गया कि बराहे-रास्त ज़द में न रहे। इस तबदीली से कमरे की शक्ल ज़रूर बिगड़ गई, लेकिन अब इसका इलाज ही क्या था? जब ख़ुद अपना घर ही अपने क़ब्ज़े में न रहा तो फिर शक्ल ओ तरतीब की आराइशों[2] की किसे फ़िक्र हो सकती थी? अलबत्ता मुँह धोने के टेबल का मामला इतना आसान न था। वो जिस गोशे में रखा गया था, सिर्फ़ वही जगह उसके लिये निकल सकती थी। ज़रा भी इधर-उधर करने की गुंजाइश न थी। मजबूरन यह इंतज़ाम करना पड़ा कि बाज़ार से बहुत से झाड़न मँगवाकर रख लिये और टेबल की हर चीज़ पर एक एक झाड़न डाल दिया। थोड़ी थोड़ी देर के बाद उन्हें उठाकर झाड़ देता और फिर डाल देता। एक झाड़न इस ग़र्ज़ से रखना पड़ा कि टेबल की सतह की सफ़ाई बराबर होती रहे। सबसे ज्यादा मुश्किल मसला फ़र्श की सफ़ाई का था। लेकिन इसे भी किसी न किसी तरह हल किया गया। यह बात तय कर ली गई कि सुबह की मामूली सफ़ाई के अलावा भी कमरे में बार बार झाड़ू फिर जाना चाहिये। एक नया झाड़ू मँगवाकर आलमारी की आड़ में छुपा दिया। कभी दिन में दो मर्तबा, कभी तीन मर्तबा, कभी इससे भी ज्यादा उससे काम लेने की ज़रूरत पेश आती। यहाँ हर दो कमरे के पीछे एक क़ैदी सफ़ाई के लिये दिया गया है। ज़ाहिर है कि वो हर वक़्त झाड़ू लिये खड़ा नहीं रह सकता था। और अगर रह भी सकता तो उस पर इतना बोझ डालना इंसाफ़ के ख़िलाफ़ था। इसलिये यह तरीक़ा इख़्तियार करना पड़ा कि ख़ुद ही झाड़ू उठा लिया और हमसायों की नज़रें बचा के जल्द जल्द दो चार हाथ मार दिये। देखिये इन नाख्वांदा महमानों की ख़ातिर तवाज़ा[3] में कन्नासी[4] तक करनी पड़ी।

इश्क़ अर्ज़ी बिसयार कर्द स्त ओ कुनद![5]

एक दिन ख़याल हुआ कि जब सुलह हो गई तो चाहिये कि पूरी तरह सुलह हो। यह ठीक नहीं कि रहें एक ही घर में और रहें बेगानों[6] की तरह। मैंने बावरची-ख़ाने से थोड़ा सा कच्चा चावल मँगवाया और जिस सोफ़े पर बैठा करता हूँ उसके सामने की दरी पर चंद दाने छिटक दिये। फिर इस तरह सँभल कर बैठ

१. मार, Range २. सजावट ३. आव भगत ४. झाड़ू देने का काम ५. प्रेम ने इससे ज्यादा काम किये हैं और करता है ६. अपरिचितों की तरह।

गया जैसे कि शिकारी दाम[1] बिछा के बैठ जाता है। देखिये, उर्फ़ी का शेर सूरते-हाल पर कैसा चस्पा हुआ है।

फ़तादम दाम बर कुंजश्क ओ शादम, यादे-आं हिम्मत
कि गर सीमुर्ग मी आमद ब दाम, आज़ाद मीकर्दम ![2]

कुछ देर तक तो मेहमानों की तवज्जो नहीं हुई। और अगर हुई भी तो एक ग़लत अंदाज़[3] नज़र से मामला आगे नहीं बढ़ा। लेकिन फिर साफ़ नज़र आ गया कि माशूक़ाने-सितम[4] पेशा के तग़ाफ़ुल की तरह यह तग़ाफ़ुल भी नज़रबाज़ी का एक पर्दा है। वर्ना नीले रंग की दरी पर सफ़ेद सफ़ेद उभरे हुये दानों की कशिश ऐसी नहीं कि काम न कर जाये।

हूर ओ जन्नत जलवा बर ज़ाहिद दिहद दर राहे-दोस्त
अंदक अंदक इश्क़ दर कार आवुरद बेगाना रा[5]

पहले एक चिड़िया आई और इधर उधर कूदने लगी। बज़ाहिर चहचहाने में मशग़ूल थी मगर नज़र दानों पर थी। वहशी यज़दी क्या ख़ूब कह गया है।

ब लुत्फ़हा कि दरीं शेवये-निहानी नेस्त
ख़िनायते कि तू दारी बमन, बयानी नेस्त[6]

फिर दूसरी आई और पहली के साथ मिलकर दरी का तवाफ़ करने लगी। फिर तीसरी और चौथी भी पहुँच गई। कभी दानों पर नज़र पड़ती, कभी दाना डालने वाले पर। कभी ऐसा मालूम होता जैसे आपस में कुछ मशविरा हो रहा है। कभी मालूम होता हर फ़र्द ग़ौर ओ फ़िक्र में डूबा हुआ है। आपने ग़ौर किया होगा कि गौरैया जब तफ़तीश और तफ़हहुस[7] की निगाहों से देखती है तो उसके चेहरे का अजीब संजीदा[8] अंदाज़ हो जाता है। पहले गर्दन उठाके सामने की तरफ़ देखेगी। फिर गर्दन मोड़ के दाहिने बायें देखने लगेगी। फिर कभी गर्दन को मरोड़ देकर ऊपर की तरफ़ नज़र उठायेगी और चेहरे पर तफ़हहुस और इस्तफ़हाम[9] का कुछ ऐसा अंदाज़ छा जायेगा, जैसे एक आदमी हर तरफ़ मुताज्जिबाना[10] निगाह डाल डाल कर अपने आपसे कह रहा हो कि आख़िर यह मामला है क्या ? और हो क्या रहा है ? ऐसी ही मुतफ़हि्हस[11] निगाहें इस

---

१. जंगल २. मैंने गोरैया पर जाल फैलाया और ख़ुश हूँ उस हिम्मत की याद करके कि अगर सीमुर्ग भी जाल में फँस जायगा तो मैं उसे आज़ाद कर दूंगा ३. उभरी हुई ४. सितम ढानेवाले माशूक़ ५. प्रियतम की राह में हूर और जन्नत ज़ाहिद को अपना रूप दिखाते हैं, इस प्रकार धीरे धीरे अपरिचितों को भी प्रेम में मशग़ूल कर लिया जाता है ६. इस गुप्त आदत में क्या ख़ूबी नहीं है। तेरी जो मुझ पर मेहरबानियां हैं उनका कोई बयान नहीं हो सकता ७. जुस्तजू या खोज की निगाह ८. गंभीरता ९. खोज और प्रश्नवाचकता १०. ताज्जुब भरी ११. खोजपूर्ण, प्रश्नवाचक।

वक़्त भी हर चेहरे पर उभर रही थीं।

पायम ब पेश अज़ सरे ईं कू नमीरवद
यारां ख़बर विहेद कि ईं जलवागाहे-कीस्त ?[1]

फिर कुछ देर के बाद आहिस्ता आहिस्ता क़दम बढ़ने लगे। लेकिन बराहे-रास्त दानों की तरफ़ नहीं। आड़े तिरछे होकर बढ़ते और कतरा कर निकल जाते। गोया यह बात दिखाई जा रही थी कि ख़ुदा न ख़्वास्ता हम दानों की तरफ़ नहीं बढ़ रहे हैं। दरोग़े-रास्त मानिंद[2] की यह नुमाइश देखकर बेइख़्तियार ज़हूरी का शेर याद आ गया।

बिगो हदीसे-वफ़ा, अज़ तू बा बुवस्त बिगो
शवम फ़िदाये-दरोग़े कि रास्त मानिंद स्त[3]

आप जानते हैं कि सैद[4] से कहीं ज्यादा सय्याद[5] को अपनी निगरानियां करनी पड़ती हैं। ज्यूं ही उनके क़दमों का रुख़ दानों की तरफ़ फिरा मैंने दम साध लिया। निगाहें दूसरी तरफ़ कर लीं और सारा जिस्म पत्थर की तरह बेहिस ओ हरकत बना लिया। गोया आदमी की जगह पत्थर की एक मूरती धरी है। क्योंकि जानता था, अगर निगाहे[6]-शौक़ ने मुज़्तरिब[7] होकर ज़रा भी जल्दबाज़ी की तो शिकार दाम के पास आते आते निकल जायेगा। यह गोया नाज़े-हुस्न[8] और नियाज़े-इश्क़[9] के मामलात का पहला मरहला था।

निहां अज़ ओ ब रुख़श दाश्तम तमाशाये
नज़र ब जानिबे-मा कर्द ओ शर्मसार शुदम[10]

ख़ैर, ख़ुदा ख़ुदा करके इस इश्वये-तग़ाफ़ुल[11] नुमा के इब्तदाई मरहले तै हुये, और एक बुते-तन्नाज़[12] ने साफ़ साफ़ दानों की तरफ़ रुख़ किया। मगर यह रुख़ भी क्या क़यामत का रुख़ था। हज़ार तग़ाफ़ुल उसके जिलों[13] में चल रहे थे। मैं बेहिस ओ हरकत बैठा दिल ही दिल में कह रहा था।

ब हर कुजा नाज़ सर बर आरद, नियाज़ हम पाये कम न दारद
तू ओ ख़रामे ब सद तग़ाफ़ुल, मन ओ निगाहे ब सद तमन्ना[14]

---

१. इस कूचे से मेरे पाँव आगे नहीं बढ़ते। दोस्तो बताओ कि यह किसकी जलवागाह है २. झूठ जो सत्य की तरह हो ३. वफ़ा की बात कह और तू सच कह। मैं तेरे झूठ पर भी फ़िदा हूँ जो सच की तरह है ४. शिकार ५. शिकारी ६. अनुरागपूर्ण आँखें ७. चंचल होकर ८. हुस्न के नाज़ और नख़रे ९. प्रेम की भावना १०. मैं उससे छिपकर उसके मुँह को देख रहा था। उसने मेरी तरफ़ निगाह की और मैं शर्मसार हो गया ११. उपेक्षाभरे हाव भाव १२. इशारों से बात करनेवाला माशूक़ १३. साथ साथ १४. जहाँ कहीं नाज़ होता है वहाँ नियाज़ भी कम नहीं होता। तेरी चाल और उसमें सैकड़ों उपेक्षाओं के भाव हैं और मैं एक निगाह में सैकड़ों अरमान लिये हूँ।

एक क़दम आगे बढ़ता था तो दो क़दम पीछे हटते थे। मैं जी ही जी में कह रहा था कि इल्तफ़ात ओ तग़ाफ़ुल[1] का यह मिला जुला अंदाज़ भी क्या ख़ूब अंदाज़ है। काश थोड़ी सी तब्दीली इसमें की जा सकती। दो क़दम आगे बढ़ते, एक क़दम पीछे हटता। ग़ालिब क्या ख़ूब कह गया है।

फ़िराक़ ओ वस्ल जुदागाना लज़्ज़ते दारद
हज़ार बार बिरो, सद हज़ार बार बया[2]

इल्तफ़ात ओ तग़ाफ़ुल की इन इश्वागरियों की अभी जलवा फ़रोशी हो रही थी कि नागहां एक तनूमंद[3] चिड़े ने जो अपनी क़लंदराना बेदिमाग़ी और रिंदाना जुरअतों के लिहाज़ से पूरे हल्क़े में मुमताज़ था, सिलसिलये-कार की दराज़ी से उकता कर बेबाकाना[4] क़दम उठा दिया। और ज़बाने-हाल से यह नारये-मस्ताना[5] लगाता हुआ बयक दफ़ा दानों पर टूट पड़ा कि—

क़देम बर सफ़े रिंदां ओ हर च बादा बाद![6]

इस एक क़दम का उठना था कि मालूम हुआ जैसे अचानक तमाम रुके हुये क़दमों के बंधन खुल पड़े। अब न किसी क़दम में झिजक थी, न किसी निगाह में तज़बज़ुब। मजमे का मजमा बयक दफ़ा दानों पर टूट पड़ा और अगर अंग्रेज़ी मुहावरे की ताबीर मुस्तआर ली जाये तो कहा जा सकता है कि हिजाब[7] ओ ताम्मुल[8] की सारी बर्फ़ अचानक टूट गई। या यों कहिये कि पिघल गई। ग़ौर कीजिये तो इस कारगाहे अमल के हर गोशे की क़दमरानियां[9] हमेशा इसी एक क़दम के इंतज़ार में रहा करती हैं। जब तक यह नहीं उठता सारे क़दम ज़मीन में गड़े रहते हैं। यह उठा और गोया सारी दुनिया अचानक उठ गई।

नामर्दी ओ मर्दी क़दमे फ़ासला दारद![10]

इस बज़्मे सूद ओ ज़यां[11] में कामरानी[12] का जाम कभी कोताहदस्तों[13] के लिये नहीं भरा गया। वो हमेशा उन्हीं के हिस्से में आया जो ख़ुद बढ़कर उठा लेने की जुरअत रखते थे। शाद अज़ीमाबादी मरहूम ने एक शेर क्या ख़ूब कहा था।

यह बज़्मे-मय है, यां कोताहदस्ती में है महरूमी[14]
जो बढ़कर ख़ुद उठा ले हाथ में, मीना उसी का है

इस चिड़े का यह बेबाकाना इक़दाम[15] कुछ ऐसा दिलपसंद वाक़े हुआ कि उसी वक़्त दिल ने ठान ली, इस मर्दे-कार[16] से रस्म ओ राह बढ़ानी चाहिये। मैंने

---

१. प्रेम और उपेक्षा २. वियोग और मिलन में अलग अलग आनंद है हज़ार बार जाओ और सौ हज़ार बार फिर आओ ३. मोटा ४. निडर होकर ५. मस्त नारा ६. मैं रिंदों की क़तार में आकर बैठ गया हूं अब जो होना हो सो हो ७. शर्म ८. संकोच ९. क़दम बढ़ना १०. मर्दानगी और नामर्दी में बस एक क़दम का फ़ासला है ११. नफ़े नुक़सान की दुनिया १२. सफलता १३. ओछे लोगों के लिये १४. वंचना १५. निडर होकर बढ़ना १६. काम के आदमी।

उसका नाम क़लंदर रख दिया। क्योंकि बेदिमाग़ी[1] और वारुस्तगी[2] की सरगरानियों के साथ एक ख़ास तरह का बाँकपन भी मिला हुआ था और उसकी वजए-क़लंदराना[3] को आब ओ ताब दे रहा था।

रहे इक बाँकपन भी बेदिमाग़ी में तो ज़ेबा है
बढ़ा दो चीने-अब्रू[4] पर अदाये-कजकुलाही[5] को!

दो तीन दिन तक इसी तरह उनकी ख़ातिर तवाज़ो होती रही। दिन में दो तीन मर्तबा दाने दरी पर डाल देता। एक एक करके आते और एक एक दाना चुन लेते। कभी दाना डालने में देर हो जाती तो क़लंदर आकर चूं चूं करना शुरू कर देता कि वक़्ते-माहूद[6] गुज़र रहा है। इस सूरते-हाल ने अब इत्मीनान दिला दिया था कि पर्दये-हिजाब[7] उठ चुका। वो वक़्त दूर नहीं कि रही सही झिजक भी निकल जायेगी।

और खुल जायेंगे दो चार मुलाक़ातों में!

चंद दिनों के बाद मैंने इस मामले का दूसरा क़दम उठाया। सिगरेट के ख़ाली टीन का एक ढकना लिया, उसमें चावल के दाने डाले और ढकना दरी के किनारे रख दिया। फ़ौरन मेहमानों की नज़र पड़ी। कोई ढकने के पास आकर मुँह मारने लगा, कोई ढकने के किनारे पर चढ़ कर ज़्यादा जमीयते-ख़ातिर[8] के साथ चुगने में मशग़ूल हो गया। आपस में रक़ीबाना[9] रद्द ओ कद[10] भी होती रही। जब देखा कि इस तरीक़ये-ज़ियाफ़त[11] से तबीयतें आश्ना हो गई हैं तो दूसरे दिन ढकना दरी के किनारे से कुछ हटा कर रखा। तीसरे दिन और ज़्यादा हटा दिया और बिल्कुल अपने सामने रख दिया। गोया इस तरह बतदरीज बुअ़्द[12] से क़ुर्ब[13] की तरफ़ मामला बढ़ रहा था। देखिये, बुअ़्द ओ क़ुर्ब के मामले ने आलिया बिन्तुल महदी का मतला याद दिला दिया :

व हब्बब फ़यिन्नल हुब्ब दायतुल हुब्बि
व कम्मिम बईदिद्दारे मुस्तौजिबल क़ुर्बे[14]

इतना क़ुर्ब देख कर पहले तो मेहमानों को कुछ ताम्मुल हुआ। दरी के पास आ गये मगर क़दमों में झिजक थी और निगाहों में तजस्सुस बोल रहा था। लेकिन इतने में क़लंदर अपने क़लंदराना नारे लगाता हुआ आ पहुँचा और उसकी रिंदाना जुरअतें देख कर सबकी झिजक दूर हो गई। गोया इस राह

१-२. बेपरवाही ३. क़लंदर की प्रकृति ४. भौहों की सिलवटों पर ५. टेढ़ी टोपी की अदा ६. तय किया हुआ समय ७. शर्म का परदा ८. दिल जमई के साथ ९. विरोधियों की तरह १०. छीना झपटी ११. मेहमाननवाज़ी १२. दूर १३. निकट १४. मुहब्बत कर क्योंकि मुहब्बत मुहब्बत से बढ़ती है और बहुत से ऐसे दूर रहने वाले हैं जो नज़दीक होने के लायक़ हैं।

में सब क़लंदर के पैरो हुए। जहाँ उसका क़दम उठा सबके उठ गये। वो दानों पर चोंच मारता, फिर सर उठा के और सीना तान के ज़बाने-हाल[1] से मुतरन्निम[2] होता।

वमद्दहरु इल्लामन रुवाति क़सायिदी
इज़ाक़ुल्तु शैरन् अस्बहद्दहरु मुंशिदा[3]

जब मामला यहाँ तक पहुँच गया तो फिर एक क़दम और उठाया गया और दानों का बरतन दरी से उठाके तिपाई पर रख दिया। यह तिपाई मेरे बाईं जानिब सोफ़े से लगी रहती है और पूरी तरह मेरे हाथ की ज़द में है। इस तब्दीली से ख़ूगर[4] होने में कुछ देर लगी। बार बार आते और तिपाई का चक्कर लगा के चले जाते। बिल आख़िर यहाँ भी क़लंदर ही को पहला क़दम बढ़ाना पड़ा। और उसका बढ़ाना था कि यह मंजिल भी पिछली मंज़िलों की तरह सब पर खुल गई। अब तिपाई कभी तो उनकी मजलिस-आराइयों का ऐवाने-तरब[5] बनती, कभी बाहमी मारका-आराइयों[6] का अखाड़ा।

जब इस क़दर नज़दीक आ जाने के ख़ूगर हो गये तो मैंने ख़याल किया, अब मामला कुछ और आगे बढ़ाया जा सकता है। एक दिन सुबह यह किया कि चावल का बरतन सोफ़े पर ठीक अपनी बग़ल में रख दिया और फिर लिखने में इस तरह मशग़ूल हो गया गोया इस मामले से कोई सरोकार नहीं।

दिल ओ जानम ब तू मशग़ूल ओ नज़र बर चप ओ रास्त
ता नदानंद रक़ीबां कि तू मंज़ूरे-मनी ![7]

थोड़ी देर के बाद क्या सुनता हूँ कि ज़ोर ज़ोर से चोंच मारने की आवाज़ आ रही है। कनखियों से देखा तो मालूम हुआ कि हमारा पुराना दोस्त क़लंदर पहुँच गया है और बेतकान चोंच मार रहा है। ढकना चूंकि बिल्कुल पास धरा था इसलिये उसकी दुम मेरे घुटने को छू रही थी। थोड़ी देर के बाद दूसरे याराने-तेज़गाम[8] भी पहुंच गये और फिर तो यह हाल हो गया कि हर वक़्त दो तीन दोस्तों का हल्क़ये-बेतकल्लुफ़ मेरे बग़ल में उछल कूद करता रहता। कभी, कोई सोफ़े की पुश्त पर चढ़ जाता, कभी कोई जस्त लगा कर किताबों पर खड़ा हो जाता, कभी नीचे उतर आता और चूं चूं करके फिर

---

१. अपनी हालत से कहना २. गुनगुना रहा था ३. और दुनिया कुछ भी नहीं है सिर्फ़ मेरे क़सीदों के पढ़ने वालों से भरी हुई है। जब मैं शेर कहता हूँ तो सारी दुनिया उसे पढ़ने लगती है ४. परिचित ५. ख़ुशी का महल ६. लड़ाई झगड़े का ७. मेरा दिल और जान तो तुझ में लीन है और दृष्टि दायें बायें है। ताकि दुश्मन यह न जानें कि तू मेरी दृष्टि में है। ८. तेज़ क़दम चलने वाले दोस्त।

वापस आ जाता। बेतकल्लुफ़ी की इस उछल कूद में कई मर्तबा ऐसा भी हुआ कि मेरे कांधे को दरख़्त की एक झुकी हुई शाख समझ कर अपनी जस्त ओ ख़ेज़[1] का निशाना बनाना चाहा। लेकिन फिर चौंक कर पलट गये, या पंजों से उसे छूआ और ऊपर ही ऊपर निकल गये। गोया अभी मामला उस मंज़िल से आगे नहीं बढ़ा था जिसका नक़्शा वहशी यज़दी ने खींचा है।

हनूज़ आशिक़ी ओ दिलरुबाइये न शुदा स्त
हनूज़ ज़ोरी ओ मर्द आज़माइये न शुदा स्त
हमीं तवाज़ा आम स्त हुस्न रा बा इश्क़
मयाने-नाज़ ओ नियाज़ आश्नाइये न शुदा स्त[2]

बहर हाल रफ़्ता रफ़्ता इन आहवाने-हवाई[3] को यक़ीन हो गया कि यह सूरत हमेशा सोफ़े पर दिखाई देती है, आदमी होने पर भी आदमियों की तरह खतरनाक नहीं है। देखिये मुहब्बत का अफ़सूं[4] जो इंसानों को राम नहीं कर सकता, वहशी परिंदों को राम कर लेता है।

दर्से-वफ़ा अगर बुवद ज़मज़मये-मुहब्बते
जुमा ब मकतब आवुरद तिफ़्ले-गुरेज़ पायेरा[5]

बारहा ऐसा हुआ कि मैं अपने ख़यालात में महू,[6] लिखने में मशग़ूल हूँ, इतने में कोई दिलनशीं बात नोके-क़लम पर आ गई, या इबारत की मुनासिबत ने अचानक कोई पुरकैफ़[7] शेर याद दिला दिया और बेइख़्तियार उसकी कैफ़ियत की ख़ुदरफ़्तगी[8] में मेरा सर ओ शाना[9] हिलने लगा। या मुंह से "हा" निकल गया और यकायक ज़ोर से परों के उड़ने की एक फुर सी आवाज़ सुनाई दी। अब जो देखता हूँ तो मालूम हुआ कि इन याराने-बेतकल्लुफ़ का एक तायफ़ा[10] मेरी बग़ल में बैठा बे-ताम्मुल[11] अपनी उछल कूद में मशग़ूल था। अचानक उन्होंने देखा कि यह पत्थर अब हिलने लगा है तो घबरा कर उड़ गये। अजब नहीं, अपने जी में कहते हों, यहाँ सोफ़े पर एक पत्थर पड़ा रहता है, लेकिन कभी कभी आदमी बन जाता है!

---

१. उछल कूद २. अभी आशिक़ और माशूक़ नहीं हुआ है, अभी शक्तिशाली और मर्दानगी आज़माने वाला नहीं हुआ है, रूप और प्रेम में यही आम रीति है अभी नाज़ नख़रों और प्रेम की विनीतता से परिचित नहीं हुआ है। ३. हवा के हिरनों को ४. जादू ५. वफ़ा का पाठ अगर प्रेम के कील के समान हो तो स्कूल से भागने वाला लड़का जुमे की छुट्टी के दिन भी स्कूल आ जायगा। ६. तल्लीन ७. मस्ती भरा ८. आत्म विस्मृतता ९. कंधे १० झुंड ११. निस्संकोच।

क़िलअ-अहमदनगर
१८, मार्च सन् १९४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

कल जो कहानी शुरू हुई थी, वो अभी ख़त्म कहाँ हुई ? आइये आज आपको इस "मंतिक़ उत्तैर[1]" का एक दूसरा बाब सुनाऊँ। मालूम नहीं अगर आप सुनते होते तो शौक़ ज़ाहिर करते या उकता जाते ? लेकिन अपनी तबीयत को देखता हू तो ऐसा मालूम होता है जैसे दास्तांसराइयों[2] से थकना बिल्कुल भूल गई हो। दास्तानें जितनी फैलती जाती हैं, ज़ौक़े-दास्तांसराई भी उतना ही बढ़ता जाता है।

फ़रखुंदा शबे बायद ओ ख़ुश महताबे
ता बा तू हिकायत कुनम अज़ हर बाबे ![3]

इन याराने-सक़्फ़ ओ महारीब[4] में और मुझमें अब ख़ौफ़ ओ तज़बज़ुब[5] का एक हल्का सा पर्दा हायल रह गया था। चंद दिनों में वो भी उठ गया।

उन्हें छत से सोफ़े पर उतरने के लिए चंद दरम्यानी मंज़िलों की ज़रूरत थी। अब यह तरीक़ा इख़्तियार किया गया कि पहली मंज़िल का काम पंखे के दस्तों से लेते, और दूसरी का मेरे सर और कांधों से। बाहर से उड़ते हुए कमरे में आये और सीधे अपने घोंसले में पहुँच गये। फिर वहाँ से सर निकाल कर हर तरफ़ नज़र दौड़ाई और पूरे कमरे का जायज़ा ले लिया। फिर वहाँ से उड़े और सीधे पंखे के दस्ते पर पहुँच गये। फिर दस्ते से जो कूदे तो कभी मेरे सर को अपने क़दमों की जौलानगाह[6] बनाया, कभी कांधों को अपने जुलूस[7] से इज़्ज़त बख़्शी। देखिये, इन चिड़ियों ने नहीं मालूम कितने बरसों के बाद मोमिन ख़ां का तरकीब बंद याद दिला दिया।

जौलां[8] को है उसका क़स्दे-पामाल
अय ख़ाक ! नसीबे सर-फ़राज़ी ![9]

पहली दफ़ा तो इस नागहानी नुज़ूले-इजलाल[10] ने मुझे चौंका दिया था और शर्मिंदगी के साथ ऐतराफ़[11] करना पड़ता था कि चौंक कर हिल गया था। क़ुदरती तौर पर इन आश्नायाने-ज़ूदगुसल[12] पर यह नाक़दरशनासी गरां

---

१. चिड़ियों की बातें २. कहानी कहने की प्रवृत्ति ३. कोई मुबारक रात हो और सुंदर चाँदनी ताकि तुझसे हर तरह की कहानियाँ कहूं ४. छत और मेहराबों के यार ५. डर और दुविधा ६. अखाड़ा ७. बैठना ८. चलना ९. ख़ाक तेरे लिये सर बुलंदी की बात है १०. शानदार अवतरण ११. स्वीकार १२. जल्दी तोड़ देने वाले।

गुज़री होगी। लेकिन यह जो कुछ हुआ महज़ एक इज़्तिरारी सह्व[1] था। तबीयत फ़ौरन मुतनब्बा[2] हो गई, और फिर तो सर और कांधा कुछ ऐसा बेहिस होकर रह गया कि मिनारे की छतरी की जगह बालाख़ाने का काम देने लगा। पंखे से उतर कर सीधे काँधे पर पहुँचते, कुछ देर चहचहाते और फिर कूदकर सोफ़े पर पहुँच जाते। कई बार ऐसा भी हुआ कि काँधे से जस्त[3] लगाई और सर पर जा बैठे। आपको मालूम है कि आतिशी कंधारी ने अपनी आँखों की कश्ती बनाई थी। बदायूनी ने उसका यह शेर नक़ल किया है :

सरश्कम रफ़्ता रफ़्ता बे तू दरया शुद, तमाशा कुन
बया, दर किश्तिये-चश्मम नशीं ओ सैरे-दरया कुन ![4]

और हमारे सौदा को ताम्मुल हुआ था।

आँखों में दूँ उस आईना रू को जगह वले
टपका करे है बस कि यह घर, नम बहुत है यां

लेकिन मेरी ज़बाने-हाल को शेख़ शीराज़ की इल्तजाये-नियाज़[5] मुस्तआर लेनी पड़ी।

गर बर सर ओ चश्मे-मन नशीनी
नाज़त बकशम कि नाज़नीनी[6]

जब मामला यहाँ तक पहुँच गया तो ख़याल हुआ अब एक और तजरुबा भी क्यों न कर लिया जाये ? एक दिन सुबह मैंने दानों का बरतन कुछ देर तक नहीं रखा। मेहमानाने-बा-सफ़ा[7] बार बार आये और जब सुफ़रये-ज़याफ़त[8] दिखाई नहीं दिया तो इधर उधर चक्कर लगाने और शोर मचाने लगे। अब मैंने बरतन निकाल के हथेली पर रख लिया और हथेली सोफ़े पर रख दी। ज्यूँ ही क़लंदर की नज़र पड़ी, मअन जस्त लगाई और एक चक्कर लगा के अँगूठे पर आ खड़ा हुआ और फिर तेज़ी के साथ दानों पर चोंच मारने लगा। इस तेज़ी में कुछ तो तबए-क़लंदराना[9] का क़ुदरती-तक़ाज़ा था, और कुछ यह वजह भी होगी कि देर तक दानों का इंतज़ार करना पड़ा था। चोंच की तेज़ ज़र्बों[10] से दाने उड़ उड़कर ढकने से बाहर गिरने लगे। एक दाना उँगली की जड़ के पास भी गिर गया। उसने फ़ौरन वहाँ भी एक चोंच मार दी और

१. अनिच्छा की भूल २. सचेत ३. छलांग ४. मेरे आँसू तेरे बिना धीरे धीरे दरिया हो गये, यह तमाशा देख। तू आ और मेरी आँखों की कश्ती में बैठ और दरिया की सैर कर ५. प्रणय प्रार्थना ६. अगर तू मेरे सर और आँखों में बैठे तो मैं तेरे नाज़ उठाऊंगा क्योंकि तू नाज़नीन है ७. सच्चे मेहमान ८. मेहमानी का दस्तरख़्वान ९. क़लंदराना प्रकृति १०. चोट।

ऐसी खारा शिगाफ़[1] मारी कि क्या कहूं। मगर सितमपेशों के जोर ओ जफ़ा का खूगर न हो चुका होता तो यक़ीन कीजिये बेइख्तियार मुंह से चीख निकल जाती

मन कुश्तये-करिश्मये-मिश्रगां कि बर जिगर
खंजर चुनां चुनां कि निगहरा खबर न शुद ![2]

अब मैंने हथेली बरतन समेत ऊपर उठा ली और हवा में मुअल्लक़[3] कर दी। थोड़ी देर नहीं गुजरी थी कि एक दूसरी चिड़िया आई। अभी थोड़ी देर के बाद आपको मालूम होगा कि इसका नाम मोती है। मोती ने हथेली के ऊपर एक दो चक्कर लगाये और निकल गई। गोया अंदाजा करना चाहती थी कि इस जजीरे[4] पर उतरने के लिये महफ़ूज[5] जगह कौन सी होगी। फिर दुबारा आई और कुहनी के पास उतर कर सीधी पुहँचे के पास पहुँच गई और पुहँचे से हथेली की खाकनाय[6] पर उतर कर बेतकान मिन्क़ारदराजियाँ[7] शुरू कर दीं। इसमें कोई दाना क़ाब[8] के बाहर गिर गया तो चोंच का एक नश्तर उस पर भी लगा दिया। देखिये "दस्तदराजी" की तरकीब में तसर्रुफ़[9] करके मुझे "मिन्क़ार दराजी" की तरकीब वजा करनी पड़ी। जानता हूं कि मुहावरात में तसर्रुफ़ात की गुंजाइश नहीं होती। मगर क्या किया जाये, साबक़ा ऐसे याराने-कोतहआस्तीन से आ पड़ा जो हाथ की जगह मुँह से "दराज दस्तियाँ" करते हैं।

दराजदस्तिये-ईं कोतह आस्तीनां बीं ![10]

लेकिन इस आखिरी तजरुबे ने तबअ़े-काविश पसंद[11] को एक दूसरी ही फ़िक्र में डाल दिया। जौक़े-इश्क़[12] की इस कोताही[13] पर शर्म आई कि हथेली मौजूद है मैं नामुराद[14] टीन के ढकने पर इन मिन्क़ारों[15] की नश्तरजनी जाया कर रहा हूं। मैंने दूसरे दिन टीन का ढकना हटा दिया। चावल के दाने हथेली पर रखे और हथेली फैला कर सोफ़े पर रख दी। सबसे पहले मोती आई और गर्दन उठा उठा के देखने लगी कि आज ढकना क्यों दिखाई नहीं देता ? यह इस बस्ती की सबसे ज्यादा खूबसूरत चिड़िया है। आज कल हुस्न की नुमायशों में खूबरूई और दिलावेजी का जो फ़िल्मागर सबसे ज्यादा कामयाब होता है उसे

---

१. पत्थर को चीरने वाली २. मैं आंखों की पलकों के करिश्मों का मारा हुआ हूं कि जिगर पर उसने ऐसा खंजर मारा कि निगाह को खबर तक न हुई। ३. अधर लटकाना ४. टापू ५. सुरक्षित ६. स्थल डमरूमध्य ७. चोंच मारना ८. रकाबी ९. काट छांट १०. इन कोतह आस्तीनों की दराजदस्तियाँ देखो ११. कठिन बातों का अन्वेषण करने वाली प्रकृति १२. प्रेम की लगन १३. ओछापन १४. अभागा १५. चोंच।

पूरे मुल्क की निस्बत से मौसूम कर दिया करते हैं। मसलन कहेंगे मिस इंग्लैंड, मादीमोज़ेल फ्रांस (Mademoiselle) गोया एक हसीन चेहरे के चमकने से सारे मुल्क और क़ौम का चेहरा चमक उठता है।

कुनंद ख़ेश ओ तबार अज़ तू नाज़ ओ मीज़ेबद
ब हुस्ने-यक तन अगर सद क़बीला नाज़ कुनद ![1]

अगर यह तरीक़ा मोती के लिये काम में लाया जाये तो उसे मादाम क़िलअ़े-अहमदनगर से मौसूम कर सकते हैं।

ईं निगाहे स्त कि शाइस्तये-दीदारे हस्त ![2]

छरेरा बदन, निकलती हुई गर्दन, मख़रूती[3] दुम और गोल गोल आँखें एक अजीब तरह का बोलता हुआ भोलापन। जब दाना चुगने के लिये आयेगी तो हर दाने पर मेरी तरफ़ देखती जायेगी। हम दोनों की ज़बानें ख़ामोश रहती हैं मगर निगाहें गोया[4] हो गई हैं। वो मेरी निगाहों की बोली समझने लगी है। मैंने उसकी निगाहों को पढ़ना सीख लिया है। हा वहशी यज़्दी ने इन मामलात को क्या डूब कर कहा है।

करिश्मा गर्मे-सवाल स्त, लब मकुन रंजा
कि एहतियाज ब पुरसीदने-ज़बानी नेस्त[5]

बहर हाल इस मौक़े पर भी उसकी बेसाख़्ता निगाहों ने मुझसे कुछ कहा और फिर बग़ैर किसी झिझक के जस्त लगाके अँगूठे की जड़ पर आ खड़ी हुई और दानों पर चोंच मारना शुरू कर दिया। यह चोंच नहीं थीं, नश्तर की नोक थी जो अगर चाहती तो हथेली के आर पार हो जाती। मगर सिर्फ़ चरके लगा लगाके रुक जाती थी।

यक नावके-कारी ज़ कमाने तू न ख़ुर्दम
हर ज़ख़्मे-तू मोहताज ब ज़ख़्मे-दिगरम कर्द ![6]

हर मर्तबा गर्दन मोड़ के मेरी तरफ़ देखती भी जाती थी गोया पूछ रही थी

१. अपने और ख़ानदान के लोग तुझ पर नाज़ करते हैं और यह ठीक है अगर एक ख़ूबसूरत चेहरे के होने से सौ क़बीले नाज़ करने लगें। २. यही निगाह है जो दर्शन करने के लायक है ३. वह आकृति जिसका एक सिरा पतला और दूसरा चौड़ा हो ४. बात करने वाली ५. हाव-भाव में ही सवाल छिपा हुआ है, होठों को मत तकलीफ़ दे। यहाँ ज़बान से पूछने की ज़रूरत नहीं है। ६. तेरी कमान से मुझे एक भी क़ातिल तीर नहीं लगा। तूने जो भी ज़ख़्म दिया उसने मुझे दूसरे ज़ख़्म का मोहताज कर दिया।

कि दर्द तो नहीं हो रहा ? भला मैं जां बाख्तये-लज्जते-अलम[1] इसका क्या जवाब देता ?

ईं सुखनरा ब जवाब स्त, तू हम मीदानी[2] !

मिर्जा सायब का यह शेर आप की निगाहों से गुजरा होगा।

खेश रा बर नोके-मिजगाने - सितमकोशां जदम
आं क़दर जख्मे कि दिल मीख्वास्त दर खंजर न बूद[3]

मुझे इसमें इस क़दर तसर्रुफ़ करना पड़ा कि मिजगां की जगह "मिन्क़ार" कर दिया।

खेश रा बर नोके-मिन्क़ारे-सितमकोशां जदम
आं क़दर जख्मे कि दिल मीख्वास्त दर खंजर न बूद[4]

दर्द का हाल तो मालूम नहीं, मगर चोंच की हर जर्ब जो पड़ती थी, हथेली की सतह पर एक गहरा जख्म डाल के उठती थी ।

रसीदनहाये मिन्क़ारे-हुमा बर उस्तख्वां ग़ालिब
पस अज उम्रे ब यादम दाद रस्मो राहे पैकांरा[5]

इस बस्ती के अगर आम बाशिंदों से क़ता[6] नज़र कर ली जाये तो खवास[7] में चंद शख्सीयतें खुसूसियत के साथ क़ाबिले-जिक्र हैं। क़लंदर और मोती से आपकी तक़रीब[8] हो चुकी है। अब मुख्तसरन मुल्ला और सूफ़ी का हाल भी सुन लीजिये। एक चिड़ा बड़ा ही तनूमंद और झगड़ालू है। जब देखो जबान फ़र फ़र चल रही है, सर उठा हुआ और सीना तना हुआ रहता है। जो भी सामने आ जाये दो दो हाथ किये बग़ैर नहीं रहेगा। क्या मजाल कि हम-साये का कोई चिड़ा इस मुहल्ले के अंदर क़दम रख सके। कई शहजोरों ने हिम्मत दिखाई लेकिन पहले ही मुक़ाबले में चित हो गये। जब कभी फ़र्श पर याराने-शहर की मजलिस आरास्ता होती है, तो यह सर ओ सीने को जुंबिश देता हुआ और दाहिने बायें नज़र डालता हुआ फ़ौरन आ मौजूद होता है। और आते ही उचक कर किसी बुलंद जगह पर पहुँच जाता है। फिर अपने

१. पीड़ा के स्वाद पर जान से खेलने वाला २. इस बात का क्या जवाब है यह तू भी जानता है। ३. खुद को मैंने सितम ढाने वालों की पलकों की नोंक पर दे मारा क्योंकि जैसा जख्म दिल चाहता था वह खंजर की नोंक में नहीं था। ४. इसमें पलकों की नोंक की जगह चोंच की नोंक कर दिया है ५. हुमा की चोंच जो हड्डियों पर लगी तो बहुत दिनों बाद मुझे तीर की नोंक की बातें याद आ गई ६. हटा लेना ७. खास लोगों में ८. मुलाक़ात

शेवये-ख़ास[1] में इस तसलसुल[2] के साथ चूं चां, चूं चां शुरू कर देता है कि ठीक ठीक क़ाम्रानी के वाज़के-जामे का नक़्शा आँखों में फिर जाता है।

दी वाज़के आमद दर मस्जिदे-जामे
चुं बर्फ़ हमा जामा सपेद अज़ पा ता सर
चश्मश ब सूये-चप, ओ चश्मश ब सूये-रास्त
ता ख़ुद के सलामे कुनद अज़ मुनइम ओ मुख्तर
ज़ां साल कि ख़रामद ब रसन मर्दे-रसन बाज़
आहिस्ता ख़रामीदी ओ मौज़ूं ओ मुबक़्क़र
फ़ारिग़ न शुदा ख़ल्क़ ज़ तस्लीम ओ तशहहुद
बरजस्त चु बूज़ीना ओ बिनिशस्त ब मिंबर
वां गह ब सर ओ गर्दन ओ रीश ओ लब ओ बीनी
बस इश्वा बयावुर्दा सुख़न कर्द चुनीं सर[3]

फ़रमाइये, अगर इसका नाम मुल्ला न रखता तो और क्या रखता? ठीक इसके बर अक्स एक दूसरा चिड़ा है। तोरफुलअशियाअु बिअज़दादिहा[4] इसे जब देखिये अपनी हालत में गुम और ख़ामोश है।

कांरा कि ख़बर शुद, ख़बरश बाज़ नयामद[5]

बहुत किया तो कभी कभार एक हल्की सी नातमाम चूं की आवाज़ निकाल दी और इस नातमाम चूं का भी अंदाज़ लफ़्ज़ ओ सुख़न का सा नहीं होता। बल्कि एक ऐसी आवाज़ होती है जैसे कोई आदमी सर झुकाये अपनी हालत में गुम पड़ा रहता हो और कभी कभी सर उठा के "हा" कर देता हो।

ता तू बेदार शवी, नाला कशीदम, वर्ना
इश्क़ कारे स्त कि बे आह ओ फ़ुग़ां नीज़ कुनद[6]

१. ख़ास आदत के अनुसार २. अनवरतता ३. कल एक टुच्चा सा धर्मोपदेशक जामे मस्जिद में आया जो बर्फ़ की तरह सर से पैर तक सफ़ेद कपड़े पहने हुये था। उसकी आँखें कभी बायें तो कभी दाहिने देखती थीं ताकि उसे बड़ों और छोटों में से कौन सलाम करता है। उस साल जब एक नट रस्सी पर चला था उसी तरह यह भी धीरे धीरे ठीक उसी तरह शान के साथ चल रहा था। दुनिया उसे सलाम करने से अभी फ़ारिग़ भी नहीं हुई थी कि वह बंदर की तरह उछला और धर्म मंच पर बैठ गया। और तब सिर, गर्दन, दाढ़ी, होंठ और नाक से नख़रे करते हुये यों कहना शुरू किया। ४. चीज़ों को उनकी विरोधी चीज़ों से जानो ५. जिन्हें ख़बर हुई उनकी फिर ख़बर नहीं आती ६. तू जाग जाये इसलिये मैं आह कहता हूँ, वर्ना इश्क़ वो काम है जो बिना आह के भी करता है।

दूसरे चिड़े उसका पीछा करते रहते हैं। गोया उसकी कम सुख़नी से आजिज़ आ गये हैं। फिर भी उसकी ज़बान खुलती नहीं। अलबत्ता निगाहों पर कान लगाइये तो उनकी सदाये-ख़ामोशी[1] सुनी जा सकती है।

तू नज़रबाज़ नई वर्ना तग़ाफ़ुल निगह अस्त !
तू ज़बांफ़हम नई, वर्ना ख़मोशी सुख़न अस्त ![2]

मैंने यह हाल देखा तो उसका नाम सूफ़ी रख दिया और वाक़या यह है कि यह तलक़्क़ुब[3]

जामये बूद कि बर क़ामते-ऊ दोख़्ता बूद ![4]

सुबह जब इस बस्ती के तमाम बाशिंदे बाहर निकलते हैं तो बरामदे और मैदान में अजीब चहल पहल होने लगती है। कोई फूल के गमलों पर कूदता फिरता है, कोई क्रोटन की शाख़ों में झूला झूलने लगता है। एक जोड़े ने ग़ुसल[5] का तहइया[6] किया और इस इंतज़ार में रहा कि कब फूलों के तख़्तों पर पानी डाला जाता है। जूंही पानी डाला गया फ़ौरन हौज़ में उतर गया और परों को तेज़ी के साथ खोलने और बंद करने लगा। एक दूसरे जोड़े को आस पास पानी नहीं मिला तो "फ़तयम्ममू सईदन तय्यबन[7]" पढ़ता हुआ मिट्टी ही में नहाना शुरू कर दिया। पहले चोंच मार मार के इतनी मिट्टी खोद डाली कि सीने तक डूब सके। फिर उस गढ़े में बैठ कर इस तरह पाकोबियां[8] और परअफ़-शानियां[9] शुरू कर दीं कि गर्द ओ ख़ाक का एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। कुछ फ़ासले पर मुल्ला हस्बे-मामूल किसी हरीफ़ से कुश्ती लड़ने में मशग़ूल है। इनके लड़ने की ख़ुदफ़रोशियों का भी कुछ अजीब हाल होता है।

लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं !

याने हाथ को देखिये तो हथियार से यक क़लम ख़ाली है। बल्कि सिरे से हाथ है ही नहीं।

बहुत का ज़िक्र क्या, यां सर ही ग़ायब है गरेबां से !

मगर चोंच को देखिये तो सारे हथियारों की कमी पूरी कर रही है। जोशे-ग़ज़ब में आकर इस तरह एक दूसरे से गुथ जायेंगे कि एक को दूसरे से तमीज़ करना दुश्वार हो जायेगा। गोया "जिदाले-सादी बा मुद्दई दर बयाने-तवंगरी ओ दरवेशी[10]" का मंज़र आंखों में फिर जायेगा।

---

१. मूक आवाज़ २. तू देखने वाला नहीं है वर्ना उपेक्षा में भी निगाह है। तू ज़बान को समझने वाला नहीं है वर्ना मौन ही वाणी है। ३. नामकरण ४. एक ऐसा वस्त्र था जो उसके शरीर के मुताबिक़ सिला हुआ था। ५. स्नान ६. इरादा ७. पानी नहीं तो मिट्टी ही मल लो ८. पैर पटकना ९. सिर हिलाना या फैलाना १०. सादी की मुद्दई के साथ बहस जो दौलत-मंदी और दरवेशी के बीच हुई।

क बर मन श्रो मन बर क फ़तावा ![1]

हवा में जब कुश्ती लड़ते हुये एक दूसरे से गुत्थमगुत्था होते हैं तो उन्हें इसका भी होश नहीं रहता कि कहाँ गिर रहे हैं। कई मर्तबा मेरे सर पर गिर पड़े। एक मर्तबा ऐसा हुआ कि ठीक मेरी गोद में आकर पड़ गये। मैंने एक को एक हाथ से, दूसरे को दूसरे हाथ से पकड़ लिया।

मेरे दोनों हाथ निकले काम के!

सारा जिस्म मुट्ठी में बंद था। सिर्फ़ गर्दनें निकली हुई थीं। दिल इस जोर से धड़ धड़ कर रहा था कि मालूम होता था अब फटा, अब फटा। लेकिन इस पर भी एक दूसरे को चोंच मारने से बाज नहीं रह सकते थे। जब मैंने मुट्ठियाँ खोल दीं तो फ़ुर से उड़कर पंखे के दस्ते पर जा बैठे और देर तक चूं चूं करते रहे। ग़ालिबन एक दूसरे से कह रहे थे कि—

रसीदा बूद बलाये वले ब ख़ैर गुज़श्त ![2]

मोती के घोंसले से एक बच्चे की आवाज अर्से से आ रही थी। वो जब दानों पर चोंच मारती तो एक दो दानों से ज्यादा न लेती और फ़ौरन घोंसले का रुख़ करती। वहाँ उसके पहुँचते ही बच्चे का शोर शुरु हो जाता। दो सेकंड बाद फिर आती और दाना लेकर उड़ जाती। एक मर्तबा मैंने गिना तो एक मिनट के अंदर सात मर्तबा आई गई।

जिन उलमाये इल्मउलहैवान[3] ने इस जिंस के परिंदों के ख़सायस[4] का मुताला किया है, उनका बयान है कि एक चिड़िया दिन भर के अंदर ढाई सौ से तीन सौ मर्तबा तक बच्चे को ग़िज़ा देती है। और अगर दिन भर की मजमूई[5] मिक़दारे-ग़िज़ा[6] बच्चे के जिस्म के मुक़ाबले में रखी जाय तो उसका हज्म (Mass) किसी तरह भी बच्चे के जिस्मानी हज्म से कम न होगा। मगर बच्चों की क़ुव्वते-हाज़मा[7] तेज़ी से काम करती रहती है कि इधर दाना उनके अंदर गया और उधर तहलील[8] होना शुरू हो गया। यही वजह है कि परिन्दों के बच्चों के नश्वो नुमा का औसत चारपायों के बच्चों के औसत से बहुत ज्यादा होता है और बहुत थोड़ी मुद्दत के अंदर वो बलूग़[9] तक पहुँच जाते हैं। मोती की रफ़्तारे-अमल से मुझे इस बयान की पूरी तसदीक़ मिल गई।

फिर जूं जूं बच्चों के पर बढ़ने लगते हैं, विजदान[10] का फ़रिश्ता आता है और माँ के कान में सरगोशियाँ[11] शुरु कर देता है कि अब इन्हें उड़ने का सबक़

१. वह मुझ में और मैं उसमें पड़ा हुआ था २. एक मुसीबत आई थी लेकिन चलो ख़ैर से चली गई ३. पशुशास्त्र के ज्ञाता ४. विशेषताओं का। ५. सारी ६. खाद्य का परीक्षण ७. पाचन शक्ति ८. हल होना ९. बालिग़ होना १०. ज्ञान का फ़रिश्ता ११. कान में कहना।

सिखाना चाहिये । मालूम होता है मोती के कानों में यह सरगोशी शुरू हो गई थी । एक दिन सुबह क्या देखता हूँ घोंसले से उड़ती हुई उतरी तो उसके साथ एक छोटा सा बच्चा भी अधूरी परवाज़[1] के पर ओ बाल के साथ नीचे गिर गया । मोती बार बार उसके पास आती और उड़ने का इशारा करके ऊपर की तरफ़ उड़ने लगती । लेकिन बच्चे में असरपज़ीरी[2] की कोई अलामत[3] दिखाई नहीं देती थी । वो पर फैलाये आँखें बंद किये बेहिस ओ हरकत पड़ा था । मैंने उसे उठा के देखा तो मालूम हुआ अभी पर पूरी तरह बढ़े नहीं हैं । गिरने की चोट का असर भी ताज़ा है और उसने बेहाल कर दिया है । बेइख़्तियार नज़ीरी का शेर याद आ गया ।

ब वस्लश ता रसम, सद बार बर ख़ाक अफ़गनद शौक़म
कि नौ परवाज़म ओ शाख़े-बुलंदे आशियाँ दारम[4]

बहर हाल उसे उठा के दरी पर रख दिया । मोती चावल के टुकड़े चुन चुन कर मुँह में लेती और उसे खिला देती । वो मुँह खोलते हुये चूं चूं की एक मद्धम और उखड़ी सी आवाज़ निकाल देता और फिर दम बख़ुद आँखें बंद किये पड़ा रहता । पूरा दिन इसी हालत में निकल गया । दूसरे दिन भी उसकी हालत वैसी ही रही । माँ सुबह से लेकर शाम तक बराबर उड़ने की तलक़ीन[5] करती रही, मगर उस पर कुछ ऐसी मुर्दनी सी छा गई थी कि कोई जवाब नहीं मिलता । मेरा ख़याल था कि यह अब बचेगा नहीं । लेकिन तीसरे दिन सुबह को एक अजीब मामला पेश आया । धूप की एक लकीर कमरे के अंदर दूर तक चली गई थी । यह उसमें आकर खड़ा हो गया था । पर गिरे हुये, पाँव मुड़े हुये, आँखें हस्बे-मामूल बंद थीं । अचानक क्या देखता हूँ कि यकायक आँखें खोलकर एक फ़ुरफ़ुरी सी ले रहा है । फिर गरदन आगे करके फ़ज़ा की तरफ़ देखने लगा । फिर गिरे हुये परों को सुकेड़ कर एक दो मर्तबा खोला बंद किया । और फिर जो एक मर्तबा जस्त लगाकर उड़ा तो वयक दफ़ा तीर की तरह मैदान में जा पहुँचा और फिर हवाई की तरह फ़ज़ा में उड़कर नज़रों से ग़ायब हो गया । यह मंज़र[6] इस दर्जे अजीब और ग़ैर मुतवक़्क़ो[7] था कि पहले तो मुझे अपनी निगाहों पर शुबहा होने लगा, कहीं किसी दूसरी चिड़िया को उड़ते देखकर धोके में न पड़ गया हूँ । लेकिन एक वाक़या जो ज़हूर में आ चुका था, अब उसमें शुबहे की गुंजाइश कहाँ बाक़ी रही थी ? कहाँ तो बेहाली और

१. उड़ान २. प्रभावित होना ३. संकेत, चिन्ह ४. उसके मिलन तक पहुँचने में मुझे मेरा प्रेम सैकड़ों बार ख़ाक पर पटकता है । क्योंकि मैं नौसिखिया परिंदा हूँ और मेरा घोंसला ऊँची टहनी पर है ५. सीख, कहना ६. दृश्य ७. आशातीत ।

दरमांदगी की यह हालत कि दो दिन तक माँ सर खपाती रही मगर ज़मीन से बालिश्त भर भी ऊँचा न हो सका। और कहाँ आसमान पैमाइयों का यह इन्क़लाब अंगेज़ जोश कि पहली ही उड़ान में आलमे-हुदूद ओ क़ुयूद[1] के सारे बंधन तोड़ डाले, और फ़ज़ाये-लामितनाही[2] की नापैदा कनार[3] वुसअतों में गुम हो गया ! क्या कहूँ, इस मंज़र ने कैसी खुदरफ़्तगी[4] की हालत तारी कर दी थी। बेइख़्तियार यह शेर ज़बान पर आ गया था और इस जोश ओ ख़रोश के साथ आया था कि हमसाये चौंक उठे थे।

बंगरे-इश्क़ बीं कि दरीं दश्ते-बेकरां
गामे न रफ़्ता अम ओ ब पायां रसीदा अम[5]

दर असल यह कुछ न था। ज़िंदगी की करिश्मासाज़ियों का एक मामूली सा तमाशा था जो हमेशा हमारी आँखों के सामने से गुज़रता रहता है, मगर हम उसे समझना नहीं चाहते। इस चिड़िया के बच्चे में उड़ने की इस्तैदाद[6] उभर चुकी थी। वो अपने कुंजे-नशेमन[7] से निकलकर फ़ज़ाये-आसमानी के सामने आ खड़ा हुआ था। मगर अभी तक उसकी खुदशनासी[8] का अहसास[9] बेदार[10] नहीं हुआ था। वो अपनी हक़ीक़त से बेख़बर था। माँ बार बार इशारे करती थी, हवा की लहरें बार बार परों को छूती हुई गुज़र जाती थीं, ज़िंदगी और हरकत का हंगामा हर तरफ़ से आ आकर बढ़ावे देता था, लेकिन उसके अंदर का चूल्हा कुछ इस तरह ठंडा हो रहा था कि बाहर की कोई गरमजोशी भी उसे गर्म नहीं कर सकती थी।

कलीम शिकवा ज़ तौफ़ीक़े-चंद ? शरमत बाद !
तू खुं ब रह न निही पाये, रहनुमा च कुनद ?[11]

लेकिन ज्यूं ही उसकी खोई हुई खुदशनासी जाग उठी और उसे हक़ीक़त का इरफ़ान[12] हासिल हो गया कि "मैं उड़नेवाला परिंद हूँ" अचानक क़ालिबे बेजान[13] की हर चीज़ अज़ सरे-नौ जानदार बन गई। वही जिस्मे-ज़ार[14] जो बेताक़ती से खड़ा नहीं हो सकता था अब सरोक़द[15] खड़ा था। वही काँपते हुये घुटने जो जिस्म का बोझ भी सहार नहीं सकते थे अब तन कर सीधे हो गये थे।

१. सीमा और बंधनों की दुनिया २. असीम वातावरण ३. अपार, असीम ४. आत्मविस्मृति ५. प्रेम की शक्ति को देखो कि इस असीम जंगल में मैं एक डग भी नहीं चला हूँ और ठेठ पहुँच गया हूँ ६. ज्ञान, जानकारी ७. घोंसले के कुंज से ८. आत्म ज्ञान ९. अनुभूति १०. जागृत ११. कलीम तू ज़रा सी शक्ति और सामर्थ्य की शिकायत करता है ? तुझे शर्म आनी चाहिये जब तू राह पर क़दम ही नहीं रखता तो पथप्रदर्शक क्या करे १२. ज्ञान १३. निष्प्राण शरीर १४. निढाल शरीर १५. सर्व के पेड़ की तरह।

वही गिरे हुये पर जिनमें ज़िंदगी की कोई तड़प दिखाई नहीं देती थी अब सिमट सिमट कर अपने आपको तौलने लगे थे। चश्मज़दन[1] के अंदर जोशे-परवाज़[2] की एक बर्क़दार[3] तड़प ने उसका पूरा जिस्म हिलाकर उछाल दिया। और फिर जो देखा तो दरमांदगी और बेहाली के सारे बंधन टूट चुके थे और मुर्गे-हिम्मत शुक़ावबार फ़ज़ाये-लामितनाही की लाइंतहाइयों की पैमाइश कर रहा था—वलिल्लाहि दर्रुमाक़ाल[4]।

बाल बकुशा ओ सफ़ीर अज़ शजरे-तूबा ज़न
हैफ़ बाशद चु तू मुर्गे कि असीरे-क़फ़सी[5]

गोया बेताक़ती से तवानाई, ग़फ़लत से बेदारी, बेपर ओ बाली[6] से बुलंद, परवाज़ी और मौत से ज़िंदगी का पूरा इंक़लाब चश्मज़दन[7] के अंदर हो गया। ग़ौर कीजिये तो यही एक चश्मे-ज़दन का वक़्फ़ा ज़िंदगी के पूरे अफ़साने का खुलासा है।

तय मी शवद ईं रह ब दरख़्शीदने-बर्क़े
मा बेख़बरां मुन्तज़िरे-शमा ओ चिरागेम![8]

उड़ने के सरो सामान में से कौन सी चीज़ थी जो इस नौ गिरफ़्तारे-क़फ़से[9] हयात के हिस्से में नहीं आई थी? फ़ितरत ने सारा सरो सामान मुहय्या करके उसे भेजा था, और मां के इशारे दमबदम गरमपरवाज़ी के लिये उभार रहे थे। लेकिन जब तक उसके अंदर की ख़ुदशनासी बेदार नहीं हुई और इस हक़ीक़त का इरफ़ान नहीं हुआ कि वो तायरे-बुलंद परवाज़[10] है, उसके बाल ओ पर का सारा सरो सामान बेकार रहा। ठीक इसी तरह इंसान के अंदर की ख़ुदशनासी भी जब तक सोई रहती है, बाहर का कोई हंगामये[11] सभी उसे बेदार नहीं कर सकता लेकिन जूं ही उसके अंदर का इरफ़ान जाग उठा और उसे मालूम हो गया कि उसकी छुपी हुई हक़ीक़त क्या है, तो फिर चश्मे-ज़दन के अंदर सारा इंकलाबे-हाल अंजाम पा जाता है। और एक ही जस्त में हज़ीज़े ख़ाक[12] से उड़कर रफ़अते-अफ़लाक[13] तक पहुँच जाता है। ख़्वाजये-शीराज़ ने इसी हक़ीक़त की तरफ़ इशारा किया था।

---

१. पलक मारने भर में २. उड़ने का जोश ३. बिजली की सी ४. जिसने यह बात कही अल्लाह उसका भला करे ५. अपने पर खोल और स्वर्ग के तूबा के वृक्ष से आवाज़ लगा। बड़े अफ़सोस की बात है कि तू पक्षी और पिंजरे का क़ैदी हो रहा है ६. पंख और परों का न होना ७. पलक मारने भर में ८. यह राह बिजली की एक कौंध से पार हो जाती है और हम बेख़बर लोग शमा और चिराग़ की इंतज़ार में हैं ९. जीवन के पिंजरे के इस नये क़ैदी के १०. ऊँचा उड़नेवाला पक्षी ११. प्रयत्नों का शोर १२. सबसे नीची जगह से १३. नभ के उच्च स्थान।

च गोयमत कि ब मयखाना दोश मस्त खराब
सरुशे-आलमे-ग़ैबम च मुज़्दहा दाद स्त
कि "अय बुलंद नज़र, शाहबाज़ सिदरा नशीन
नशेमने तू न ईं कुंजे-मेहनत आबाद स्त
तुरा ज़ कंगुरये-अर्श मी ज़नंद सफ़ीर
नदानमत कि दरीं दामगह च उफ़्ताद स्त'[1]

१. मैं क्या कहूं कि कल मयखाने में मस्त और खराब था, ग़ैब की दुनिया के फ़रिश्ते ने मुझे कैसी खुशखबरी दी कि अय ऊंची नज़रवाले, स्वर्ग के सिदरा नामी वृक्ष पर बैठनेवाले शाहबाज़, तेरा घोंसला यह नहीं है जो मेहनत और मशक़्क़त का घर है। तुझे आसमान के कंगुरों से आवाज़ देते हैं कि मैं नहीं जानता कि तू इस फंदे में क्यों पड़ा हुआ है।

क़िलअ़े-अहमदनगर
११ अप्रेल, सन, ४३ ई.

उन् च दिल अज़ फ़िक्रे-ग्रां मीसोख़्त, बीमे-हिज्र बूद
आख़िर अज़ बेमह्रिये-गर्दूं बआं हम साख़्तेम ![1]

सदीक़े-मुकर्रम

इस वक़्त सुबह् के चार नहीं बजे हैं बल्कि रात का पिछला हिस्सा शुरू हो रहा है। दस बजे हस्बे-मामूल बिस्तर पर लेट गया था। लेकिन आँखें नींद से आश्ना नहीं हुईं। नाचार उठ बैठा। कमरे में आया, रोशनी की और अपने अशग़ाल[2] में डूब गया। फिर ख़याल हुआ क़लम उठाऊँ और कुछ देर आपसे बातें करके जी का बोझ हल्का करूँ। इन आठ महीनों में जो यहाँ गुज़र चुके हैं यह छठी रात है जो इस तरह गुज़र रही है। और नहीं मालूम अभी और कितनी रातें इसी तरह गुज़रेंगी।

दिमाग़ बर फ़लक ओ दिल ब पाये मह्रे-बुतां
चगूना हर्फ़ ज़नम, दिल कुजा दिमाग़ कुजा ?[3]

मेरी बीवी की तबीयत कई साल से अ़लील[4] थी। सन ४१ में जब मैं नैनी जेल में मुक़य्यद था तो इस ख़याल से कि मेरे लिये तशवीशे-ख़ातिर[5] का मूजिब होगा मुझे इत्तला नहीं दी गई। लेकिन रिहाई के बाद मालूम हुआ कि यह तमाम ज़माना कम ओ बेश अ़लालत की हालत में गुज़रा था। मुझे क़ैदख़ाने में उसके ख़ुतूत मिलते रहे। उनमें सारी बातें होती थीं लेकिन अपनी बीमारी का कोई ज़िक्र नहीं होता था। रिहाई के बाद डाक्टरों से मशविरा किया गया तो उन सब की राए तबदीले-आबोहवा की हुई और वो राँची चली गई। राँची के क़याम से बज़ाहिर फ़ायदा हुआ था। जौलाई में वापस आईं तो सिह्त[6] की रौनक़ चेह्रे पर वापस आ रही थी।

इस तमाम ज़माने में मैं ज़्यादातर सफ़र में रहा। वक़्त के हालात इस तेज़ी से बदल रहे थे कि किसी एक मंज़िल में दम लेने की मुहलत नहीं मिलती

---

१. जो दिल उसकी फ़िक्र में जल गया, यह वियोग का डर था। आख़िर दुनिया की बेमेहरबानी से हमने उससे मानो वियोग से भी समझौता कर लिया २. प्रवृत्तियों में ३. दिमाग़ आसमान पर है और दिल माशूक़ के प्रेम के क़दमों में है। किस प्रकार बात कहूं, दिल कहां है और दिमाग़ कहां है ? ४. ख़राब ५. दिल की परेशानी ६. स्वास्थ्य।

थी। एक मंज़िल में अभी क़दम पहुँचा नहीं कि दूसरी मंज़िल सामने नमूदार हो गई।

सद बयाबां बगुज़श्त ओ दीगरे दर पेश स्त[1]

जौलाई की आख़िरी तारीख़ थी कि मैं तीन हफ़्ते के बाद कलकत्ता वापस हुआ। और फिर चार दिन के बाद आल इंडिया कांग्रेस कमीटी के इजलासे-बंबई के लिये रवाना हो गया। यह वो वक़्त था कि अभी तूफ़ान आया नहीं था, मगर तूफ़ानी आसार हर तरफ़ उमड़ने लगे थे। हुकूमत के इरादों के बारे में तरह तरह की अफ़वाहें मशहूर हो रही थीं। एक अफ़वाह जो ख़ुसूसियत के साथ मशहूर हुई यह थी कि आल इंडिया कांग्रेस कमीटी के इजलास के बाद वर्किंग कमीटी के तमाम मेंबरों को गिरफ़्तार कर लिया जायेगा और हिन्दुस्तान से बाहर किसी ग़ैर मालूम मुक़ाम में भेज दिया जायेगा।[2] यह बात भी कही जाती थी कि लड़ाई की ग़ैर मामूली हालत ने हुकूमत को ग़ैरमामूली इख़्तियारात दे दिये हैं और वो इनसे हर तरह का काम ले सकती है। इस तरह के हालात पर मुझ से ज़्यादा ज़ुलेखा की नज़र रहा करती थी और उसने वक़्त की सूरते-हाल का पूरी तरह अंदाज़ा कर लिया था। इन चार दिनों के अंदर जो मैंने दो सफ़रों के दरम्यान बसर किये, मैं इस क़दर कामों में मशग़ूल रहा कि हमें आपस में बातचीत करने का मौक़ा बहुत कम मिला। वो मेरी तबीयत की उफ़्ताद से वाक़िफ़ थी। वो जानती थी कि इस तरह के हालात में हमेशा मेरी ख़ामोशी बढ़ जाती है और मैं पसंद नहीं करता कि इस ख़ामोशी में ख़लल पड़े। इसलिये वो भी ख़ामोश थी। लेकिन हम दोनों की यह ख़ामोशी भी गोयाई से ख़ाली न थी। हम दोनों ख़ामोश रहकर भी एक दूसरे की बातें सुन रहे थे और उनका मतलब अच्छी तरह समझ रहे थे। ३, अगस्त को जब मैं बंबई के लिये रवाना होने लगा तो वो हस्बे-मामूल दरवाज़े तक ख़ुदा हाफ़िज़ कहने के लिये आई। मैंने कहा — अगर कोई नया वाक़या पेश नहीं आ गया तो १३, अगस्त तक वापसी का क़स्द है। उसने ख़ुदा हाफ़िज़

१. सौ जंगल पार हो गये और दूसरे अभी सामने हैं २. गिरफ़्तारी के बाद जो बयानात अख़बारों में आये उनसे मालूम होता था ये अफ़वाहें बेअसल न थीं। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट और वायसराय की यही राय थी कि हमें गिरफ़्तार करके मशरिक़ी अफ्रीक़ा भेज दिया जायें और इस ग़र्ज़ से बाज़ इंतज़ामात कर भी लिये गये थे। लेकिन फिर राय बदल गई। और बिल आख़िर तै पाया कि क़िलये-अहमदनगर में फ़ौजी निगरानी के मातहत रखा जाये और ऐसी सख़्तियाँ अमल में लाई जायें कि हिन्दुस्तान से बाहर भेजने का जो मक़सद था वो यहीं हासिल हो जाये।

के सिवा और कुछ नहीं कहा। लेकिन अगर वो कहना भी चाहती तो इससे ज़्यादा कुछ नहीं कह सकती थी जो उसके चेहरे का ख़ामोश इज़्तिराब[1] कह रहा था। उसकी आँखें ख़ुश्क थीं मगर चेहरा अश्कबार[2] था।

ख़ुद रा ब हीला पेशे-तू ख़ामोश कर्दाअेम![3]

गुज़श्ता पच्चीस बरस के अंदर कितने ही सफ़र पेश आये और कितनी ही मर्तबा गिरफ़्तारियाँ हुईं, लेकिन मैंने इस दर्जे अफ़सुर्दा[4] ख़ातिर उसे कभी नहीं देखा था। क्या यह जज़्बात[5] की वक़्ती कमज़ोरी थी जो उसकी तबीयत पर ग़ालिब आ गई थी? मैंने उस वक़्त ऐसा ही ख़याल किया था। लेकिन अब सोचता हूं तो ख़याल होता है कि शायद उसे सूरते-हाल का एक मजहूल[6] अहसास होने लगा था। शायद वो महसूस कर रही थी कि इस ज़िंदगी में यह हमारी आख़िरी मुलाक़ात है। वो ख़ुदा हाफ़िज़ इसलिये नहीं कह रही थी कि मैं सफ़र कर रहा था। वो इसलिये कह रही थी कि ख़ुद सफ़र करनेवाली थी।

वो मेरी तबीयत की उफ़्ताद से अच्छी तरह वाक़िफ़ थी। वो जानती थी कि इस तरह के मौक़ों पर अगर उसकी तरफ़ से ज़रा भी इज़्तिराबे-तबा[7] का इज़हार होगा तो मुझे सख़्त नागवार गुज़रेगा और अर्से तक उसकी तलख़ी[8] हमारे ताल्लुक़ात में बाक़ी रहेगी। सन '१६ ई. जब पहली मर्तबा गिरफ़्तारी पेश आई थी तो वो अपना इज़्तिराबे-ख़ातिर नहीं रोक सकी थी और मैं अर्से तक उससे नाख़ुश रहा था। इस वाक़ये ने हमेशा के लिये उसकी ज़िंदगी का ढंग पलट दिया और उसने पूरी कोशिश की कि मेरी ज़िंदगी के हालात का साथ दे। उसने सिर्फ़ साथ ही नहीं दिया बल्कि पूरी हिम्मत और इस्तिक़ामत[9] के साथ हर तरह के नाख़ुशगवार हालात बरदाश्त किये। वो दिमाग़ी हैसियत से मेरे अफ़कार ओ अक़ायद में शरीक थी और अमली ज़िंदगी में रफ़ीक़[10] ओ मददगार। फिर क्या बात थी कि इस मौक़े पर वो अपनी तबीयत के इज़्तिराब पर ग़ालिब न आ सकी? ग़ालिबन यही बात थी कि उसके अंदरूनी अहसासात पर मुस्तक़बिल की परछाईं पड़ना शुरू हो गई थी।

गिरफ़्तारी के बाद कुछ अर्से तक हमें अज़ीज़ों से ख़त ओ किताबत का मौक़ा नहीं दिया गया था। फिर जब यह रोक हटा ली गई तो १७ सितंबर को मुझे उसका पहला ख़त मिला और इसके बाद बराबर ख़ुतूत मिलते रहे। चूंकि मुझे मालूम था कि वो अपनी बीमारी का हाल लिखकर मुझे परेशान

---

१. बेचैनी २. आँसू बरसानेवाला ३. अपने आपको तेरे सामने किसी बहाने से छुपा कर लिया है ४. उदास चित्त ५. भावनाओं की ६. अस्पष्ट सा ७. तबीयत की व्याकुलता या घबराहट ८. कड़वाहट ९. दृढ़ता १०. साथी।

ख़ातिर करना पसंद नहीं करेगी, इसलिये घर के बाज़ दूसरे अज़ीज़ों से हालत दरयाफ़्त करता रहता था। ख़ुतूत यहाँ अमूमन तारीख़े-किताबत[1] से दस बारह दिन बाद मिलते हैं। इसलिये कोई बात जल्द मालूम हो नहीं सकती। १५, फ़रवरी को मुझे एक ख़त २ फ़रवरी का भेजा हुआ मिला जिसमें लिखा था कि उसकी तबीयत अच्छी नहीं है। मैंने तार के ज़रिये मज़ीद[2] सूरते-हाल दरयाफ़्त की तो एक हफ़्ते के बाद जवाब मिला कि कोई तशवीश[3] की बात नहीं।

२३ मार्च को मुझे पहली इत्तला उसकी ख़तरनाक अलालत की मिली। गवर्नमेंट बंबई ने एक टेलीग्राम के ज़रिये सुपरिंटेंडेंट को इत्तला दी कि इस मज़मून का एक टेलीग्राम उसे कलकत्ते से मिला है। नहीं मालूम जो टेलीग्राम गवर्नमेंट बंबई को मिला वो किस तारीख़ का था और कितने दिनों के बाद यह फ़ैसला किया गया कि मुझे यह ख़बर पहुँचा देनी चाहिये।

चूंकि हुकूमत ने हमारी क़ैद का महल[4] अपनी दानिस्त[5] में पोशीदा[6] रखा है, इसलिये इब्तदा से यह तर्ज़े-अमल इख़्तियार किया गया है कि न तो यहाँ से कोई टेलीग्राम बाहर भेजा जा सकता है, न बाहर से कोई आ सकता है। क्योंकि अगर आयेगा तो टेलीग्राफ़ आफ़िस ही के ज़रिये आयेगा, और उस सूरत में आफ़िस के लोगों पर राज़ खुल जायेगा। इस पाबंदी का नतीजा यह है कि कोई बात कितनी ही जल्दी की हो, लेकिन तार के ज़रिये नहीं भेजी जा सकती। अगर तार भेजना हो तो उसे लिख कर सुपरिंटेंडेंट को दे देना चाहिये। वो उसे ख़त के ज़रिये बंबई भेजेगा, वहाँ से एहतिसाब[7] के बाद उसे आगे रवाना किया जा सकता है। ख़त ओ किताबत की निगरानी के लिहाज़ से यहाँ क़ैदियों की दो क़िस्में कर दी गई हैं। बाज़ के लिये सिर्फ़ बंबई की निगरानी काफ़ी समझी गई है, बाज़ के लिये ज़रूरी है कि उनकी तमाम डाक देहली जाये। और जब तक वहाँ से मंज़ूरी न मिल जाये आगे न बढ़ाई जाये। चूंकि मेरी डाक दूसरी क़िस्म में दाख़िल है, इसलिये मुझे कोई तार एक हफ़्ते से पहले नहीं मिल सकता। और न मेरा कोई तार एक हफ़्ते से पहले कलकत्ते पहुँच सकता है।

यह तार जो २३ मार्च को यहाँ पहुँचा, फ़ौजी ख़ते रम्ज़ (Code) में लिखा गया था। सुपरिंटेंडेंट इसे हल नहीं कर सकता था। वो इसे फ़ौजी हेडक्वार्टर में ले गया। वहाँ इत्तफ़ाक़न[8] कोई आदमी मौजूद न था। इसलिये पूरा दिन इसके हल करने की कोशिश में निकल गया। रात को इसकी हल-शुदा कापी मुझे मिल सकी।

---

१. जिस दिन लिखे जाते थे उस दिन की तारीख़ २. विशेष ३. चिंता ४. स्थान ५. जानकारी ६. गुप्त ७. जाँच Censor ८. संयोग से।

दूसरे दिन अखबारात आये तो उनमें भी यह मामला आ चुका था। मालूम हुआ डाक्टरों ने सूरते-हाल की हुकूमत को इत्तला दे दी है, और जवाब के मुंतज़िर हैं। फिर बीमारी के मुतल्लिक़ मुआलिजों की रोज़ाना इत्तलाआत निकलने लगीं। सुपरिंटेंडेंट रोज़ रेडियो में सुनता था और यहाँ बाज़ रुफ़क़ा[1] से उसका ज़िक्र कर देता था।

जिस दिन तार मिला उसके दूसरे दिन सुपरिंटेंडेंट मेरे पास आया और यह कहा कि अगर मैं इस बारे में हुकूमत से कुछ कहना चाहता हूँ तो वो उसे फ़ौरन बंबई भेज देगा और यहाँ की पाबंदियों और मुक़र्ररा क़ायदों से इसमें कोई रुकावट नहीं पड़ेगी। वो सूरते-हाल से बहुत मुतास्सिर[2] था और अपनी हमदर्दी का यक़ीन दिलाना चाहता था। लेकिन मैंने उससे साफ़ साफ़ कह दिया कि मैं हुकूमत से कोई दरख्वास्त करनी नहीं चाहता। फिर वो जवाहरलाल के पास गया और उनसे इस बारे में गुफ़्तगू की। वो सहपहर[3] को मेरे पास आये और बहुत देर तक इस बारे में गुफ़्तगू करते रहे। मैंने उनसे भी वही बात कह दी जो सुपरिंटेंडेंट से कह चुका था। बाद को मालूम हुआ कि सुपरिंटेंडेंट ने यह बात हुकूमते-बंबई के ईमां[4] से कही थी।

जूं ही खतरनाक सूरते-हाल की पहली खबर मिली मैंने अपने दिल को टटोलना शुरू कर दिया। इंसान के नफ़्स[5] का भी कुछ अजीब हाल है। सारी उम्र हम इसकी देखभाल में बसर कर देते हैं, फिर भी यह मुअम्मा[6] हल नहीं होता। मेरी ज़िंदगी इब्तदा से ऐसे हालात में गुज़री कि तबीयत को ज़ब्त ओ इन्क़ियाद[7] में लाने के मुतवातिर[8] मौक़े पेश आते रहे और जहाँ तक मुमकिन था उनसे काम लेने में कोताही[9] नहीं की।

ता वक़्त रसम बूद जदम चाक गरेबां
शर्मिंदगी अज़ ख़िरक़ये-पश्मीना नदारम।[10]

ताहम मैंने महसूस किया कि तबीयत का सुकून[11] हिल गया है और उसे क़ाबू में रखने के लिये जद ओ जहद करनी पड़ेगी। यह जद ओ जहद दिमाग़ को नहीं मगर जिस्म को थका देती है। वो अंदर ही अंदर घुलने लगता है।

इस ज़माने में मेरे दिल ओ दिमाग़ का जो हाल रहा, मैं उसे छिपाना नहीं चाहता। मेरी कोशिश थी कि इस सूरते-हाल को पूरे सब्र ओ सुकून के साथ बरदाश्त कर लूं। इसमें मेरा ज़ाहिर[12] कामयाब हुआ लेकिन बावद

---

१. रफ़ीक़ का बहुवचन, साथी २. प्रभावित ३. तीसरे पहर ४. संकेत ५. अंतरात्मा ६. पहेली ७. क़ाबू और क़ैद ८. लगातार ९. कमी १०. जब तक मेरा हाथ पहुँचा मैं अपना गरेबां फाड़ता रहा। मुझे अपने पशमीने के ख़िरक़े से कोई शर्मिंदगी नहीं है ११. शांति १२. बाह्य शरीर।

बातिन[1] न हो सका। मैंने महसूस किया कि अब दिमाग़ बनावट और नुमाइश का वही पार्ट खेलने लगा है जो अहसासात और इंफ़आलात[2] के हर गोशे में हम हमेशा खेला करते हैं और अपने ज़ाहिर को बातिन की तरह नहीं बनने देते।

सबसे पहली कोशिश यह करनी पड़ी कि यहाँ ज़िंदगी की जो रोज़ाना मामूलात ठहराई जा चुकी है, उनमें फ़र्क़ आने न पाये। चाय और खाने के चार वक़्त हैं जिनमें मुझे अपने कमरे से निकलना और कमरों की क़तार के आख़िरी कमरे में जाना पड़ता है। चूंकि ज़िंदगी की मामूलात में वक़्त की पाबंदी का मिनटों के हिसाब से आदी हो गया हूँ इसलिये यहाँ भी औक़ात की पाबंदी की रस्म क़ायम हो गई और तमाम साथियों को भी इसका साथ देना पड़ा। मैंने इन दिनों में भी अपना मामूल बदस्तूर रखा। ठीक वक़्त पर कमरे से निकलता रहा और खाने की मेज़ पर बैठता रहा। भूक यकक़लम[3] बंद हो चुकी है, लेकिन मैं चंद लुक़मे[4] हलक़ से उतारता रहा। रात को खाने के बाद कुछ देर तक सहन में चंद साथियों के साथ निशस्त[5] रहा करती थी। इसमें भी कोई फ़र्क़ नहीं आया। जितनी देर तक वहाँ बैठता था, जिस तरह बातें करता था, और जिस क़िस्म की बातें करता था वो सब कुछ बदस्तूर होता रहा।

अख़बारात यहाँ बारह से एक बजे के अंदर आया करते हैं। मेरे कमरे के सामने दूसरी तरफ़ सुपरिंटेंडेंट का दफ़्तर है। जेलर वहाँ से अख़बार लेकर सीधा मेरे कमरे में आता है। जूं ही उसके दफ़्तर से निकलने और चलने की आहट आना शुरू होती थी, दिल धड़कने लगता था कि नहीं मालूम आज कैसी ख़बर अख़बार में मिलेगी। लेकिन फिर मैं फ़ौरन चौंक उठता। मेरे सोफ़े की पीठ दरवाज़े की तरफ़ है, इसलिये जब तक एक आदमी अंदर आके सामने खड़ा न हो जाये मेरा चेहरा देख नहीं सकता। जब जेलर आता था तो मैं हस्बे-मामूल मुस्कराते हुये इशारा करता कि अख़बार टेबल पर रख दे और फिर लिखने में मशग़ूल हो जाता। गोया अख़बार देखने की कोई जल्दी नहीं। मैं ऐतराफ़[6] करता हूँ कि यह तमाम ज़ाहिरदारियाँ दिखावे का एक पार्ट थीं जिसे दिमाग़ का मग़रूराना अहसास खेलता रहता था। और इसलिये खेलता था कि कहीं उसके दामने सब्र ओ वक़ार पर बेहाली और परेशाँ ख़ातिरी का कोई धब्बा न लग जाये।

बिदह या रब दिले, कीं सूरते-बेजाँ नमीख़्वाहम[7]

बिलआख़िर ९ अप्रेल को ज़हरे-ग़म का यह प्याला लबरेज़ हो गया।

१. अंतर २. प्रतिक्रिया ३. बिल्कुल ४. ग्रास ५. बैठक ६. स्वीकार करना ७. हे मेरे मालिक एक दिल दे, मैं यह निष्प्राण शरीर नहीं चाहता।

फ़इन्न मा तहज़ुरीनि क़द वक़ा[3]

२ बजे सुपरिटेंडेंट ने गवर्नमेंट बम्बई का एक तार हवाले किया जिसमें हादसे की ख़बर दी गई थी। बाद को मालूम हुआ कि सुपरिटेंडेंट को यह ख़बर रेडियो के ज़रिये सुबह ही मालूम हो गई थी और उसने यहाँ बाज़ रुफ़क़ा[4] से इसका ज़िक्र भी कर दिया था। लेकिन मुझे इत्तला नहीं दी गई।

इस तमाम अर्से में यहाँ के रुफ़क़ा का जो तर्ज़े-अमल रहा, उसके लिये मैं उनका शुक्रगुज़ार हूँ। इब्तदा में जब अलालत की ख़बरें आना शुरू हुईं तो क़ुदरती तौर पर उन्हें परेशानी हुई। वो चाहते थे कि इस बारे में जो कुछ कर सकते हैं करें लेकिन जूं ही उन्हें मालूम हो गया कि मैंने अपने तर्ज़े-अमल का एक फ़ैसला कर लिया है और मैं हुकूमत से कोई दरख़्वास्त करना पसंद नहीं करता तो फिर सबने ख़ामोशी इख़्तियार कर ली, और इस तरह मेरे तरीक़े-कार में किसी तरह की मदाख़लत नहीं हुई।

इस तरह हमारी छब्बीस बरस की इज़्दवाजी[1] ज़िंदगी ख़त्म हो गई और मौत की दीवार हम दोनों में हायल हो गई। हम अब भी एक दूसरे को देख सकते हैं, मगर इसी दीवार की ओट से।

मुझे इन चंद दिनों के अंदर बरसों की राह चलनी पड़ी है। मेरे अज़्म[2] ने मेरा साथ नहीं छोड़ा, मगर मैं महसूस करता हूँ कि मेरे पाँव शल[3] हो गये हैं।

ग़ाफ़िल नयम ज़ राह, वले आह चारा नेस्त
कीं रहज़नां कि बर दिले-आगाह मीज़नंद[4]

यहाँ अहाते के अंदर एक पुरानी क़ब्र है। नहीं मालूम किसकी है? जब से आया हूँ सैंकड़ों मर्तबा उस पर नज़र पड़ चुकी है। लेकिन अब उसे देखता हूँ तो ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे एक नये तरह का उन्स[5] उससे तबीयत को पैदा हो गया हो। कल शाम को देर तक उसे देखता रहा और मुतम्मिम बिन नुवीरा का मर्सिया जो उसने अपने भाई मालिक की मौत पर लिखा था, बेइख़्तियार याद आ गया।

लक़द लामनी इन्दल क़ुबूरि मलल बुका
रफ़ीक़ि लितज़राफ़ि ह् द्मूइस्सवाफ़िकि
फ़क़ाल अतब्की कुल्ल क़बरिन रऐतहु
लिक़बिन् सवा बैनल लवा फ़द्दकादिकि

---

३. जिस बात से तू डरता था वह हो गई ४. रफ़ीक का बहुवचन, साथी १. दांपत्तिक २. हफ़्ता ३. बेकार ४. रास्ते से ग़ाफ़िल नहीं हूं, लेकिन कोई चारा नहीं है, ये राहज़न इस जानकार दिल पर चोट करते हैं ५. प्रेम, मुहब्बत।

फ़क़ुल्तु लहु इन्नश्शजा यब्अशुश्शजा
फ़बानि फ़हाज़ा कुल्लहु क़ब्रु मालिकि[1]

अब क़लम रोकता हूँ। अगर आप सुनते होते तो बोल उठते :

सोवा ख़ुदा के वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़साने में।

१. पहले दीबाचे में इसका अर्थ दे दिया गया है।

क़िलअ़-ए-अहमदनगर
१४ जून, सन '४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

हस्बे-हाले न नविश्तेम ओ शुद अय्यामे चंद
क़ासिदे को कि फ़िरिस्तम ब तू पैग़ामे चंद[1]

गुज़श्ता साल जब हम यहाँ लाये गये थे तो बरसात का मौसम था। वो देखते देखते गुज़र गया और जाड़े की रातें शुरु हो गईं। फिर जाड़े ने भी रख़्ते-सफ़र[2] बांधा और गरमी अपना साज़ ओ सामान फैलाने लगी। अब फिर मौसम की गर्दिश उसी नुक़्ते पर पहुँची है जहाँ से चली थी। गरमी रुख़सत हो रही है और बादलों के क़ाफ़िले हर तरफ़ से उमड़ने लगे हैं। दुनिया में इतनी तबदीलियाँ हो चुकीं, मगर अपने दिल को देखता हूँ तो एक दूसरा ही आलम दिखाई देता है। जैसे इस नगरी में कभी मौसम बदलता ही नहीं। सरमद की रुबाई कितनी पामाल हो चुकी है फिर भी भुलाई नहीं जा सकती।

सरमा बगुज़श्त ओ ईं दिले-ख़ार हमां
गरमा बगुज़श्त ओ ईं दिले-ख़ार हमां
अलक़िस्सा तमाम सर्द ओ गर्मे-आलम
बर मा बगुज़श्त ओ ईं दिले-ख़ार हमां[3]

यहाँ अहाते के शुमाली[4] गोशे में एक नीम का दरख़्त है। कुछ दिन हुए एक वार्डर ने उसकी एक टहनी काट डाली थी और जड़ के पास फेंक दी थी। अब बारिश हुई तो तमाम मैदान सरसब्ज़ होने लगा। नीम की शाख़ों ने भी ज़र्द चिथड़े उतार कर बहार ओ शादाबी[5] का नया जोड़ा पहन लिया। जिस टहनी को देखो, हरे हरे पत्तों और सफ़ेद सफ़ेद फूलों से लद रही है। लेकिन इस कटी हुई टहनी को देखिये तो गोया उसके लिये कोई इंक़लाबे[6]-हाल हुआ ही नहीं। वैसी ही सूखी की सूखी पड़ी है और ज़बाने-हाल से कह रही है।

१. अपनी हालत के अनुसार लिखे कई दिन हो गये हैं। पत्रवाहक कहाँ है कि तुम्हें कुछ संदेश भेजूं २. सफ़र का सामान ३. जाड़ा बीत गया और इस दुखी दिल की हालत वही है, गरमी बीत गई और इस दुखी दिल की हालत वही है। सारांश यह कि दुनिया के सारे सर्द गर्म मैंने सहे लेकिन इस दुखी दिल की हालत वही है ४. उत्तरी ५. ताज़गी ६. परिवर्तन।

हमचु माही ग़ैर दाग़म पोशिशे-दीगर न बूद
ता कफ़न ग्रामद हमीं यक जामा बर तन दाश्तम ![1]

यह भी उसी दरख़्त की एक शाख़ है जिसे बरसात ने आते ही ज़िंदगी और शादाबी का नया जोड़ा पहना दिया। यह भी आज दूसरी टहनियों की तरह बहार का इस्तक़बाल[2] करती। मगर अब इसे दुनिया और दुनिया के मौसमी इंक़लाबों से कोई सरोकार न रहा। बहार ओ ख़िज़ां, गरमी ओ सरदी, ख़ुश्की ओ तरावट सब उसके लिये यकसां हो गये!

कल दोपहर को उस तरफ़ से गुज़र रहा था कि यकायक इस शाख़े-बुरीदा[3] से पांव ठुकरा गया। मैं रुक गया और उसे देखने लगा। बेइख़्तियार शायर की हुस्ने-तालील[4] याद आ गई।

क़तए-उम्मीद कर्दा न ख़्वाहद नसीमे-बहर
शाख़े-बुरीदा रा नज़रे बर बहार नेस्त[5]

मैं सोचने लगा कि इंसान के दिल की सरज़मीन का भी यही हाल है। इस बाग़ में भी उम्मीद ओ तलब के बेशुमार दरख़्त उगते हैं और बहार की आमद आमद की राह तकते रहते हैं। लेकिन जिन टहनियों की जड़ कट गई उनके लिये बहार ओ ख़िज़ां की तबदीलियाँ कोई असर नहीं रखतीं। कोई मौसम भी उन्हें शादाबी[6] का पयाम नहीं पहुँचा सकता।

ख़िज़ां क्या, फ़स्ले-गुल कहते हैं किसको, कोई मौसम हो
वही हम हैं, क़फ़स है और मातम बाल ओ पर का है

मौसमी फूलों के जो दरख़्त यहाँ अक्तूबर में लगाये गये थे, उन्होंने अप्रेल के आख़िर तक दिन निकाले। लेकिन फिर उन्हें जगह ख़ाली करनी पड़ी। मई में ख़याल हुआ कि बारिश के मौसम की तैयारियाँ शुरु कर देनी चाहिये। चुनांचे नये सिरे से तख़्तों[7] की दुरुस्तगी हुई, नये बीज मँगवाये गये। और अब नये पौदे लग रहे हैं। चंद दिनों में नये फूलों से नया चमन आरास्ता हो जायेगा। यह सब कुछ हो रहा है मगर मेरे सामने रह रह कर एक दूसरी ही बात आ रही है। सोचता हूँ कि दुनिया का बाग़ अपनी गुल शिगुफ़्तियों में कितना तंग वाक़े हुआ है? जब तक एक मौसम के फूल मुरझा नहीं जाते, दूसरे मौसम के फूल खिलते नहीं। गोया क़ुदरत को जितना ख़ज़ाना लुटाना था, लुटा चुकी। अब इसी में अदल बदल होता रहता है। एक जगह का सामान उठाया दूसरी जगह सजा दिया, मगर नई पूंजी यहाँ मिल सकती नहीं। यही वजह है कि

---

१. पहले आ चुका है २. स्वागत ३. कटी हुई शाख़ ४. कारण बताना ५. जिसने आशा छोड़ दी हो वह दुनिया की नेमतें नहीं चाहता। कटी हुई शाख़ की नज़र बहार पर नहीं होती ६. तरोताज़गी ७. क्यारी।

क़ुदसी को फूलों का खिलना पसंद नहीं आया था। उसे अंदेशा हुआ था कि अगर बाग़ का फूल खिलेगा तो उसके दिल की कली बंद की बंद रह जायेगी।

ऐशे-ईं बाग़ ब अंदाज़ये-यक तंग दिल स्त
काश गुल ग़ुंचा शवद ता दिले-मा बकुशायद ![1]

ग़ौर कीजिये तो यहाँ की हर बनावट किसी न किसी बिगाड़ ही का नतीजा होती है। या यों कहिये कि यहाँ का हर बिगाड़ दर असल एक नई बनावट है।

बिगड़ने में भी ज़ुल्फ़ उसकी बना की !

मैदानों में गढ़े पड़ जाते हैं, मगर ईंटों का पज़ावा भर जाता है। दरख़्तों पर आरियाँ चलने लगती हैं, मगर जहाज़ बनकर तैयार हो जाते हैं। सोने की कानें ख़ाली हो गईं, लेकिन मुल्क का ख़ज़ाना देखिये तो अशर्फ़ियों से भरपूर हो रहा है। मज़दूर ने अपना पसीना सर से पाँव तक बहा दिया, मगर सरमायादार[2] की राहत ओ ऐश का सरो सामान दुरुस्त हो गया। हम मालन की झोली भरी देखकर ख़ुश होने लगते हैं, मगर हमें यह ख़्याल नहीं आता कि किसी के बाग़ की क्यारी उजड़ी होगी जभी तो वह झोली मामूर हुई। यही वजह है कि जब उर्फ़ी ने अपने दामन में फूल देखे थे तो बेइख़्तियार चीख़ उठा था :

ज़माना गुलशने-ऐशे-किरा ब यग़्मा दाद ?
कि गुल ब दामने-मा दस्ता दस्ता मीआयद ![3]

अक्तूबर से अप्रैल तक मौसमी फूलों की क्यारियाँ हमारी दिलचस्पियों का मरकज़[4] रहीं। सुबह ओ शाम कई कई घंटे उनकी रखवाली में सर्फ़ कर देते थे, मगर मौसम का पलटना था कि उनकी हालत ने भी पलटा खाया। और फिर वो वक़्त आ गया कि उनकी रखवाली करना एक तरफ़ कोई इसका भी रवादार न रहा कि इन अजल रसीदों[5] को चंद दिन और उनकी हालत पर छोड़ दिया जाये। एक एक करके तमाम क्यारियाँ उखाड़ डाली गईं। वही हाथ जो कभी ऊँचे हो होकर उनके सर ओ सीने पर पानी बहाते थे, अब बेरहमी के साथ एक एक टहनी तोड़ मरोड़ कर फेंक रहे थे। जिन दरख़्तों के फूलों का एक एक वरक़[6] हुस्न का मुरक़्क़ा[7] और रानाई[8] का पैकर था, अब झुलसी हुई झाड़ियों और रौंदी हुई घास की तरह मैदान के एक कोने में ढेर हो रहा था, और सिर्फ़ इसी मसरफ़ का रह गया था कि जिस बेसरो सामान को जलाने के

१. इस बाग़ की खुशियाँ एक तंग दिल के समान है। काश फूल कली हो तो मेरा दिल खिल जाय २. पूंजीपति ३. दुनिया ने किसकी ख़ुशी के बाग़ को लूट लिया है कि फूल मेरे दामन में गुलदस्तों के रूप में आ रहे हैं ४. केंद्र ५. मरे हुये ६. पंखुड़ी ७. चित्र पोथी Album ८. सौन्दर्य।

लिये लकड़ियां मयस्सर न आयें, वो इन्हीं को चूल्हे में झोंक कर अपनी हांडी गरम कर ले।

गुलगूनये आरिज़ है, न है रंगे-हिना तू
अय ख़ूं शुदा दिल, तू तो किसी काम न आया

ज़िंदगी और वजूद के जिस गोशे को देखिये, क़ुदरत की करिश्मासाज़ियों के ऐसे ही तमाशे नज़र आयेंगे।

दरीं चमन कि बहार ओ ख़िज़ां हम आग़ोश स्त
ज़माना जाम बदस्त ओ जनाज़ा बर दोश स्त[1]

इंसानी ज़िंदगी का भी बिऐनिहि[2] यही हाल हुआ। सई ओ अमल का जो दरख़्त फल फूल लाता है, उसकी रखवाली की जाती है। जो बेकार हो जाता है, उसे छांट दिया जाता है। फ़अम्मज़्ज़बदु फ़यज़हबु जुफ़ान व अम्मा मायनफ़उन्नास फ़यमकुसु फ़िलअर्दि[3]।

---

१. इस बाग़ में बहार और ख़िज़ां एक दूसरे से मिली हुई हैं। दुनिया के हाथ में शराब का प्याला है और कांधों पर जनाज़ा है। २. ज्यों का त्यों ३. यह क़ुरान की आयत का एक टुकड़ा है जिसमें कारख़ानये-हस्ती की इस असल की तरफ़ इशारा किया गया है कि जो चीज़ फ़ायदेमंद होती है वह बाक़ी रखी जाती है जो बेकार हो गई वह छांट दी जाती है।

क़िलअ़-अहमदनगर
१५ जून, सन् १६४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम

अरब के फ़लसफ़ी अबुलअला मुअर्री ने ज़माने का पूरा फैलाव तीन दिनों के अन्दर समेट दिया था। कल जो गुज़र चुका, आज जो गुज़र रहा है, कल जो आने वाला है।

सलासत अय्यामिन् हियद्दहरु कुल्लहु
व मा हुन्न इल्ललअम्सि व लियौमि व लग़दि
व अल क़मरु इल्ला बाहिवुन् ग़ैरन्नहु
युग़ीबु व याति बिज़्ज़ियायि व मुजद्दिदि[1]

लेकिन तीन ज़मानों की तक़्सीम[2] में नुक़्स[3] यह था कि जिसे हम 'हाल'[4] कहते हैं, वो फ़िलहक़ीक़त है कहाँ? यहाँ वक़्त का जो अहसास भी हमें मयस्सर है वो या तो 'माज़ी'[5] की नौइयत[6] रखता है या मुस्तक़बिल[7] की, और इन्हीं दोनों ज़मानों का एक इज़ाफ़ी तसलसुल[8] है जिसे हम 'हाल' के नाम से पुकारने लगते हैं। यह सच है कि 'माज़ी' और 'मुस्तक़बिल' के अलावा वक़्त की एक तीसरी नौइयत भी हमारे सामने आती रहती है, लेकिन वो इस तेज़ी के साथ आती और निकल जाती है कि हम उसे पकड़ नहीं सकते। हम उसका पीछा करते हैं, लेकिन इधर हमने पीछा करने का खयाल किया और उधर उसने अपनी नौइयत बदल डाली। अब या तो हमारे सामने 'माज़ी' है जो जा चुका या 'मुस्तक़बिल' है जो अभी आया ही नहीं। लेकिन खुद 'हाल' का कोई नामो निशान दिखाई नहीं देता। जिस वक़्त का हमने पीछा करना चाहा था, वो 'हाल' था, और जो हमारी पकड़ में आया है, वो माज़ी है।

निकल चुका है वो कोसों दयारे-हिरमां से!

शायद यही वजह है कि अबू तालिब कलीम को इंसानी ज़िंदगी की पूरी मुद्दत दो दिन से ज्यादा नज़र नहीं आई।

१. काल के कुल तीन दिन हैं—गुज़रा हुआ कल, आज और आने वाला कल। चाँद एक ही है सिवाय इसके और कोई बात नहीं है कि वह छिप जाता है और नई रोशनी के साथ आता है। २. विभाजन ३. नुक़्स, ख़राबी ४. वर्तमान ५. भूतकाल ६. रूप ७. भविष्य ८. सापेक्ष शृंखला।

बदनामिये-हयात दो रोज़े न बूद बेश
वां हम कलीम बा तू च गोयम चसां गुज़श्त
यक रोज़ सर्फ़-बस्तने-दिल शुद ब ईन ओ आं
रोज़े-दिगर बकन्दने दिल ज़ीं ओ आं गुज़श्त ।[1]

एक अरब शायर ने यही मतलब ज़्यादा ईजाज़े-बलग़ात[2] के साथ अदा किया है।

व मता मुसाफ़िबुनल विसालु व दहूना
यौमान यौमु नवी व यौमु सदूदि[3]

और अगर हक़ीक़ते-हाल को और ज़्यादा नज़दीक हो कर देखिये तो वाक़या यह है कि इंसानी ज़िंदगी की पूरी मुद्दत एक सुबह शाम से ज़्यादा नहीं। सुबह आँखें खुलीं, दोपहर उम्मीद ओ बीम में गुज़री, रात आई तो फिर आँखें बंद थीं "लमयल बिसु इल्लअशीयतन् औ ज़ुहारा[4]"

शोरे शुद व अज़ ख़्वाबे-अदम चश्म कुशूदेम
दीदेम कि बाक़ी स्त शबे-फ़ितना ग़नूदेम[5]

लेकिन फिर ग़ौर कीजिये, इसी एक सुबह शाम के बसर करने के लिये क्या क्या जतन नहीं करने पड़ते। कितने सहराओं को तै करना पड़ता है? कितने समंदरों को लांघना पड़ता है? कितनी चोटियों पर कूदना पड़ता है? फिर आतिश और धुंआ का अफ़साना है, बर्क़ ओ ख़िरमन की कहानी है।

दरीं चमन कि हवा दाग़े-शबनम आराई स्त
तसल्लिये ब हज़ार इज़्तराब मीबाफ़ंद[6]

---

१. यह ज़िंदगी की बदनामी दो दिन से ज़्यादा नहीं थी और वह भी किस तरह गुज़री यह कलीम तुमसे क्या कहूँ। एक दिन तो इस और उससे दिल लगाने में लग गया और दूसरा दिन इस और उससे दिल हटाने में लग गया। २. संक्षेप में ३. और कब हमारी आशा पूरी होगी हालां कि वाक़या यह है कि हमारा ज़माना सिर्फ़ दो दिन का है एक आशा का और दूसरा निराशा का ४. उनका क़याम सिर्फ़ एक सुबह शाम भर का था ५. एक हंगामा हुआ और हम नेस्ती से हस्ती में आये। हमने देखा कि अभी हंगामे की रात बाक़ी है इसलिये फिर सो गये। ६. पहले आ चुका है।

क़िलअ्-ए-अहमदनगर
१६, सितंबर सन् '४३ ई.

सदीक़े-मुकर्रम,

बच्चे रबड़ के रंगीन गुब्बारों से बहुत खुश होते हैं। मुझे भी बचपने में इनका बड़ा शौक़ था। वालिद मरहूम के मुरीदों[1] में एक शख़्स गुलाम रहमान था, जो अंग्रेज़ी टोपियों के बनाने का कारोबार करता था। वो मुझे ये गुब्बारे ला दिया करता और मैं उससे बहुत हिल गया था। ये गुब्बारे वैसे ही होते हैं जैसे मुंह से फूंकने के होते हैं। लेकिन इनमें गैस भर दी जाती है और वो उन्हें ऊपर की तरफ़ उड़ाये रखती है। एक मर्तबा मुझे ख़याल हुआ इसे छेद के देखना चाहिए अंदर से क्या निकलता है? शहसराम की एक मुग़लानी अमानी नाम हमारे घर में सिलाई का काम किया करती थी। मैंने अमानी के सिलाई के बक्स से एक सुई निकाली और गुब्बारे में चुभो दी। इस वाक़ये पर सैंतालीस बरस गुज़र चुके, लेकिन इस वक़्त भी ख़याल करता हूँ तो उस सनसनी का असर साफ़ साफ़ दिमाग़ में महसूस होने लगता है जो उस वक़्त अचानक गैस के निकलने और एक लंबी सी की सी आवाज़ पैदा होने से मुझ पर तारी हो गई थी। गैस बाहर निकलने के लिये कुछ ऐसी बेताब थी कि सूई का ज़रा सा छेद पाते ही फ़ौरन फ़व्वारे की तरह मुज़्तरिबाना[2] उछली और दो तीन सैकंड भी अभी नहीं गुज़रे थे कि गुब्बारा ख़ाली होके सुकड़ गया और ज़मीन पर गिर गया।

यक़ीन कीजिये, आजकल बिऐनिहि[3] ऐसा ही हाल अपने सीने का भी महसूस कर रहा हूँ। गुब्बारे की तरह इसमें भी कोई पुरजोश अुन्सर[4] है जो भर गया है और निकलने के लिये बेताब है। अगर कोई हाथ एक सूई उठाकर चुभो दे तो मुझे यक़ीन है इसमें से भी वैसा ही जोश उमड़ कर उछलेगा जैसा गुब्बारे से एक मुज़्तरिब चीख़ के साथ उछला था।

शुद आं कि अहले-नज़र बर कनारा मीरफ़्तंद
हज़ार गूना सुख़न बर दहां वो लब ख़ामोश!
ब बांगे-चंग बुगोयेम आं हिकायतहा
कि अज़ निहुफ़्तने-आं देगे-सीना मीज़द जोश![5]

---

१. शिष्यों में २. अधीरता से ३. ज्यों का त्यों ४. तत्व ५. ऐसा हो गया है कि पारखी लोग किनारे जा रहे हैं और हज़ारों बातें मुंह पर हैं पर होंठ चुप हैं। यह बात मैं तालियां बजाकर कहता हूं कि उस बात के बंद हो जाने से जो मैं कहना चाहता था मेरे सीने की हांडी जोश मारने लगी।

कल रात एक अजीब तरह की हालत पेश आई। कुछ देर के लिये ऐसा महसूस होने लगा कि सूई चुभ रही है और शायद दिल की भाप पानी बनकर बहना शुरु हो जाये। लेकिन यह महज़ एक सानिहा[1] था जो आया और गुज़र गया और तबीयत फिर बंद की बंद रह गई। देग ने जोश खाया लेकिन फूटकर बह न सकी!

ज़ुअफ़[2] से गिरिया मबद्दल ब दमे-सर्द हुआ
बावर[3] आया हमें पानी का हवा हो जाना!

मेरे साथ लासलकी का एक सफ़री (पोर्टेबल) सेट सफ़र में रहा करता था। जब बंबई में गिरफ़्तार करके यहाँ लाया गया तो सामान के साथ वो भी आ गया। लेकिन जब सामान क़िले के अंदर लाया गया तो उसमें सेट नहीं था। मालूम हुआ कि बाहर रोक लिया गया है। जेलर से पूछा तो उसने कहा, कमांडिग आफ़ीसर के हुक्म से रोका गया है और अब गवर्नमेंट से इस बारे में दरयाफ़्त किया जायेगा। बहर हाल जब यहाँ अख़बारों का आना रोक दिया गया था तो ज़ाहिर है कि लासलकी के सेट की इजाज़त क्यों कर दी जा सकती थी? तीन हफ़्ते के बाद अख़बार की रोक तो उठ गई मगर सेट फिर भी नहीं दिया गया। वो चीताख़ां के आफ़िस में मुक़फ़्फ़ल[4] पड़ा रहा। अब मैंने चीताख़ां को दे दिया है कि अपने बंगले में लगाकर काम में लाये। क्योंकि अब वो जिस बंगले में मुंतक़िल[5] हुआ है उसमें लासलकी सेट नहीं है।

लेकिन आजकल कोई फ़ौजी अफ़सर हमारे अहाते के क़रीब क़िले में फ़रोकश[6] है। उसके पास लासलकी का सेट है। कभी कभी उसकी आवाज़ यहाँ भी आ निकलती है। कल रात बहुत साफ़ आने लगी थी। ग़ालिबन बी बी सी का प्रोग्राम था और कोई वायोलीन (Violin) बजानेवाला अपना कमाल दिखा रहा था। लय ऐसी थी जैसी कि (Mendolssopn) के मशहूर क़तअे "नग़मा बग़ैर लफ़्ज़" (सोंग विदाउट वर्ड्ज़) की सुनने में आई थी!

हदीसे-इश्क़ कि अज़ हर्फ़-ओ सौत मुस्तग़नी स्त
ब नालये-दफ़ ओ नै दर ख़रोश वलवला बूद![7]

नागहां एक मुग़न्नियये-ख़ुश लहजा[8] की सदाये-दर्द अंगेज़ उठी और उसने साज़ के ज़ेर ओ बम के साथ मिलकर वो आलम पैदा कर दिया जिसकी तरफ़

---

१. घटना २. कमज़ोरी ३. विश्वास हो गया ४. ताले में बंद ५. गया है ६. ठहरा हुआ ७. प्रेम की बातें शब्द और वाणी से मुक्त है। दफ़ की और बांसरी की आवाज़ से एक शोर हो रहा था ८. सुरीली राग से गाने वाले गवैये की।

ख्वाजये-शीराज़ ने इशारा किया है :

ब राह मोजनव ईं मुतरिबे-मुक़ामशनास
कि दर मयाने-ग़ज़ल क़ौले-आश्ना आवुर्द ![1]

पहले तबीयत पर एक फ़ौरी असर पड़ा। ऐसा महसूस हुआ जैसे फोड़ा फूटने लगा है। लेकिन यह हालत चंद लमहों से ज्यादा नहीं रही। फिर देखा तो बदस्तूर इंक़बाज़े-ख़ातिर[2] वापस आ गया था !

या मगर काविशे-आं नश्तरे-मिज़गां कम शुद
या कि ख़ुद ज़ख्मे-मरा लज़्ज़ते-आज़ार न मांद ![3]

शायद आपको मालूम नहीं कि एक ज़माने में मुझे फ़न्ने-मुसीक़ी[4] के मुताले[5] और मश्क़[6] का भी शौक़ रह चुका है। इसका इश्तग़ाल[7] कई साल तक जारी रहा था। इब्तदा इसकी यूं हुई कि सन १६०५ ई. में जब तालीम से फ़ारिग़ हो चुका था और तुलबा[8] को पढ़ाने में मशग़ूल था, तो किताबों का शौक़ मुझे अक्सर एक कुतुब फ़रोश ख़ुदाबख्श के यहाँ ले जाया करता था जिसने वेलेज़ली स्ट्रीट में मदरसा कालेज के सामने दुकान ले रखी थी, और ज्यादातर अरबी और फ़ारसी की क़लमी किताबों की ख़रीद ओ फ़रोख़्त का कारोबार किया करता था। एक दिन उसने फ़क़ीरउल्ला सैफख़ां की राग दर्पण का एक निहायत ख़ुशख़त और मुसव्वर[9] नुस्ख़ा[10] मुझे दिखाया और कहा कि यह किताब फ़न्ने मुसीक़ी[11] में है। सैफ़ ख़ां आलमगीरी अहद[12] का एक अमीर था और हिन्दुस्तान की मुसीक़ी के इल्म ओ अमल का माहिर था। उसने संस्कृत की एक किताब का फ़ारसी में तर्जुमा किया जो राग दर्पण के नाम से मशहूर हुई। यह नुस्ख़ा जो ख़ुदाबख्श के हाथ लगा था आसफ़जाह के लड़के नासिर जंग शहीद के कुतुबख़ाने का था और निहायत एहतिमाम के साथ मुरत्तब[13] किया गया था। मैं अभी उसका दीबाचा देख रहा था कि मिस्टर डेन्सन रास आ गये जो उस ज़माने में मदरसये-आलिया के प्रिंसिपल थे और ईरानी लहज़े में फ़ारसी बोलने के बहुत शायक़[14] थे। यह देखकर कि एक कमसिन लड़का फ़ारसी की एक क़लमी किताब का ग़ौर ओ ख़ोज[15] से मुताला

१. यह जानकार संगीतज्ञ कैसी रागरागिनी बजाता है कि ग़ज़ल के बीच में जानी-बूझी बातें ले आया २. दिल की घुटन ३. या तो उन भौंहों के नश्तर की चुभन कम हो गई थी या ख़ुद मेरे ही ज़ख्म में पीड़ा की अनुभूति नहीं रही थी ४. संगीत-शास्त्र ५. पठन ६. अभ्यास ७. प्रवृत्ति ८. विद्यार्थियों को ९. सचित्र १०. पुस्तक, ग्रन्थ ११. संगीत शास्त्र १२. ज़माना १३. तैयार किया गया था १४. शौक़ीन १५. ध्यानपूर्वक।

कर रहा है, मुतअज्जिब[1] हुये; और मुझसे फ़ारसी में पूछा—"यह किस मुसन्निफ़[2] की किताब है ?" मैंने फ़ारसी में जवाब दिया कि सैफ़खां की किताब है और फ़न्ने-मुसीक़ी में है। उन्होंने किताब मेरे हाथ से ले ली और खुद पढ़ने की कोशिश की। फिर कहा कि हिन्दुस्तान का फ़न्ने-मुसीक़ी बहुत मुश्किल फ़न है। क्या तुम इस किताब के मतालिब समझ सकते हो ? मैंने कहा जो किताब भी लिखी जाती है इसीलिये लिखी जाती है कि लोग पढ़ें और समझें। मैं भी इसे पढ़ूंगा और समझ लूंगा। उन्होंने हँसकर कहा, तुम इसे नहीं समझ सकते, अगर समझ सकते हो तो मुझे इस सफ़े का मतलब समझाओ। उन्होंने जिस सफ़े की तरफ़ इशारा किया था उसमें मबादियात[3] की बाज़ तक़सीमों का बयान था। मैंने अल्फ़ाज़ पढ़ लिये मगर मतलब कुछ समझ में नहीं आया। शर्मिन्दा होकर खामोश हो गया और बिल आखिर कहना पड़ा कि इस वक़्त इसका मतलब बयान नहीं कर सकता। बग़ौर मुताला[4] करने के बाद बयान कर सकूंगा।

मैंने किताब ले ली और घर आकर उसे अव्वल से आखिर तक पढ़ लिया। लेकिन मालूम हुआ कि जब तक मुसीक़ी की मुस्तलहात[5] पर अबूर[6] न हो और किसी माहिरे-फ़न[7] से इसकी मबादियात समझ न ली जायें, किताब का मतलब समझ में नहीं आ सकता। तबीयत तालिब इल्मी के ज़माने में इस बात की खूगर[8] हो गई थी कि जो किताब भी हाथ आई उस पर एक नज़र डाली और तमाम मतालिब पर अबूर[9] हो गया। अब जो यह रुकावट पेश आई तो तबीयत को सख्त उलझन हुई, और खयाल हुआ कि किसी वाक़िफ़कार से मदद लेनी चाहिए। लेकिन मदद ली जाये तो किससे ली जाये ? खानदानी ज़िंदगी के हालात ऐसे थे कि इस कूचे से रस्म ओ राह रखने वालों के साथ मिलना आसान न था। आखिर खयाल मसीताखां की तरफ़ गया। इस पेशे का यही एक आदमी था जिसकी हमारे यहाँ गुज़र थी।

इस मसीताखां का हाल भी क़ाबिले ज़िक्र है। यह सोनीपत ज़िला करनाल का रहनेवाला था और पेशे का खानदानी गवैया था। गाने के फ़न में अच्छी इस्तैदाद[10] बहम[11] पहुँचाई थी, और देहली और जयपुर के उस्तादों से तहसील[12] की थी। कलकत्ते में तवायफ़ों की मुअल्लिमी किया करता था :

तक़रीब कुछ तो बहरे-मुलाक़ात चाहिये !

यह वालिद मरहूम की खिदमत में बैअत[13] के लिये हाज़िर हुआ। उनका

---

१. आश्चर्यचकित २. लेखक ३. प्रारंभिक बातें ४. ध्यान से पढ़ने के बाद ५. परिभाषाओं पर ६. क़ाबू ७. जानकार ८. आदी ९. क़ाबू १०. जानकारी ११. प्राप्त की थी १२. ज्ञान प्राप्त किया था १३. दीक्षा।

क़ायदा था कि इस तरह के लोगों को मुरीद[1] नहीं करते थे। लेकिन इस्लाह ओ तवज्जो का दरवाज़ा बंद भी नहीं करते। फ़रमाते, बग़ैर बैअत के आते रहो। देखो खुदा को क्या मंज़ूर है। अक्सर हालतों में ऐसा हुआ कि कुछ दिनों के बाद लोग खुद ब खुद अपना पेशा छोड़कर तायिब[2] हो गये। चुनांचे मसीताखां को भी यही जवाब मिला। वालिद मरहूम जुमे के दिन वाज़ के बाद जामा मस्जिद से मकान आते, तो पहले कुछ देर दीवानखाने में बैठते। फिर अंदर जाते। खास खास मुरीद पालकी के साथ चलते हुये आ जाते और अपनी अपनी मारूज़ात[3] पेश करके रुखसत हो जाते। मसीताखां भी हर जुमा वाज़ के बाद हाज़िर होता और दूर फ़र्श के किनारे दस्तबस्ता[4] खड़ा रहता। कभी वालिद मरहूम की नज़र पड़ जाती तो पूछ लेते—मसीताखां क्या हाल है? अर्ज़ करता—हुज़ूर की नज़रे-करम[5] का उम्मीदवार हूं। फ़रमाते—हां, अपने दिल की लगन में लगे रहो। वो बेइख्तियार होकर क़दमों पै गिर जाता और अपने आँसुओं की झड़ी से उन्हें तर कर देता। हा, ज़ौक़ ने क्या खूब कहा है:

हुये हैं तर गिरियये-नदामत[6] से इस क़दर आस्तीन ओ दामन
कि मेरी तर दामिनी के आगे अरक़ अरक़ पाकदामनी है!

कभी अर्ज़ करता—रात के दरबार में हाज़िरी का हुक्म हो जाये। यानी रात की मजलिसे-खास में जो मुरीदों की तालीम-ओ-इरशाद के लिये हफ़्ते में एक बार मुनअक़द[7] हुआ करती थी उसे वालिद मरहूम टाल जाते। मगर उनके टालने का भी एक खास तरीक़ा था। फ़रमाते अच्छी बात है। देखो, सारी बातें अपने वक़्त पर हो रहेंगी। वो जां-बाख्तये-उम्मीद[8] ओ बीम इतने ही में निहाल हो जाता और रूमाल से आँसू पोंछते हुये अपने घर की राह लेता। ख्वाजा हाफ़िज़ इन मामलात को क्या खूब कर कह गये हैं:

ब हाजिबे-दरे-खिलवत सराये-खास बिगो
"फ़ुलां ज़ गोशानशीनाने-खाके-दरगहे-मा स्त!"[9]

लेकिन बिल आखिर उसका इज्ज़-ओ-नियाज़[10] और सिद्क़े-तलब[11] रंग लाये बग़ैर न रहा। वालिद मरहूम ने उसे मुरीद कर लिया था और हल्क़े में बैठने की इजाज़त भी दे दी थी। उसे भी कुछ ऐसी तौफ़ीक़[12] मिली कि तवायफ़ों की नोचियों की मुअल्लिमी से तायिब हो गया और एक बंगाली ज़मींदार की

---

१. शिष्य, चेला २. तोबा करनेवाला ३. अरदास ४. हाथ बांधे। ५. कृपादृष्टि ६. पशेमानी का रोना ७. बैठा करती थी ८. आशा निराशा में जान निछावर किये हुये ९. मेरी खास महफ़िल के दरबानों से कहो कि वह मेरी दरगाह के एकांतवासियों में से है १०. विनय और श्रद्धा ११. सच्ची तलब १२. ईश्वरी प्रेरणा।

की मुलाज़मत पर क़नायत कर ली। वालिद मरहूम को मैंने एक मर्तबा यह कहते सुना था कि मसीताख़ां का हाल देखता हूँ तो पीर चंगी की हिकायत याद आ जाती है। याने मौलाना रूम वाले पीर चंगी की !

पीरे-चंगी कै बुवद मर्दे-ख़ुदा
हब्बज़ा अय सिर्रे-पिन्हां हब्बज़ा[1]

बहर हाल मेरा ख़याल इसी मसीताख़ां की तरफ़ गया और उससे इस मामले का ज़िक्र किया। पहले तो उसे कुछ हैरानी सी हुई, लेकिन फिर जब मामला पूरी तरह समझ में आ गया तो बहुत ख़ुश हुआ कि मुरशिदज़ादा[2] की नज़रे-तवज्जो[3] उसकी तरफ़ मबज़ूल[4] हुई है। लेकिन अब मुश्किल पेश आई कि यह तजवीज़ अमल में लाई जाये तो कैसे लाई जाये ? घर में जहाँ हिदाया और मिश्कात[5] के पढ़ने वालों का मजमा रहता था, सा रा गा मा की सबक़ आमोज़ियों[6] का मौक़ा न था। और दूसरी जगह बिलइल्तज़ाम[7] जाना इश्काल[8] से ख़ाली न था। बहर हाल इस मुश्किल का एक हल निकाल लिया गया और एक राज़दार मिल गया जिसके मकान में निशस्त ओ बरख़ास्त[9] का इंतज़ाम हो गया। पहले हफ़्ते में तीन दिन मुक़र्रर किये थे। फिर रोज़ सहपहर[10] के वक़्त जाने लगा। मसीताख़ां पहले से वहाँ मौजूद रहता और दो तीन घंटे तक मूसीक़ी के इल्म ओ अमल का मशग़ला जारी रहता :

इश्क़ मीवरज़म ओ उम्मीद कि ईं फ़न्ने-शरीफ़
चूं हुनरहाये-दिगर मूजिबे हिरमां न शवद[11]

मसीताख़ां ने तालीम का सिर्फ़ एक ही ढंग रटा हुआ था जो इस फ़न के उस्तादों का आम तरीक़ा होता है। वही उसने यहाँ भी चलाया। लेकिन मैंने उसे रोक दिया और कोशिश की कि अपने तरीक़े पर मालूमात मुरत्तब करूँ। मूसीक़ी के आलात[12] में ज़्यादातर तवज्जो सितार पर हुई और बहुत जल्द उससे उँगलियाँ आश्ना हो गईं। अब सोचता हूँ तो हसरत होती है कि वो भी क्या ज़माना था और तबीयत के क्या क्या वलवले थे। मेरी उम्र सतरह बरस से ज़्यादा न होगी। लेकिन उस वक़्त भी तबीयत की उफ़्ताद यही थी कि जिस मैदान में क़दम उठाइये, पूरी तरह उठाइये और जहाँ तक राह मिले बढ़ते ही

---

१. पीरे चंगी कब ईश्वर का भक्त हुआ है, क्या ख़ूब है यह छिपी बात
२. पीरज़ादा ३. ध्यान ४. आकृष्ट हुआ है ५. इस्लामी न्याय के ग्रंथ ६. पढ़ने का ७. बिना इंतज़ाम ८. मुश्किल ९. उठने बैठने का १० तीसरे पहर ११. प्रेम के पाठ का अभ्यास करता हूँ और यह उम्मीद है कि यह ऊँचा फ़न भी और दूसरों की तरह निराशा का कारण न हो। १२. यंत्रों में।

जाइये। कोई काम भी हो, लेकिन तबीयत इस पर कभी राजी नहीं हुई कि अधूरा करके छोड़ दिया जाये। जिस कूचे में क़दम उठाया, उसे पूरी तरह छान कर छोड़ा। सवाब के काम किये तो वो भी पूरी तरह किये, गुनाह के काम किये तो उन्हें भी अधूरा न छोड़ा। रिंदी का कूचा मिला था तो उसमें भी सबसे आगे रहे थे, पारसाई की राह मिली तो इसमें भी किसी से पीछे न रहे। तबीयत का तक़ाज़ा हमेशा यही रहा कि जहाँ कहीं जाइये नाक़िसों[1] और खामकारों की तरह न जाइये। रस्म ओ राह रखिये तो राह के कामिलों से रखिये। शेख अली हज़ीं ने मेरी ज़बानी कहा था :

ता दस्त रसम बूद ज़दम चाक गरेबां
शर्मिंदगी अज़ खिरक़ये-पशमीना नदारम[2]

चुनांचे इस कूचे में भी क़दम रखा तो जहाँ तक राह मिल सकी क़दम बढ़ाये जाने में कोताही नहीं की। सितार की मश्क़ चार पाँच साल तक जारी रही थी। बीन से भी उँगलियाँ नाआश्ना[3] नहीं रहीं। लेकिन ज़्यादा दिलबस्तगी[4] इससे न हो सकी। फिर इसके बाद एक वक़्त आया कि यह मशग़ला[5] यकक़लम[6] मतरूक[7] हो गया और अब तो गुज़रे हुये वक़्तों की सिर्फ़ एक कहानी बाक़ी रह गई है। अलबत्ता उँगली पर से मिज़राब का निशान बहुत दिनों तक नहीं मिटा था :

अब जिस जगह कि दाग़ है, याँ पहले दर्द था।

इस आलमे-रंग ओ बू में एक रविश तो मक्खी की हुई कि शहद पर बैठती है तो इस तरह बैठती है कि फिर उठ नहीं सकती :

कि पाँव तोड़कर बैठे हैं पायेबंद सिरे।

और एक भँवरे की हुई कि हर फूल पर बैठे बू-बास ली और उड़ गये :

टुक देख लिया, दिल शाद किया, खुश काम हुये और चल निकले।

चुनांचे ज़िंदगी के चमनिस्ताने-हज़ार रंग का एक फूल यह भी था। कुछ देर के लिये रुककर बू-बास लेली और आगे निकल गये। मक़सूद इस इश्तग़ाल[8] से सिर्फ़ यह था कि तबीयत इस कूचे से नाआश्ना न रहे। क्योंकि तबीयत का तवाज़ुन[9] और फ़िक्र की लताफ़त बग़ैर मूसीक़ी की मुमारिसत[10] के हासिल नहीं हो सकती। जब एक खास हद तक यह मक़सद हासिल हो गया तो फिर मज़ीद इश्तग़ाल न सिर्फ़ ग़ैर ज़रूरी था बल्कि मवानये-कार[11] के हुक्म में दाखिल हो

---

१. अपूर्ण, अधूरा २. जब तक मेरा हाथ पहुँचता रहा मैं अपना गरेबां फाड़ता रहा मुझे पशमीने की गुदड़ी से कोई शर्म नहीं है ३. अपरिचित ४. दिल लगाव ५. प्रवृत्ति ६. बिल्कुल ७. छूटना ८. प्रवृत्ति ९. समतोल, तारतम्य १०. अभ्यास ११. निषेध।

गया था। अलबत्ता मुसीक़ी का ज़ौक़ और तास्सुर जो दिल के एक एक रेशे में रच गया था, दिल से निकाला नहीं जा सकता था। और आज तक नहीं निकला।

जाती है कोई कशमकश अंदोहे-इश्क़[1] की
दिल भी अगर गया तो वही दिल का दर्द था!

हुस्न आवाज़ में हो या चेहरे में, ताजमहल में हो या बाग़ में, हुस्न है। और हुस्न अपना फ़ितरी मतालबा[2] रखता है। अफ़सोस उस महरूमे-अज़ली[3] पर जिसके बेहिस दिल ने इस मतालबे का जवाब देना न सीखा हो!

सीनये-गर्म न दारी मतलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नेस्त चु दर मिजमरायत, ऊद मख़र![4]

मैं आपसे एक बात कहूँ। मैंने बारहा अपनी तबीयत को टटोला है। मैं ज़िंदगी की एहतियाजों[5] में से हर चीज़ के बग़ैर ख़ुश रह सकता हूँ, लेकिन मुसीक़ी के बग़ैर नहीं रह सकता। आवाज़े-ख़ुश मेरे लिये ज़िंदगी का सहारा, दिमाग़ी काविशों[6] का मुदावा[7] और जिस्म ओ दिल की सारी बीमारियों का इलाज है:

रूये - निको मुआलिजये - उम्रे - कोतह स्त
ईं नुस्ख़ा अज़ बयाज़े-मसीहा नविश्ता अंद![8]

मुझे अगर आप ज़िंदगी की रही सही राहतों से महरूम[9] कर देना चाहते हैं तो सिर्फ़ इस एक चीज़ से महरूम कर दीजिये, आपका मक़सद पूरा हो जायेगा। यहाँ अहमदनगर के क़ैदख़ाने में अगर किसी चीज़ का फ़ुक़दान[10] मुझे हर शाम महसूस होता है तो वो रेडियो सेट का फ़ुक़दान है:

लज़्ज़ते - मासियते - इश्क़[11] न पूछ
ख़ुल्द[12] में भी यह बला याद आई!

जिस ज़माने में मुसीक़ी का इश्तग़ाल जारी था, तबीयत की ख़ुद-रफ़्तगी[13] और महवियत[14] के बाज़ नाक़ाबिले-फ़रामोश अहवाल पेश आये, जो अगरचे ख़ुद गुज़र गये लेकिन हमेशा के लिये दामने-ज़िंदगी पर अपना रंग छोड़ गये। उसी ज़माने का एक वाक़या है कि आगरे के सफ़र का इत्तिफ़ाक़ हुआ। अप्रैल का महीना था और चाँदनी की ढलती हुई रातें थीं। जब रात की पिछली

१. इश्क़ का ग़म २. स्वाभाविक धर्म ३. शाश्वत वंचना ४. पहले आ चुका है ५. ज़रूरतें ६. गवेषणा ७. इलाज या औषधि ८. सुंदर रूप इस छोटी सी ज़िंदगी का इलाज है, यह नुस्ख़ा मसीहा की पोथी से लिखा है ९. वंचित १०. कमी ११. प्रेम के गुनाह की लज़्ज़त १२. स्वर्ग १३. आत्म-विस्मृति १४. तल्लीनता।

पहर शुरू होने को होती तो चाँद पर्दये-शब[1] हटाकर यकायक झाँकने लगता। मैंने खास तौर पर कोशिश करके ऐसा इंतज़ाम कर रखा था कि रात को सितार लेकर ताज चला जाता और उसकी छत पर जमना के रुख बैठ जाता। फिर जूं ही चाँदनी फैलने लगती सितार पर कोई गत छेड़ देता और उसमें मह्व[2] हो जाता। क्या कहूँ और किस तरह कहूँ कि फ़रेबे-तख़य्युल[3] के कैसे कैसे जलवे[4] इन्हीं आँखों के आगे गुज़र चुके हैं :

गदाये-मैकदा अम, लेक वक़्ते-मस्ती बीं
कि नाज़ बर फ़लक ओ हुक्म बर सितारा कुनम ![5]

रात का सन्नाटा, सितारों की छाँव, ढलती हुई चाँदनी और अप्रेल की भीगी हुई रात। चारों तरफ़ ताज के मनारे सर उठाये खड़े थे, बुर्जियाँ दम बखुद[6] बैठी थीं, बीच में चाँदनी से धुला हुआ मरमरी[7] गुंबद अपनी कुर्सी पर बेहिस ओ हरकत मुतमक्किन[8] था, नीचे जमना की रुपहली जदवलें[9] बल खा खाकर दौड़ रही थीं और ऊपर सितारों की अनगिनत निगाहें हैरत के आलम में तक रही थीं। नूर ओ ज़ुल्मत[10] की इस मिलीजुली फ़ज़ा[11] में अचानक पर्दहाये-सितार से नालहाये-बेहर्फ़[12] उठते और हवा की लहरों पर बेरोक तैरने लगते। आसमान से तारे झड़ रहे थे और मेरी उँगली के ज़ख्मों से नग़मे :

ज़ख्मा बर तारे-रगे-जां मीज़नम
कस च दानद ता च दस्तां मीज़नम[13]

कुछ देर तक फ़ज़ा थमी रहती, गोया कान लगाकर खामोशी से सुन रही है। फिर आहिस्ता आहिस्ता हर तमाशाई हरकत में आने लगता। चाँद बढ़ने लगता। यहाँ तक कि सर पर आ खड़ा होता। सितारे दीदे फाड़ फाड़कर तकने लगते। दरख्तों की टहनियाँ कैफ़िय्यत में आ आकर झूमने लगतीं। रात के स्याह पर्दों के अंदर से अनासिर[14] की सरगोशियाँ[15] साफ़ साफ़ सुनाई देतीं। बारहा ताज की बुर्जियाँ अपनी जगह से हिल गईं और कितने ही मर्तबा ऐसा हुआ कि मनारे अपने काँधों को जुंबिश से न रोक सके। आप बावर करें या न करें मगर यह वाक़या है कि इस आलम में बारहा मैंने बुर्जियों से बातें की

१. रात का पर्दा २. तल्लीन ३. खयालों का फ़रेब ४. तमाशे ५. मैकदे का फ़क़ीर हूँ पर मस्ती के समय देखो कि आसमान पर नाज़ और सितारों पर हुक्म करता हूँ ६. दम साधे ७. सफ़ेद ८. स्थित ९. लहरें १०. प्रकाश और अंधकार ११. वातावरण १२. अक्षरहीन आवाज़ या पुकार १३. अपने प्राणों की रग के तारों पर मिज़राब की चोट करता हूँ कोई क्या जाने कि मैं उँगलियों से क्या राग बजा रहा हूँ १४. पंच भूतों की १५. कानाफूसी।

हैं, और जब कभी ताज के गुंबदे-ख़ामोश की तरफ़ नज़र उठाई है तो उसकी लबों को हिलता हुआ पाया है !

तू मपिंदार कि ईं क़िस्सा ब ख़ुद मीगोयम
गोश नज़दीके-लबम आर कि आवाज़े हस्त ![1]

इस ज़माने के कुछ अर्से बाद लखनऊ जाने और कई माह तक ठहरने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। आप भूले न होंगे कि सबसे पहले आप से वहीं मुलाक़ात हुई थी। आपने क़लमी किताबों के ताजिर[2] अबुलहुसैन से कुल्लियाते-सायब का एक नुस्ख़ा ख़रीदा था और मुझे यह कहकर दिखाया था कि क़लमी किताबों का भी आपको कुछ शौक़ है ?

ईं सुख़न रा च जवाब स्त, तू हम मीदानी ![3]

इसी क़याम के दौरान में मिर्ज़ा मुहम्मद हादी मरहूम से शनासाई[4] हुई। वो मुसीक़ी में काफ़ी दख़ल रखते थे और चूंकि इल्म ओ फ़न की राहों से आश्ना थे इसलिये इल्मी तरीक़े पर इसे समझते और समझा सकते थे। मुझे उनसे अपनी मालूमात की तकमील[5] में मदद मिली। अफ़सोस वो भी चल बसे :

पैदा कहाँ हैं ऐसे परागंदा तबा[6] लोग
अफ़सोस तुमको मीर से सोहबत नहीं रही

उस ज़माने में क्रिश्चियन कालेज के सामने पाँच रुपिया माहवार किराये का एक मकान ले रखा था। वही उनकी दुनिया थी। इल्मे-हैयत[7] के शौक़ ने नज्जारी[8] के मशग़ले से आश्ना कर दिया था। जब कालेज से आते तो मकान की छत पर लकड़ी के दवायरे-क़ुतर[9] और निस्फ़[10] और सुल्स[11] बनाने में मशग़ूल हो जाते और इस तरह अपनी रसद-बंदियों[12] का सामान करते। छत की सीढ़ी टूटी हुई थी। जस्त[13] लगाकर ऊपर पहुँचते और फिर सारी रात सितारों की हमनशीनी में बसर कर देते।

कि बा जाम ओ सुबू हर शब क़रीने-माह ओ परवीनेम ![14]

कई बरस के बाद फिर लखनऊ जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो उन्हें एक-दूसरे ही आलम में पाया। एक रिश्तेदार के इंतक़ाल से कालपी की कुछ जायदाद

---

१. तू यह मत समझ कि मैं ख़ुद कोई क़िस्सा कह रहा हूँ, अपने कानों को मेरे होठों के पास ला और देख कि यह एक ख़ास आवाज़ है २. व्यापारी ३. इस बात का क्या जवाब है यह तू भी जानता है ४. परिचय ५. पूर्ण करने में ६. व्यस्त और परेशान प्रकृति के लोग ७. खगोल विद्या ८. बढ़ई-गिरी ९. दायरे का व्यास १०. अर्धांश ११. तृतीयांश १२. वेध करने का काम १३. उछलकर १४. जाम और सुराही के साथ हर रात चाँद और सितारों के क़रीब हो जाता हूँ।

विरसे में मिल गई थी, और अब जवानी की महरूमियों का बुढ़ापे की ज़ौक़ अंदोज़ियों से कफ़्फ़ारा[1] करना चाहते थे :

वक़्ते-ख़ुशीख रफ़्त, बया ता क़ज़ा कुनेम
उम्र कि बे हुज़ूरे-सुराही ओ जाम रफ़्त ![2]

ये गरमजोशियाँ चूंकि मुसीक़ी के ज़ौक़ के पर्दे में उभरी थी, इसलिये शाहिदाने-नग़्मा परवाज़[3] से सोहबतें गर्म रहती थीं। और बाज़ उस्तादाने-फ़न से भी मज़ाकिरा[4] जारी रहता। इस मर्तबे अगरचे मेरा क़याम बहुत मुख़्तसर रहा लेकिन जितने दिन रहा मुसीक़ी के मज़ाकिरात होते रहे। इसी ज़माने के कुछ अर्से बाद उन्होंने मआरिफ़ुल नग़्मात की तरतीब में मदद दी जो छपकर शाया हो चुकी है।

बचपने में हिजाज़ की मुतरन्निम[5] सदाओं से कान आशना हो गये थे। सदरे-अव्वल के ज़माने से लेकर जिसका हाल हम किताब-उल-अग़ानी और इक़्दुलफ़रीद वग़ैरह में पढ़ चुके हैं। आज तक हिजाज़ियों का ज़ौक़े-मुसीक़ी ग़ैर मुतग़य्युर[6] रहा। यह ज़ौक़ उनके ख़मीर में कुछ इस तरह पैवस्त हो गया था कि अज़ां की सदाओं तक को मुसीक़ी के नक़्शों में ढाल दिया। आजकल का हाल मालूम नहीं लेकिन उस ज़माने में हरम-शरीफ़[7] के हर मनारे पर एक मुअज़्ज़िन मुतैयन होता था और उन सब के ऊपर शैख़-उल-मुअज़्ज़नीन होता। उस ज़माने में शैख़-उल-मुअज़्ज़नीन शैख़ हसन थे और बड़े ही ख़ुश आवाज़ थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि रात की पिछली पहर में उनकी तरहीम* की नवायें एक समाँ बाँध दिया करती थीं। हमारा मकान क़दवह में बाबुस्-लाम के पास था। कोठे की खिड़कियों से मीनारों की क़ंदीलें साफ़ नज़र आती थीं और सुबह की अज़ान तो इस तरह सुनाई देती जैसे छत पर कोई अज़ान दे रहा हो। जब ईराक़ और मिसर ओ शाम के सफ़र का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो मौजूदा अरबी मुसीक़ी की जुस्तजू हुई। मालूम हुआ कि क़ुदमा[8] की बहुत सी मुस्तलहात जो हमें किताब-उल-अग़ानी और ख़्वारज़मी वग़ैरह में मिलती हैं,

---

१. प्रायश्चित २. अच्छा वक़्त तो बीत गया है आओ अब उसकी कमी पूरी करें कि जो उम्र जाम और सुराही के बग़ैर बीत गई है ३. गाने वाली रंडियाँ ४. बहस मुबाहसा ५. लयदार ६. अपरिवर्तित ७. मक्के की भीतरी मस्जिद ८. पुराने लोगों की।

* सुबह की अज़ान से पहले मुख़्तलिफ़ कल्माते-अदइय्या (प्रार्थना) एक ख़ास लहनमें दुहराये जाते हैं इसे तरहीम कहते हैं। कम से कम चार सौ बरस पहले भी यह रस्म जारी थी क्योंकि मुल्ला अली क़ारी और साहबुलबायस ने इसे भी बिदअत ओ मुहद्दिसात में से शुमार किया था।

अब कोई नहीं जानता। ताबीर ओ तक़सीम के अस्मा ओ रूमूज़[1] तक़रीबन बदल गये हैं और अरबी की जिन मुस्तलहात ने ईरान पहुँच कर फ़ारसी का जामा पहन लिया था वो अब फिर अरबी में वापस आकर मुअर्रब हो गई हैं। अलबत्ता फ़न की पुरानी बुनियादें अभी तक मुतज़लज़ल नहीं हुई। वही बारह रागनियाँ अब भी असल ओ बुनियाद का काम दे रही हैं जो यूनानी मुसीक़ी की तक़लीद[2] में वज़ा[3] हुई थीं। आसमान के बारह बुर्जों की तरफ़ अब भी इन्हें उसी तरह मंसूब किया जाता है जिस तरह क़ुदमा ने किया था। आलाते-मुसीक़ी[4] में अगरचे बहुत सी तबदीलियाँ हो गईं लेकिन ऊद[5] के पर्दे अभी तक ख़ामोश नहीं हुये हैं, और उनके ज़ख़्मों से वो नवायें अब भी सुनी जा सकती हैं जो कभी हारूनुर्रशीद की शबिस्ताने-तरब में इसहाक़ मूसली और इब्राहीम बिन महदी के मिज़राब से उठा करती थीं :

ईं मुतरिब अज़ कुजा स्त कि साज़े-"इराक़" साख़्त
व आहंगे-बाज़गश्त ब राहे "हिजाज़" कर्द ![6]

"ईराक़" और "हिजाज़" दो रागनियों के नाम हैं। और "राह" याने सुर

मुतरिब निगाहदार हमीं "रह" कि मीज़नी ![7]

उस ज़माने में शैख़ अहमद सलामा हिजाज़ी का जौक़ मिसर में बहुत मशहूर और नामवर था। "जौक़" वहाँ मंडली के माने में बोला जाता है। हमने यहाँ मंडली के लिये तायफ़ा का लफ़्ज़ इख़्तियार किया था। फिर इसकी जमा "तवायफ़" हुई और रफ़्ता रफ़्ता तवायफ़ के लफ़्ज़ ने मुफ़रद[8] मानी पैदा कर लिये। यानी ज़ने-रक़्क़ासा ओ मुग़न्निया[9] के मानी में बोला जाने लगा। शैख़ सलामा का जौक़ क़ाहरा के ओपेरा हाउस में अक्सर अपना कमाल दिखाया करता था और शहर की कोई बज़्मे-तरब बग़ैर उसके बारौनक नहीं समझी जाती थी। मुझे बारहा उसके सुनने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। इसमें शक नहीं कि अरबी मुसीक़ी आजकल जैसी कुछ और जितनी कुछ भी है, वो इसका पूरा माहिर था। एक दोस्त के ज़रिये उससे शनासाई[10] पैदा की थी और मौजूदा अरबी मुसीक़ी पर मज़ाकिरात[11] किये थे।

उस ज़माने में मिसर की एक मशहूर "आलिमा" ताहिरा नामी बाशि-

१. नाम और इशारे २. अनुकरण में ३. बनी थीं ४. संगीत के साज़ों की ५. एक प्रकार की सितार ६. यह संगीतकार कहाँ का है, जिसने इराक़ की रागनी बनाई और उसे हिजाज़ के सुर में बजा रहा है ७. गाने वाले, इसी सुर का ख़्याल रख कि जो बजा रहा है ८. एक अलग ९. नाचने गाने वाली औरत १०. परिचय ११. चर्चा।

न्दये-संता थी। "ग़ालिमा" मिसर में मुग़न्निया को कहते हैं। याने मुसीक़ी का इल्म जानने वाली। हमारे उल्माये-किराम को इस इस्तलाह से ग़लतफ़हमी न हो। योरप की ज़बानों में यही लफ़्ज़ (Alima) हो गया है। शैख़ सलामा भी इस ग़ालिमा की फ़नदानी का ऐतराफ़ करता था। वो ख़ुद भी बलाये-जान थी। मगर उसकी ग्रावाज़ उससे भी ज्यादा ग्राफ़ते-होश ग्रो ईमान थी। मैंने उससे भी शनासाई बहम पहुँचाई और ग्ररबी मुसीक़ी के कमालात सुने। देखिये इस ख़ानुमा ख़राब[1] शौक़ ने किन किन गलियों की ख़ाक छनवाई:

आना पड़ा रक़ीब के दर पर हज़ार बार
ग्रय काश जानता न तिरी रह गुज़र को मैं!

जिस ज़माने के ये वाक़यात लिख रहा हूँ उनके कई साल बाद उम्मे-कुलसूम की शोहरत हुई और ग्रब तक क़ायम है। मैंने उसके बेशुमार रेकार्ड सुने हैं और काहरा, ग्रंगारा, तराब्लिस-ग्रलग़र्ब[2] फ़िलस्तीन और सिंगापुर के रेडियो स्टेशन ग्राजकल भी उसकी नवाग्रों से गूँजते रहते हैं। इसमें कोई शुबहा नहीं कि जिस शख़्स ने उम्मे-कुलसूम की ग्रावाज़ नहीं सुनी है वो मौजूदा ग्ररबी मुसीक़ी की दिलावेज़ियों का कुछ ग्रंदाज़ा नहीं कर सकता। मशहूर इंशादात[3] में से एक नशीद ग्रालिया बिंतुल महदी का मशहूर नसीब[4] है:

व हब्बिब फ़इन्नलहुब्ब दायियतल हुब्बि
व कम मिन बईदिद्दारि मुस्तौजिबुल क़ुर्बि[5]

ग्रलबत्ता यह मानना पड़ता है कि क़दीम यूनानी मुसीक़ी की तरह ग्ररबी मुसीक़ी भी निस्बतन सादा और दिक़्क़त तालीफ़ की काविशों से ख़ाली है। हिन्दुस्तान ने इस मामले को जिन गहराइयों तक पहुँचा दिया, हक़ यह है कि क़दीम तमद्दुनों[6] में से कोई तमद्दुन भी इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। हुस्ने-तक़सीम[7] और दिक़्क़ते-तरतीब यहाँ की हर फ़न्नी शाख़ की ग्राम ख़ुसूसियत रही है। लेकिन जहाँ तक नफ़्से-फ़न[8] की दक़ीक़ा-संजियों[9] का ताल्लुक़ है, इसमें भी कोई शुबहा नहीं कि योरप का मौजूदा फ़न्ने-मुसीक़ी जिसकी बुनियाद निश्तये सानिया (Renaissance) के ज़मूबी बाकमालों ने रखी थी, मुंतिहाये-कमाल[10] तक पहुँचा दिया गया है। और गो ज़ौक़े-समाअ[11] के इख़्तिलाफ़[12] से

१. घर बरबाद करने वाले शौक़ ने २. एक शहर का नाम ३. गानों में से ४. गाना ५. प्रेम कर क्योंकि प्रेम से प्रेम बढ़ता है और बहुत से दूर रहने वाले ऐसे हैं जो निकट लाने के योग्य हैं ६. पुरानी संस्कृतियों में से ७. विभाजन की ख़ूबी ८. ख़ुद फ़न ९. बारीकियों का १०. पूरे उत्कर्ष ११. श्रवण की रुचि १४. विरोध।

हमारे कान उसकी पूरी क़दरशनासी न कर सकें, लेकिन दिमाग़ उसकी अज़मत से मुतास्सिर हुये बग़ैर नहीं रह सकता। दर असल अशिया ओ मानी[1] के तमाम मुरक्कब[2] मिज़ाजों की तरह मुसीक़ी का मिज़ाज भी तरकीबी वाक़े हुआ है और सारा मामला मुफ़रद-असवात लय ओ अलहान[3] की तालीफ़[4] से वजूदपिज़ीर[5] होता है। इन मुफ़रद अजज़ा[6] की बराबर तरकीब का तसविया और तनास्सुब जिस क़दर दक़ीक़ और नाज़ुक होता जायेगा, मुसीक़ी की गहराइयाँ उतनी ही बढ़ती जायेंगी। इस ऐतबार से अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के योरप का फ़न्ने-मुसीक़ी फ़िक्रे-इंसानी की दिक़्क़त अफ़रीनियों[7] का एक ग़ैर मामूली नमूना है और जरमनी के बाकमालाने-फ़न ने तो इस बाब में बड़ी ही सहरकारी[8] की है।

हक़ीक़त यह है कि मुसीक़ी और शायरी एक ही हक़ीक़त के दो मुख़्तलिफ़ जलवे हैं, और ठीक एक ही तरीक़े पर ज़हूरपिज़ीर[9] भी होते हैं। मुसीक़ी का मुख़्तलिफ़ इलहान के अजज़ा को वज़न और तनासुब के साथ तरकीब दे देता है, उसी तरह शायर भी अलफ़ाज़ ओ मानी के अजज़ा को हुस्ने-तरकीब के साथ बाहम जोड़ देता है :

तू हिना बस्ती ओ मन मानीये-रंगीं बस्तम[10]

जो हक़ायक़ शेर में अलफ़ाज़ ओ मानी का जामा पहन लेते हैं, वही मुसीक़ी में इलहान ओ ईक़ाअ[11] का भेस इख़्तियार कर लेते हैं। नग़मा भी एक शेर है लेकिन उसे हर्फ़ ओ लफ़्ज़ का भेस नहीं मिला। उसने अपनी रूहे-मानी के लिये नवाओं का भेस तैयार कर लिया :

वलउज़्नु तअ़श्शक़ु क़ब्ललऐनि अहियाना[12]

यह क्या बात है कि बाज़ इलहान दर्द ओ अलम के जज़्बात बरअंगेख़्ता[13] कर देते हैं, बाज़ के सुनने से मुसर्रत ओ इंबिसात[14] के जज़्बात उमड़ने लगते हैं? बाज़ की लय ऐसी होती है जैसे कह रही हो कि ज़िंदगी और ज़िंदगी के सारे हंगामे हेच हैं। बाज़ की लय ऐसी महसूस होती है जैसे इशारा कर रही हो कि :

यारां सलाये आम स्त, गर मीकुनेद कारे![15]

---

१. शब्द और अर्थ २. मिश्रित ३. एक आवाज़ और लय ४. मिलने से ५. बनता है ६. एक एक चीज़ों की ७. गूढ़ रचनाओं का ८. जादूगरी ९. व्यक्त होते हैं १०. तू हिना बाँधता है और मैं रंगीन मानी बाँधता हूँ। ११. राग १२. और कभी-कभी आँख से पहले कान मुग्ध हो जाते हैं १३. उभारना १४. ख़ुशी और आनंद १५. यारो आम बुलावा है अगर काम करना हो तो।

ये वही मानी हैं जो मुसीक़ी की ज़बान पर उभरने लगते हैं। अगर ये शेर का जामा पहन लेते तो कभी हाफ़िज़ का तराना होता, कभी ख़ैयाम का ज़मज़मा, कभी शेली (Shelley) की मातम सराइयाँ होतीं, कभी वर्डसवर्थ (Wordsworth) की हक़ाधक़ सराइयाँ :

दरीं मैख़ाने-पुरनैरंग हैरान स्त दानाई
कि यक हंगामा आराई ओ सद किश्वर तमाशाई ![1]

यह अजीब बात है कि अरबों ने हिन्दुस्तान के तमाम उलूम ओ फ़ुनून में दिलचस्पी ली लेकिन हिन्दुस्तान की मुसीक़ी पर एक ग़लत अंदाज़ नज़र भी न डाल सके। अबू रेहान अलबरूनी ने किताबुलहिंद में हिन्दुओं के तमाम उलूम ओ अक़ायद पर नज़र डाली है और एक बाब फ़ीकुतुबिहिम फ़ी साइरिलउलूम[2] भी लिखा है। मगर मुसीक़ी का उसमें कोई ज़िक्र नहीं। डाक्टर इदवर्ड सख़ाऊ (Sachau) ने अलआसारुल-बाक़िया के मुक़दमे में अलबरूनी का एक मकतूब दर्ज किया है, जिसमें उसने अपनी तमाम मुसन्निफ़ात[3] का बतफ़सील ज़िक्र किया था। लेकिन उसमें भी इस मौज़ू पर कोई तसनीफ़ नज़र नहीं आती, हालांकि यह वो ज़माना था जब हिन्दुस्तान के नायक सुल्तान महमूद और सुल्तान मसऊद के दरबारों में अपने कमालाते-फ़न की नुमायश करने लगे थे। और हिन्दुस्तान के ढोल और बाजे ग़ज़नी के गली कूचों में बजाये जा रहे थे। ग़ालिबन इस तग़ाफ़ुल[4] की वजह कुछ तो यह होगी कि उलूमे-अक़लिया[5] के शौक़ ओ इश्तग़ाल ने इसकी बहुत कम मोहलत दी कि फ़ुनूने-लतीफ़ा[6] की तरफ़ तवज्जो करते और कुछ यह बात भी होगी कि अरबों का ज़ौक़े-समाअ[7] हिन्दुस्तान के ज़ौक़े-समाअ से इस दर्जे मुख़्तलिफ़ था कि एक के कान दूसरे की नवाओं से बमुश्किल आश्ना हो सकते थे।

हिन्दुस्तान की मुसीक़ी की तरह हिन्दुस्तान के ड्रामों से भी अरब मुसन्निफ़ यकक़लम नाआश्ना रहे। अलबेरुनी ने संस्कृत की शायरी और फ़न्ने-अरूज़[8] का बतफ़सील ज़िक्र किया है, लेकिन नाटक का कोई ज़िक्र नहीं करता। हालांकि यूनानी अदबियात की भी एक ख़ास और मुमताज़ चीज़ नाटक है।

ख़ुद यूनान के फ़ुनूने-अदबिया के साथ भी अरबों ने ऐसा ही तग़ाफ़ुल बरता। यूनान की शायरी की उन्हें बहुत कम ख़बर थी। होमर और सोफ़ाक्लीस वग़ैरहुमा के नाम उन्हें अरस्तू के मक़ालात और अफ़लातून की जमहूरियत

---

१. इस जादूभरी दुनिया में अक़्ल हैरान है। एक शोर हो रहा है और सैकड़ों मुल्क तमाशा देख रहे हैं २. कुल इल्मों की किताबों के बयान में। ३. रचनाओं का ४. ग़फ़लत, उपेक्षा ५. दिमाग़ी ज्ञान ६. ललित कला ७. श्रवण की रुचि ८. काव्यशास्त्र।

से मालूम हो गये थे, लेकिन इससे ज्यादा कुछ मालूम न कर सके। इब्नरुश्द ने "कामेडी" और "ट्रेजेडी" की जो तारीफ़ अपनी शरह में की है उससे अंदाजा किया जा सकता है कि यूनानी ड्रामे की हक़ीक़त से उसका दिमाग़ किस दर्जे नाआशना था। कामेडी को हज्व[1] और ट्रेजेडी को मदह[2] से ताबीर करता है!

यह बात भी साफ़ नहीं हुई कि यूनानी फ़ने-बलाग़त[3] से अइम्माये-बलाग़ते-अरब[4] कहाँ तक मुतास्सिर हुये थे? बज़ाहिर उन्होंने इसे क़ाबिले-ऐतना[5] नहीं समझा। अरस्तू के मक़ालात खताबत और शायरी पर अरबी में मुंतक़िल हो गये थे और इब्ने रुश्द ने अपनी शुरूह[6] में इन्हें भी शामिल किया है। लेकिन अरब अइम्मये-फ़न[7] न तो इसकी रूह समझ सके और न बलाग़ते-अरबी की सरगरानियों ने इसकी मोहलत दी कि समझने की कोशिश करते। अरस्तू ने अपने दोनों मक़ालों में जो कुछ लिखा है वो तमामतर यूनानी खताबत और शायरी के नमूनों पर मबनी[8] है और अरबी दिमाग़ उनसे आश्ना न था। आपने इब्ने क़ुद्दामा की नक्दुश्शेर का जरूर मुताला किया होगा। चौथी सदी के बग़दाद के इल्मी हल्क़े में उसका नश्वोनुमा हुआ था और वो नस्लन रूमी था। चंद साल हुए इस्कोरियाल (स्पेन) के कुतुबखाने में एक किताब का सुराग़ मिला जिसकी लोह पर "नक़्दुन्नस्र" दर्ज था। मगर मुसन्निफ़ का नाम मिटा हुआ था। बहुत ग़ौर करने से अबू जाफ़र इब्ने-क़ुद्दामा से मिलते-जुलते हुरूफ़ दिखाई देने लगे। जब इस नाम की किताब दुनिया के कुतुबखानों की फ़हरिस्तों में ढूँढ़ी गई तो मालूम हुआ कि कोई दूसरा नुस्खा इसका मौजूद नहीं। इस्कोरियाल के कुतुबखाने में ज्यादातर वही किताबें हैं जो सतरहवीं सदी में सुल्तान मराकश के दो जहाज़ों की लूट से स्पेन के हाथ आई थीं। चूंकि इस ज़माने में इस्लामी ज़ख़ीरों को तबाह करने की मसीही सरगर्मियाँ ठंडी पड़ चुकी थीं, इसलिये इन्हें ज़ाया नहीं किया गया और इस्कोरियाल की खानक़ाह में रख दी गईं। यक़ीनन यह नुस्खा भी इसी लूट में आ गया होगा। पिछले दिनों जामा मिसरिया के इदारे[9] ने इसका अक्स हासिल किया और डाक्टर मंसूर और डाक्टर ताहा हुसैन की तसरीह[10] ओ तरतीब के बाद छपकर शाया हो गया। दोनों ने इस पर अलग अलग मुक़दमे भी लिखे हैं। बज़ाहिर इसमें शक करने की कोई वजह मालूम नहीं होती कि यह रिसाला भी नक्दुश्शेर के मुसन्निफ़ ही की क़लम से निकला है। रिसाले के उसलूबे-बयान में मंतक़ी

---

१. किसी की बुराई करने को हज्व कहते हैं २. स्तुति ३. अलंकार शास्त्र ४. अरब के अलंकार शास्त्र के मुखिया ५. ध्यान देने योग्य ६. टीकाओं में ७. इस फ़न के मुखिया ८. आधारित है ९. संस्था १०. टीका।

तरीक़े-बहस[1] ओ तहलील[2] साफ़ नुमायां है जो आगे चलकर फ़न्ने-बलाग़त पर बिल्कुल छा गया। लेकिन उसूले-फ़न ख़ालिस अरबी हैं और अमसाल ओ नज़ायर[3] में भी बाहर के असरात की कोई परछाईं दिखाई नहीं देती। अलबत्ता बलाग़त की हक़ीक़त पर बहस करते हुये यूनान और हिन्दुस्तान के बाज़ अक़वाल[4] जाहिज़ के हवाले से नक़ल कर दिये हैं और वो सबने नक़ल किये हैं।

लेकिन अरबों ने जो तग़ाफ़ुल यूनानी अदबियात से बरता था, वो उसके फ़न्ने-मुसीक़ी से बरत नहीं सकते थे। क्योंकि ख़ुद अरबों का फ़न्ने-मुसीक़ी कुछ न था, और जितनी कुछ इमारत भी उन्होंने उठाई थी उसका तमामतर मवाद ईरान की सासानी मुसीक़ी के खंडरों से हासिल किया गया था :

नवाये-बार बद मांद स्त ओ दस्तां ![5]

चुनांचे काफ़ी तसरीहात मौजूद हैं जिनसे मालूम होता है कि यूनान के फ़न्ने-मुसीक़ी पर अरबी में किताबें लिखी गईं और रियाज़ी की एक शाख़ की हैसियत से इसका आम तौर पर मुताला किया गया। यूनानियों ने आसमान के बारह फ़र्ज़ी बुर्जों की मुनासिबत से रागनियों की बारह बुनियादी तक़सीमें की थीं और हर रागनी को किसी एक बुर्ज की तरफ़ मंसूब कर दिया था। अरबों ने भी इसी बुनियाद पर इमारत उठाईं। यूनान और रोम के आलात में से क़ानून और अरग़नून (आरगन) आम तौर पर रायज हो गये थे। अबू-नसर फ़ाराबी ने क़ानून पर एक मुस्तक़िल रिसाला भी लिखा है। इख़वानुस्सफ़ा के मुसन्निफ़ों को भी मुसीक़ी से ऐतना करना पड़ा।

सिंध के नौआबाद अरब हिन्दुस्तान की मुसीक़ी से जो इन अतराफ़ में रायज होगी ज़रूर आश्ना हुये होंगे। लेकिन तारीख़ में सिंध के अरबी अहद के हालात इतने कम मिलते हैं कि जज़्म[6] के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। अलबत्ता छठी सदी हिजरी से शुमाली हिन्द और दकन के नये इसलामी दौरों का जो सिलसिला शुरू हुआ, उनसे हम मुसलमानों के ज़ौक़ और इश्तग़ाल के नतायज बआसानी निकाल सकते हैं। अब हिन्दुस्तान के उलूम ओ फ़ुनून मुसलमानों के लिये ग़ैर मुल्की नहीं रहे थे बल्कि ख़ुद उनके घर की दौलत बन गये थे। इसलिये मुमकिन न था कि हिन्दुस्तानी मुसीक़ी के इल्म ओ ज़ौक़ से वो तग़ाफ़ुल बरतते। चुनांचे सातवीं सदी में अमीर ख़ुसरो जैसे मुज्तहिदे-फ़न का पैदा होना इस हक़ीक़ते-हाल का वाजह[7] सुबूत है। इससे साबित होता है कि अब हिन्दुस्तानी मुसीक़ी हिन्दुस्तानी मुसलमानों की मुसीक़ी बन चुकी

१. न्याय शास्त्र के तरीक़े की बहस २. हल करने का तरीक़ा ३. मिसालें और नज़ीरें ४. क़ौल का बहुवचन ५. बारबद का गाना और उसकी रागनी रह गई है ६. पूर्ण अधिकार के साथ ७. स्पष्ट।

थी और फ़ारसी मुसीक़ी ग़ैर मुल्क़ी समझी जाने लगी थी। साजगरी, एमन और ख़याल तो अमीर खुसरो की ऐसी मुज्तहिदाना इख्तिराम्रात[1] हैं कि अब तक हिन्दुस्तानियों की आवाज में रस और तार के जख्मों में नग़मा है, दुनिया उनका नाम नहीं भूल सकती। मसनवी क़िरानुस्सअदैन में खुद कहते हैं :

जमजमये "साजगरी" दर "इराक़"
कर्दा ब गुल बांगे-इराक़ इत्तिफ़ाक़।[2]

कौल, तराना, सोहला तो गाने की ऐसी आम चीजें बन गई हैं कि हर गवैये की जबान पर हैं हालांकि ये सब इसी अहद की इख्तराम्रात हैं। क्लासीकल मुसीक़ी इनसे आश्ना न थी।

ग़ालिबन मुसलमान पादशाहों से भी पहले मुसलमान सूफ़ियों ने इसकी सरपरस्ती शुरू कर दी थी। मुल्तान, योधन, गोर और देहली की खानक़ाहों में वक़्त के बड़े बड़े बाकमाल हाजिर होते थे और बरकत ओ क़ुबूलियत के लिये अपना अपना जौहरे-कमाल पेश करते थे। जहाँ तक सलातीने-हिंद का ताल्लुक़ है खिलजी, और तुग़लक़ के दरबारों में हिन्दुस्तानी मुसीक़ी की मक़बूलियत और क़दरदानियों के वाक़यात तारीख में मौजूद हैं। लेकिन जिस शाही खानदान ने हिन्दुस्तानी मूसीक़ी से बहैसियत एक फ़न के खास ऐतना[3] किया वो ग़ालिबन जौनपुर का शरकी खानदान था। चुनांचे इसी अहद में ख़याल आम तौर पर मक़बूल हुआ और ध्रुपद की जगह इससे अहले-फ़न ऐतना करने लगे। इसी अहद के लगभग दकन के बहमनी और निजाम-शाही खानदानों का और फिर बीजापुरी बादशाहों का शौक़ ओ जौक़ नुमायां होता है। चूंकि उस जमाने में दकन और मालवा की सरजमीन मुसीक़ी के इल्म ओ अमल का तख्तगाह बन गई थी इसलिये यह क़ुदरती बात थी कि मुसलमान पादशाहों की सरपरस्ती उसे हासिल हो जाती। इब्राहीम आदिल शाह तो बक़ौल जहूरी के इस अक़लीम का जगतगुरु था और उसके शौक़े-मुसीक़ी ने बीजापुर के घर-घर में वज्द ओ समाम्र[4] का चिराग़ रोशन कर दिया था। जहूरी उसकी मदह[5] में क्या खूब कह गया है :

मुरव्वत कर्दा शबहा बर तू सैरे-बाम ओ दर लाजिम
नमी बाशद चिराग़े खानाहाये - बेनवायां रा[6]

मालवा, बंगाल और गुजरात के पादशाहों के जाती इश्तग़ाल ओ जौक़

१. आविष्कार २. जमजमा साजगरी का इराक़ से मेल कर दिया। ३. ध्यान दिया ४. मस्ती में झूमना ५. तारीफ़ ६. तुझ पर रातों ने मेहरबानी की है कि तेरे कोठे और दरवाजों की सैर करें और जो गाना नहीं जानते उनके घर में चिराग़ तक नहीं जलता।

के वाक़यात तारीख़ में बकसरत मिलते हैं। गोर के सलातीन मुल्की ज़बान और मुल्की मुसीक़ी दोनों के सरपरस्त थे। चुनांचे बंगाली ज़बान की क़दीम शायरी ने तमामतर उन्हीं की सरपरस्ती में नश्वोनुमा पाई। मालवे के बाज़बहादुर को तो रूपमती के इश्क़ ने हिन्दी का शायर भी बना दिया था और मुसीक़ी का माहिर भी। आज तक मालवा के घरों से उसके दुहरों की नवायें सुनी जा सकती हैं।

अकबर की क़दरशनासियों से इस फ़न को जो उरूज[1] मिला उसका हाल आम तौर पर मालूम है। अबुलफ़ज़ल ने उन तमाम बाकमालों का ज़िक्र किया है जो फ़तेहपुर और आगरा में जमा हो गये थे और उनमें बड़ी तादाद मुसलमानों की थी। जहांगीर ने अपनी तुज़ुक में जा बजा ऐसे इशारे किये हैं जिनसे उसके ज़ाती ज़ौक़[2] और इश्तग़ाल[3] का सबूत मिलता है। उसकी हुस्न-परस्त तबीयत का लाज़मी तक़ाज़ा यही था कि फ़ुनूने-लतीफ़ा[4] का क़दरशनास[5] हो। चुनांचे शायरी, मुसव्वरी,[6] और मुसीक़ी तीनों का दिलदादा और आला दर्जे का कमालशनास[7] था। उसके दरबार में जिस दर्जे शायर, मुसव्विर[8] और गवैये जमा हो गये थे, फिर हिन्दुस्तान की तारीख़ में जमा होने वाले न थे। उसके दरबार के एक मुसव्विर ने एलिज़ाबेथ के सफ़ीर[9] को अपना कमाल दिखा कर हैरान कर दिया था। उसके शायराना ज़ौक़ के लिये उसका यह एक शेर किफ़ायत करता है :

अज़ मन मताब रुख़ कि नयम बे तू यक नफ़स
यक दिल शिकस्तने-तू ब सद ख़ूं बराबर स्त ![10]

इसी अहद[11] में यह बात हुई कि मुसीक़ी का फ़न भी फ़ुनूने-दानिशमंदी में दाख़िल हो गया और उसकी तहसील[12] के बग़ैर तहसीले-इल्म और तकमीले-तहज़ीब[13] का मामला नाक़िस[14] समझा जाने लगा। उमरा ओ शुरफ़ा[15] की औलाद की तालीम ओ तरबियत के लिये जिस तरह तमाम फ़ुनूने-मदारिस[16] की तहसील का एहतिमाम[17] किया जाता था, उसी तरह मुसीक़ी की तहसील का भी एहतिमाम किया जाता। मुल्क के हर हिस्से से बाकमालाने-फ़न की माँग आती थी और देहली, आगरा, लाहौर और अहमदाबाद के

१. उत्कर्ष २. रुचि ३. प्रवृत्ति ४. ललित कला ५. गुण पारखी ६. चित्रकारी ७. गुण पारखी ८. चित्रकार ९. दूत १०. मुझसे अपना मुख मत फेर कि तेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। तेरा एक दिल को तोड़ना सौ ख़ून के बराबर है। ११. ज़माने में १२. प्राप्ति, जानकारी १३. तहज़ीब की पूर्णता १४. अपूर्ण १५. अमीर और शरीफ़ १६. मदरसों के हुनर १७. बंदोबस्त।

गवैये बड़ी बड़ी तनख़्वाहों पर उमरा ओ शुरफ़ा के घरों में मुलाज़िम रखे जाते थे। जो नौजवान तकमीले-इल्म के लिये बड़े शहरों में आते वो वहाँ के आलिमों और मुदर्रिसों के साथ वहाँ के बाकमालाने-मुसीक़ी को भी ढूँढ़ते और फिर उनके हल्क़ये-तालीम[1] में ज़ानूये-तहसील[2] तह करते। दक्कन में अहमदनगर, बीजापुर और बुरहानपुर के अहले-फ़न मशहूर थे, दोआबा में देहली और आगरे के और पंजाब में लाहौर, स्यालकोट और झंग के।

उस अह्द में ईरान और तूरान से जो अफ़ाज़िल[3] ओ अशराफ़ आते वो हिन्दुस्तानी मुसीक़ी के फ़हम[4] ओ मुनासिबत की ज़रूरत फ़ौरन महसूस कर लेते थे और चंद साल भी गुज़रने नहीं पाते कि उसके मुक़ाम शनास[5] बन जाते थे। मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता साहबे-तारीख़[6] का बाप माज़िंदरान से आकर अहमदनगर में मुक़ीम हुआ था और फ़रिश्ता की वलादत[7] माज़िंदरान की थी। लेकिन उसे हिन्दुस्तानी मुसीक़ी से इस क़दर शग़फ़[8] हुआ कि इस मौज़ू पर एक पूरी किताब तसनीफ़ कर दी। यह किताब मेरे कुतुबख़ाने में मौजूद है। अलाउलमुल्क तूसी जो जुलूसे-शाहजहानी[9] के सातवें साल हिन्दुस्तान आया और फ़ाज़िलख़ाँ के ख़िताब से मुख़ातिब हुआ, और फिर औरंगज़ेब के अह्द में ओहदये-वज़ारत पर फ़ायज़[10] हुआ, हिन्दुस्तानी मुसीक़ी का ऐसा माहिर समझा जाता था कि वक़्त के असातज़ा[11] उससे इस्तफ़ाज़ा[12] करते थे।

उस अह्द के कितने ही मुक़द्दस[13] उल्मा हैं जिनके हालात पढ़िये तो मालूम होता है कि गो मुसीक़ी के इश्तग़ाल से दामन बचाये रहे लेकिन फ़न के माहिर और नुक़्ताशनास थे। मुल्ला मुबारक के हालात में ख़ुसूसियत के साथ इसकी तसरीह[14] मिलती है कि हिन्दुस्तानी मुसीक़ी का आलिम ओ माहिर था। अकबर ने उसे तानसेन का गाना सुनाया तो सिर्फ़ इतनी दाद मिली कि "हाँ गा लेता है!"

मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनी जैसा मुतशर्रिअ़[15] और मुतसल्लिब शख़्स भी बीन बजाने में पूरी महारत रखता था। और फ़ैज़ी ने ज़रूरी समझा था कि अकबर की ख़िदमत में उसकी सिफ़ारिश करते हुये इस मश्शाक़ी का ज़िक्र कर दे। अल्लामा सादुल्ला शाहजहानी जिनकी फ़ज़ीलते-इल्मी[16] और सक़ाहते-तबा[17] का तमाम मुआसिर[18] ऐतराफ़[19] करते हैं, मुसीक़ी और संगीत की हर

१. तालीम की मंडली में २. ज्ञान प्राप्ति के लिये आसन लगा कर बैठते थे ३. विद्वान ४. जानकारी ५. पारखी ६. इतिहास लेखक ७. जन्म, पैदाइश ८. लगाव ९. शाहजहाँ के तख़्त पर बैठने के १०. नियुक्त ११. उस्ताद १२. लाभ लेते थे १३. ऊँचे १४. व्याख्या १५. कट्टर मज़हबी १६. ज्ञान की महानता १७. स्वभाव की गंभीरता १८. उस ज़माने के लोग १९. स्वीकार।

ख़ास पर नज़र रखते थे और माहिराना राय दे सकते थे। उनके उस्ताद मुल्ला अब्दुस्सलाम लाहोरी थे। उनके हल्क़ये-दर्स की आलमगीरियों ने समरक़ंद और बुखारा तक को मुसख्खर[1] कर लिया था और जब शाहजहां ने शहज़ादों की तालीम के लिये तमाम उल्माये-ममलिकत[2] पर नज़र डाली थी तो नज़रें-इंतखाब[3] ने इन्हीं की सिफ़ारिश की थी। लेकिन उनके ज़ौके-मुसीक़ी का यह हाल था कि जिस तरह हिदाया और बज़दवी के मुक़ामात हल किया करते थे उसी तरह मुसीक़ी की मुश्किलात भी हल कर दिया करते थे। शैख मश्ाली खां जो मुल्ला ताहिर पटनी मुहद्दिसे-गुजरात के खानदान से ताल्लुक़ रखते थे और क़ाज़ी-उल-क़ुज़्ज़ात शैख अब्दुलवहाब गुजराती के पोते थे उनके हालात में साहबे-मआसिरुल उमरा ने लिखा है कि मुसीक़ी के शेफ़्ता[5] और उसकी बारीकियों के दक़ीक़ा संज थे। मुल्ला शफ़ीआये-यज़दी मुखातिब ब दानिशमंदखां कि सरआमदे उल्माये असर था और शाहजहां के दरबार में उसका मुबाहस मुल्ला अब्दुलहकीम सियालकोटी से मालूम ओ मशहूर है, हिन्दुस्तान आते ही हिन्दुस्तानी मुसीक़ी में ऐसा बाखबर हो गया कि वक़्त के बाकमालाने-फ़न को उसके फ़ज़्ल ओ कमाल का ऐतराफ़ करना पड़ा। हक़ीम बर्नियर फ़रंसावी साहबे-सफ़रनामा हिन्दासी दानिशमंदखां की सरकार में मुलाज़िम था और ग़ालिबन उसीकी सोहबत का यह नतीजा था कि हुकमाये फ़िरंग[6] का उसे हममशरब[7] लिखा गया है।

शैख अलाउद्दीन जो अपने अहद के मशहूर सूफ़ी गुज़रे हैं और जिनकी एक ग़ज़ल सिमाअ[8] की मजलिस में बकसरत गाई जाती है :

न दानम आं गुले-राना च रंग ओ बू दारद
कि मुर्ग़े-हर चमने गुफ़्तगूये-ऊ दारद
निशाते-बादापरस्तां ब-मुंतहा बरसीद
हनूज़ साक़िये-मा बादा दर सबू दारद![9]

उनके हालात में सब लिखते हैं कि हिन्दुस्तानी मुसीक़ी के माहिर और आलाते-मुसीक़ी[10] के ग़ैरमामूली मश्शाक़[11] थे।

शैख जमाली साहबे-सियरुलऔलिया और उनके लड़के शैख गदाई, दोनों

---

१. वशीभूत २. राज्य के उस्ताद या विद्वान ३. चुनाव की दृष्टि ४. प्रधान न्यायाधीश ५. अनुरागी ६. फ़िरंगी हकीमों का ७. साथी ८. गाने की ९. मैं नहीं जानता कि उस सुंदर फूल का क्या रंग और खुशबू है कि हर चमन का पंछी उसी की बातें करता है। शराबियों की मस्ती अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है और साक़ी ने अभी तक सुराही से शराब डाली भी नहीं है १०. संगीत के साज ११. अभ्यासी, जानकार।

का फ़ने-मुसीक़ी में तवग़्ग़ुल[1] मालूम है। दौरे-आख़िर में मिर्ज़ा मज़हर जानजानां और ख्वाजा मीरदर्द फ़ने-मुसीक़ी के ऐसे माहिर थे कि वक़्त के बड़े बड़े कलावंत अपनी चीजें बग़रज़े-इस्लाह[2] पेश करते और उनके सर की एक हल्की सी जुंबिश को भी अपने कमाले-फ़न की सनद तसव्वुर करते।

शैख़ अब्दुलवाहिद बिलग्रामी शेरशाही अहद के एक आली क़दर बुज़ुर्ग थे। सुलूक ओ तसव्वुफ़ में उनकी किताब सनाबुल मशहूर हो चुकी है। बदायूनी उनके हालात में लिखते हैं कि हिन्दी मुसीक़ी में नक़्श आराइयां करते थे और वज्द ओ हाल की मजलिसें उनसे गर्म होती थीं।

बैरमख़ां मुसीक़ीये-हिंद का बड़ा क़दरशनास था और उसके लड़के अब्दुर्रहीम खानखानां की क़दरशनासियां तो इस दर्जे तक पहुँच गई थीं कि अकबर और जहाँगीर की शाहाना फ़य्याज़ियां भी उनका मुक़ाबला न कर सकीं। अब्दुलबाक़ी निहावंदी ने मआसरे-रहीमी[3] के खात्मे में जहाँ उन उल्मा ओ शोअरा का ज़िक्र किया है जो खानखानां की सरकार से वाबस्ता[4] थे, वहाँ मुसीक़ी के बाकमालों के नाम भी गिनवाये हैं। उनमें ईरानी और हिन्दुस्तानी, हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। शाहनवाज़ख़ां सफ़वी के हालात में साहबे-मआसिरुल उमरा ने लिखा है कि "शेफ़्तये-मुसीक़ी बूद ओ ख्वानिंदहा ओ साज़िंदहा कि पेशे-खुद जमा कर्दा बूद नज़ीर न दाश्तंद।"[5] क़रीब क़रीब यही अल्फ़ाज़ होंगे। हाफ़िज़े से लिख रहा हूँ और किताब देखे हुये सोलह साल गुज़र गये। ज़ैनखां कोका का उलूमे-दर्सिया में शग़फ़ मालूम है। पंजाब की सूबेदारी के ज़माने में भी उसने दर्स ओ तदरीस का मशग़ला बिलइल्तज़ाम जारी रखा था। लेकिन उसके हालात में भी सब लिखते हैं कि "ब कबित ओ राग शग़फ़े दाश्त ओ साज़हा बकमाले-हुस्न ओ खूबी मीनवाख़्त।[6] उसका लड़का मुग़लखां भी इस बाब में अपने बाप का जानशीन था। खाने-कलां मीर मुहम्मद जो शम्सुद्दीन अतगा का भाई था, मुसीक़ीये-हिंद के इल्म ओ महारत में मुमताज़ समझा जाता था। मिर्ज़ा ग़ाज़ी खां बिन जानी बेग हाकिमे-सिंध ओ कंधार की निस्बत सब लिखते हैं कि नग़्मा परवाज़ी, तंबूरनवाज़ी और तमाम साज़ों के बजाने में बेनज़ीर था। मुल्ला मुरशिद यज़्दजरदी ने इसी की मदह में यह रुबाई कही थी :

गर नग़्मये-साज़त ब गुफ़्तं मीआयद
रम्ज़े स्त बगोयमत कि चुं मीआयद

१. अत्यंत लगाव २. संशोधन के लिये ३. रहीम के हाल में ४. ताल्लुक़ रखते थे ५. संगीत का अनुरागी था और गाने और बजानेवाले जो कि उसने अपने यहाँ जमा किये थे उनकी कोई मिसाल नहीं है ६. कबित्त और राग से रुचि रखता था और साज़ों को कमाल की खूबी से बजाता था।

अज़ बस कि बगिर्दे-ज़ख़्मायत मीगरदद
पेचीदा ब तंबूर बरूं मी आयद ![1]

ख़ाने-ज़मां मीर ख़लील ने जो यमीनुद्दौला आसफ़ख़ां का दामाद था, इस फ़न में ऐसी महारत बहम पहुँचाई थी कि लोग अपने इख़्तलाफ़ात[2] उसके आगे फ़ैसले के लिये पेश करते। सरसबाई जो शहज़ादा मुरादबख़्श की महबूबा थी, ख़याल गाने में अपना जवाब नहीं रखती थी। मगर ख़ुद शहज़ादे की फ़नदानी का मर्तबा इतना बुलंद था कि वो उसकी शागिर्दी पर नाज़ करती। औरंगज़ेब ने जब मुराद को क़ैद किया तो सरसबाई भी तैयार हो गई कि उसके साथ क़ैद ओ बंद की सख़्तियाँ गवारा करे। चुनांचे मुराद के साथ क़िलए-ग्वालियार में अर्से तक महबूस रही।

मिर्ज़ा ईसाख़ां तरख़ान जिसने जानीबेग की वफ़ात के बाद सिंध में बड़ी शोरिश बरपा की थी नग़्मा संजी और साज़नवाज़ी में अपना जवाब नहीं रखता था।

अब इस वक़्त हाफ़िज़े की गिरहें खुलने लगी हैं तो बेशुमार वाक़यात सामने आ रहे हैं। शहज़ादा ख़ुर्रम की मां मानमती जो राजा उदयसिंह की बेटी थी जब जहाँगीर के महल में आई तो उसके गाने का महल में शोहरा हुआ। जहाँगीर चूंकि ख़ुद माहिरे-फ़न था इसलिये उसने इम्तिहान लिया और जब देखा कि इम्तिहान में पूरी उतरी तो बहुत ख़ुश हुआ और ख़ुशआवाज़ ख़वासों का एक हल्क़ा उसके सुपुर्द कर दिया कि अपनी तालीम ओ तरबियत से उन्हें तैयार करे। ख़ुद ख़ुर्रम याने शाहजहाँ के ज़ौक़ ओ मुनासिबते-फ़न का यह हाल था कि तानसेन का जानशीन लालख़ां उसका नाम लेकर कान पकड़ता था। ध्रुपद में शाहजहाँ के रुसूख़े-ज़ौक़[3] का मुवर्रिख़ों ने ख़ुसूसियत के साथ ज़िक्र किया है।

निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह के लड़के नासिरजंग शहीद को मुसीक़ी के शौक़ ने संस्कृत ज़बान की तहसील का शौक़ दिलाया ताकि क्लासिकल मुसीक़ी की क़दीम किताबों का बराहे-रास्त मुताला कर सके। उसके हालात में साहबे-शहादतनामा लिखते हैं कि ज़बाने-संस्कृत से वाक़िफ़ और मुसीक़ी और संगीत में माहिर था।

उस अहद में एक अमीर की फ़य्याज़ियाँ[4] तरक़्क़ीये-फ़न के लिये शाहाना

---

१. अगर गीत तेरे साज़ से शांत हो जाय तो यह एक राज़ है कि मैं बताता हूँ कि क्यों ऐसा होता है। वह तेरी मिज़राब के चारों ओर लिपट जाता है और फिर तेरे तंबूरे से बाहर आता है। २. विरोध ३. रुचि की उत्थान ४. उदारता।

फ़य्याज़ियों से कम नहीं होती थीं। शेख़ सलीम चिश्ती का पोता इस्लामख़ां जहांगीर के अहद में बंगाल का सूबेदार हुआ तो उसकी सरकार में अस्सी हज़ार रुपया माहवार राग और रक़्स[1] के तायफ़ों[2] पर ख़र्च किया जाता था। साहबे-मआसिरुलउमरा लिखते हैं कि उसके दस्तरख़्वान पर एक हज़ार लंगरियां* कमाले-तकल्लुफ़ ओ एहतिमाम से दोनों वक़्त चुनी जाती थीं मगर ख़ुद उसका यह हाल था कि ज्वार की रोटी और साठी का ख़ुश्का[3] साग के साथ खाता और किसी दूसरे खाने में हाथ न डालता। यह भी लिखा है कि वो उम्र भर जामये-ख़ासा के नीचे गाढ़े का कुर्ता पहनता रहा और पगड़ी के नीचे भी गाढ़े की ताक़िया[4] ओढ़ता।

औरंगज़ेब के फ़क़ीहाना तक़श्शुफ़[5] से अगरचे फ़ुनूने-लतीफ़ा की गरम-बाज़ारी सर्द पड़ गई, मगर यह जो कुछ हुआ सब दरबारे-शाही तक महदूद था। पिछली आबपाशियों ने मुल्क के हर गोशे में जो नहरें रवां कर दी थीं वो इतनी तुनुक माया न थीं कि शाही सरपरस्ती का रुख़ फिरते ही ख़ुश्क होना शुरु हो जातीं। बिला शुबहा आलमगीरी अहद में शाही सरकार के कारख़ाने बंद हो गये थे, लेकिन मुल्क के हज़ारों लाखों घरों के कारख़ाने कौन बंद कर सकता था? मैंने इस मकतूब की इब्तदा में फ़ारसी की किताब रागदर्पन का ज़िक्र किया है। यह किताब फ़क़ीरुल्ला सैफ़ख़ां ने मुरत्तब की थी जो इसी आलमगीरी अहद का एक अमीर और नासिरअली सरहिंदी का ममदूह[6] था। शेरख़ां लोधी साहबे-मिरातुलख़याल भी इसी अहद में था जिसने ईरानी मुसीक़ी और हिन्दुस्तान मुसीक़ी दोनों में दस्तगाह पैदा की और फिर दोनों पर एक मबसूत[7] किताब लिखी। तज़किरा मिरातुल ख़याल में भी एक फ़सल मुसीक़ी पर लिखी है और अपने ज़ौक़े फ़न का ज़िक्र किया है। मुसीक़ी पर उसकी किताब मेरी नज़र से गुज़र चुकी है। उसका एक ख़ुशख़त नुस्ख़ा रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के कुतुबख़ाने में मौजूद है।

इस सिलसिले में ख़ुद औरंगज़ेब की ज़िंदगी का एक वाक़या क़ाबिले-ज़िक्र है।

बुरहानपुर के हवाली[8] में एक बस्ती ज़ैनाबाद के नाम से बस गई थी।

---

१. नाच और गाने के २. मंडली ३. चावल ४. टोपी ५. फ़क़ीरी स्वभाव ६. स्वामी, सरपरस्त, जिसकी कवि तारीफ़ करे उसे उसका ममदूह कहते हैं ७. बड़ी ८. पास।

* लंगरी लकड़ी की रोग़न की हुई सीनी (तश्तरी) को कहते हैं जो लकड़ी के तख़्त (थाल) की तरह बहुत बड़ी होती थी और एक मुसल्लम गोसफ़ंद बिरियान (पूरा भुना हुआ बकरा) उसमें रखा जा सकता था।

इसी ज़ैनाबाद की रहने वाली एक मुग़न्निया थी जो ज़ैनाबादी के नाम से मशहूर हुई और उसके नग़मा श्रो हुस्न की तीर अफ़गनियों[1] ने औरंगज़ेब को ज़मानये शहज़ादगी में ज़ख़्मी किया। साहबे-मश्रासिरुल उमरा ने इस वाक़ये का ज़िक्र करते हुये क्या ख़ूब शेर लिखा है :

अजब गीरंदा दामे बूद दर आशिक़ रुबाईहा
निगाहे-आश्नाये-यार पेश अज़ आश्नाईहा ![2]

औरंगज़ेब के इस मआशिक़ा[3] की दास्तान बड़ी ही दिलचस्प है। इससे मालूम होता है कि अगरचे उलुलअज़्मियों[4] की तलब ने उसे लोहे और पत्थर का बना दिया था, लेकिन एक ज़माने में गोश्त श्रो पोस्त का आदमी भी रह चुका था और कह सकता था कि :

गुज़र चुकी है यह फ़स्ले-बहार हम पर भी

अभी थोड़ी देर हुई हम यमीनुद्दौला के दामाद मीर ख़लील ख़ाने-ज़मां का तज़किरा कर रहे थे। उस ख़ाने-ज़मा की बीवी औरंगज़ेब की ख़ाला[5] होती थी। एक दिन औरंगज़ेब बुरहानपुर के बाग़ आहूख़ाने में चहलक़दमी कर रहा था, और ख़ाने-ज़मां की बीवी याने उसकी ख़ाला भी अपनी ख़वासों के साथ सैर करने के लिये आई हुई थी। ख़वासों में एक ख़वास ज़ैनाबादी थी जो नग़मा-संजी[6] में सहरकार[7] और शेवये-दिलरुबाई[8] श्रो रानाई[9] में अपना जवाब नहीं रखती थी। सैर श्रो तफ़रीह करते हुये यह पूरा मजमा एक दरख़्त के साये में से गुज़रा जिसकी शाख़ों में आम लटक रहे थे। जूं ही मजमा दरख़्त के नीचे पहुँचा ज़ैनाबादी ने न तो शहज़ादे की मौजूदगी का कुछ पास श्रो लिहाज़ किया न उसकी ख़ाला का। बेबाकाना[10] उछली और एक शाख़े-बुलंद से एक फल तोड़ लिया। ख़ाने-ज़मां की बीवी पै यह शोख़ी गरां गुज़री और उसने मलामत की तो ज़ैनाबादी ने एक ग़लत अंदाज़ नज़र शहज़ादे पर डाली और पिशवाज़ सँभालते हुये आगे निकल गई। यह एक ग़लत अंदाज़ नज़र कुछ ऐसी क़यामत की थी कि उसने शहज़ादे का काम तमाम कर दिया और सब्र श्रो क़रार ने ख़ुदा हाफ़िज़ कहा :

बाला बुलंद इश्वागरे-सर्वे-नाज़े-मन
कोताह कर्द क़िस्सये-ज़ुहदे-दराज़े-मन[11]

---

१. तीरंदाज़ी २. आशिक़ को पकड़ने में एक अजब जाल था, अनुराग से पहले यार की आँखों से पहले ही अनुराग हो गया ३. प्रेमिका ४. ऊँचे इरादे ५. मौसी ६. गाने में ७. जादूगर ८. मन को मोहने में ९. ख़ूब-सूरती १०. बेधड़क ११. लंबे क़द के नाज़ नख़रोंवाले मेरे सर्व के पेड़ ने (प्रेमिका ने) मेरी लंबी तपस्या के क़िस्से को ख़त्म कर दिया।

साहबे-मग्रासिरुलउमरा ने लिखा है कि — "बकमाले-इबराम ग्रो समाजत जैनाबादी रा ग्रज ख़ालये-मोहतरमा खुद गिरफ़्ता, बा ग्रां हमा ज़ुहदे-खुश्क ग्रो तक़्क़ुह बहत शेफ़्ता ग्रो दिलदादाये-ऊ शुद। क़दहे-शराब बदस्ते खुद पुरकर्दा मीदाद। गोयंद रोज़े जैनाबादी हम क़दहे-बादा पुरकर्दा बदस्ते-शहज़ादा दाद ग्रो तकलीफ़े-शुर्ब नमूद।" याने बड़ी मिन्नत ग्रो इलहाह करके ग्रपनी ख़ाला से जैनाबादी को हासिल किया ग्रौर बावजूद उस ज़ुहदे-खुश्क ग्रौर ख़ालिस तफ़क़्क़ुह के जिसके लिये उस ग्रहद में भी मशहूर हो चुका था, उसके इश्क़ ग्रो शेफ़्तगी में इस दर्जे बेक़ाबू हो गया कि ग्रपने हाथ से शराब का प्याला भर भर कर पेश करता ग्रौर ग्रालमे-नशये ग्रो सुरुर की रानाइयाँ देखता। कहते हैं कि एक दिन जैनाबादी ने ग्रपने हाथ से जाम लबरेज़ करके ग्रौरंगज़ेब को दिया ग्रौर इसरार किया कि लबों से लगा ले। देखिये उरफ़ी का एक शेर क्या मौक़े से याद ग्रा गया है, ग्रौर क्या चस्पां हुग्रा है :

साक़ी तुई, ग्रो सादादिली बीं कि शेख़े शहर
बावर न मी कुनद कि मलिक मयगुसार शुद ![1]

शहज़ादे ने हरचंद ग्रिज्ज़ ग्रो नियाज़[2] के साथ इल्तजायें कीं कि मेरे इश्क़ ग्रो दिलबाख़्तगी का इम्तहान इस जाम के पीने पर मौक़ूफ़ न रखो :

मय हाजत नेस्त मस्तीग्रम रा
दर चश्मे-तू ता ख़ुमार बाक़ी स्त[3]

लेकिन उस ऐयार को रहम न ग्राया :

हनूज़ ईमान ग्रो दिल बिसियार ग़ारत करदनी दारद
मुसलमानी मयामोज़ां बर चश्मे-नामुसलमां रा ![4]

नाचार शहज़ादे ने इरादा किया कि प्याला मुँह से लगा ले। गोया वलक़द हम्मत बिही व हम्मा बिहा[5] की पूरी रुयदाद पेश ग्रा गई।

इश्क़श ख़बर ज़ ग्रालमे-मदहोशी ग्रावुरद
ग्रहले-सलाहरा बक़दहनोशी ग्रावुरद ![6]

१. साक़ी तू है ग्रौर यह सादादिली देख कि शहर का शेख़ इस बात पर विश्वास नहीं करता कि बादशाह शराब पीता है २. विनय ३. मेरी मस्ती के लिए शराब की ज़रूरत नहीं है जब तक कि तेरी ग्राँखों में नशा है ४. ग्रभी बहुत ईमान ग्रौर दिल ग़ारत करने हैं। नामुसलमान की ग्राँखों को मुसलमानी मत सिखा ५. वह उसकी तरफ़ बढ़ी ग्रौर वह उसकी तरफ़ बढ़ा ६. उसका प्रेम मदहोशी की दुनिया की ख़बर लाता है, नेक लोगों को शराब पीने की तरफ़ रुजू करता है।

लेकिन जूं ही उस फ़ुसूंसाज़[1] ने देखा कि शहज़ादा बेबस होकर पीने के लिये आमादा हो गया है, फ़ौरन प्याला उसके लबों से खींच लिया और कहा— "ग़रज़ इम्तिहाने-इश्क़ बूद, न कि तल्ख़कामीये-शुमा।"[2]

ईं और दीगर स्त कि आज़ारे-आशिक़ां
चंदां न मीकुनद कि ब आज़ार ख़ू कुनंद ![3]

रफ़्ता रफ़्ता मामला यहाँ तक पहुँचा कि शाहजहाँ तक ख़बरें पहुँचने लगीं और वक़ायानवीसों के फ़र्दों में भी इसकी तफ़सीलात आने लगीं। दारा शिकोह ने इस हिकायत को अपनी सिआअत ओ ग़म्माज़ी[4] का दस्त-माया[5] बनाया। वो बाप को बराबर तवज्जो दिलाता "बबीनेद ईं मुज़व्वरे रियाई च सलाह ओ तक़वा साख़्ता अस्त ?"[6] हा, फ़ैज़ी ने क्या ख़ूब कहा है :

च दस्त मी बुरी अय तेग़े-इश्क़ अगर दाद स्त
बबुर ज़बाने - मलामतगरे - ज़ुलेख़ारा ![7]

नहीं मालूम इस क़ज़िये[8] का ग़ुंचा क्योंकर गुल करता, लेकिन क़ज़ा ओ क़दर[9] ने ख़ुद ही फ़ैसला कर दिया। यानी ऐन उरूजे-शबाब में[10] ज़ैनाबादी का इंतक़ाल हो गया। औरंगाबाद में बड़े तालाब के किनारे उसका मक़बरा आज तक मौजूद है :

ख़ुद रफ़्ता एम ओ कुंज मज़ारे गिरफ़्ता एम
ता बारे-दोश कस न शवद उस्तख़्वाने-मा ![11]

आपने आक़िल ख़ां राज़ी के हाल में यह वाक़या पढ़ा होगा कि ज़मानये-शहज़ादगी में औरंगज़ेब को एक परस्तारे-ख़ास[12] की मौत से सख़्त सदमा पहुँचा था, लेकिन उसी दिन शिकार के एहतिमाम[13] का हुक्म दिया गया। इस बात पर वाबिस्तगाने-दौलत[14] को ताज्जुब हुआ कि सोगवारी की हालत में सैर ओ तफ़रीह और शिकार का क्या मौक़ा था। जब औरंगज़ेब शिकार के लिये

---

१. जादूगरनी २. इससे तुम्हारे प्रेम की परीक्षा लेनी थी, न कि तुम्हारे मुँह को कड़वा करना था ३. यह एक दूसरा ज़ुल्म है कि वो आशिकों को इतना दुःख नहीं देता कि उस दुःख की आदत पड़ जाये ४. चुग़लख़ोरी ५. वसीला ६. देखिये इस धोखेबाज़ ने कैसी नेकी और परहेज़ का रास्ता लिया है ७. हाथ क्या काटती है ओ प्रेम की तलवार, अगर न्याय है तो ज़ुलेख़ा को मलामत करने वालों की ज़बान काट ८. झगड़ा ९. क़िस्मत १०. चढ़ती जवानी में ११. मैं ख़ुद चल दी और मज़ार के कुंज में जा बैठी ताकि मेरी हड्डियाँ किसी के कंधों का बोझ न बनें १२. ख़ास ग़ुलाम १३. बंदोबस्त १४. उसकी सरकार से ताल्लुक़ रखने वाले।

महल से निकला तो आक़िलखां ने कि मीरे-लश्कर[1] था, तनहाई का मौक़ा निकाल कर अर्ज़ किया — इस ग़म ओ अंदोह की हालात में शिकार के लिये निकलना किसी ऐसी ही मसलहत[2] पर मबनी[3] होगा जिस तक हम ज़ाहिर-बीनों की निगाह नहीं पहुँच सकती। औरंगज़ेब ने जवाब में यह शेर पढ़ा।

नालाहाये-ख़ानगी दिलरा तसल्लीबख़्श नेस्त
दर बयाबां मीतवां फ़रयाद ख़ातिरख़्वाह कर्द[4]

इस पर आक़िलखां की ज़बान से बेसाख़्ता यह शेर निकल गया :

इश्क़ च आसां नमूद, आह च दुश्वार बूद
हिज्र च दुश्वार बूद, यार च आसां गिरफ़्त ![5]

औरंगज़ेब पर रिक़्क़त[6] का आलम तारी हो गया। दरयाफ़्त किया कि यह शेर किसका है ? आक़िलखां ने कहा — उस शख़्स का है जो नहीं चाहता कि अपने आपको ज़ुमरये-शोअरा[7] में महसूब[8] कराये। औरंगज़ेब समझ गया कि ख़ुद आक़िलखां का है। बहुत तारीफ़ की और उस दिन से उसकी सरपरस्ती अपने ज़िम्मे ले ली। इस हिकायत में जिस "परस्तारे-ख़ास" का ज़िक्र आया है उससे मक़सूद वही ज़ैनाबादी है।

साहबे-मआसिरुलउमरा ने ख़ाने-ज़मां के हाल में लिखा है कि फ़न्ने-मुसीक़ी में पूरी महारत रखता था और कारोबारे-मनसब के इनहिमाक[9] के साथ राग ओ रंग की मशग़ूलियतें भी बराबर जारी रहती थीं। परीचहरगाने-ख़ुशआवाज़[10] और मुग़न्नियाते-इश्वातराज़[11] उसकी सरकार में हमेशा जमा रहती थीं। उन्हीं में ज़ैनाबादी भी थी जिसकी निस्बत कहा जाता है कि उसकी मदख़ूला[12] थी।

ख़ुद औरंगज़ेब भी मुसीक़ी के फ़न से बेख़बर न था क्योंकि तमाम शहज़ादों की तरह उसने भी इसकी तहसील की होगी। अलबत्ता आगे चल कर उसकी तबीयत की उफ़्ताद ने दूसरी राह इख़्तियार की। इसलिये उसके इश्तग़ाल ओ ज़ौक़ से कनाराकश हो गया। और सल्तनत पर क़ब्ज़ा पाने के बाद तो सिरे से यह कारख़ाना ही बंद कर दिया। गवैयों ने मुसीक़ी का जनाज़ा निकाला तो उसने कहा इस तरह दफ़न करना कि फिर क़ब्र से न उठ सके।

---

१. फ़ौज का मीर २. राय ३. अवलंबित ४. एकांत घर के कोने में बैठ कर रोने से दिल को तसल्ली नहीं होती, मन चाही फ़रियाद जंगल में ही कर सकते हैं ५. प्रेम कितना आसान दिखाई दिया था, लेकिन अफ़सोस कितना दुश्वार था। वियोग कितना दुश्वार था लेकिन यार ने उसे कितना आसान समझा ६. रोना ७. कवियों के गिरोह में ८. गिनाये ९. डूबा होने पर भी १०. गाने वाली सुंदरियां ११. नाज़ नख़रे वाली गाने वाली १२. रखैल।

लेकिन औरंगज़ेब के सारे मंसूबों की तरह सल्तनत का यह परहेज़ी मिज़ाज भी ज़्यादा दिनों तक न चल सका, और उसकी ज़िंदगी के साथ ही ख़त्म हो गया। जिस तरह इंगलिस्तान में प्युरीटन (Puritan) अहद की ख़ुशमिज़ाजियाँ इख़ादये हाल[1] के साथ ही ख़त्म हो गई थीं, उसी तरह यहाँ भी औरंगज़ेब की आँख बंद होते ही सल्तनत का मिज़ाज फिर लौट आया। फ़र्रुख़सियर और मुहम्मदशाह के अहद की तरदिमाग़ियाँ दर असल इसी आलमगीरी ख़ुश्कमिज़ाजियों का रद्दे-अमल[2] था। सैयद अब्दुलजलील मुहद्दिस बिलग्रामी ने फ़र्रुख़सियर की तक़रीब में जो मसनवी लिखी है उससे उस अहद की इशरत मिज़ाजियों का अंदाज़ा किया जा सकता है।

हिन्दुस्तान के क़ुदमाये-फ़न[3] ने मुसीक़ी और रक़्स की एक ख़ास क़िस्म ऐसी क़रार दी है जिसकी निस्बत उनका ख़याल था कि सहराई[4] जानवरों को बेख़ुद करके राम करने में ख़ुसूसियत के साथ मुअस्सिर[5] है। अकबर के ज़माने में रक़्स और गाने की यह क़िस्म शिकारे-क़मारग़ा के सरोसामान में दाख़िल हुई और उसके तायफ़े[6] बाकमालाने-फ़न की निगरानी में तैयार कराये गये। आनंदराम मुख़लिस ने मिरातुल मुस्तलहात में इस तरीक़े शिकार की बाज़ दिलचस्प तफ़सीलात लिखी हैं। वो लिखता है कि जब शिकारे-क़मारग़ा का एहतिमाम किया जाता था तो ये तायफ़े शिकारगाह में भेज दिये जाते थे और रक़्स ओ सरूद[7] शुरु कर देते थे। थोड़ी देर के बाद आहिस्ता आहिस्ता चारों तरफ़ से हिरन सर निकालने लगते और फिर रक़्स ओ सरूद की महवियत[8] उन्हें बिल्कुल तायफ़े के क़रीब पहुंचा देती। जहाँगीर ने एक मर्तबा शिकारे-क़मरग़ा का क़स्द[9] किया और इसी रक़्स ओ सरूद का जाल बिछाया। जब हिरनों के ग़ोल हर तरफ़ से निकलकर सामने आ खड़े हुए तो नूरजहाँ की ज़बान पर बेइख़्तियार अमीर ख़ुसरो का यह शेर तारी हो गया :

हमा आहूवाने-सहरा सरे-ख़ुद निहादा बर कफ़
ब उम्मीदे-आं कि रोज़े ब शिकार ख़्वाही आमद ![10]

यह शेर सुनकर जहाँगीर की ग़ैरते-मर्दुमी[11] ने गवारा न किया कि शिकार के लिये हाथ उठाये। दिलगिरफ़्ता वापस आ गया।

यह ख़याल कि जानवर गाने से मुतास्सिर होते हैं, दुनिया की तमाम

१. वर्तमान काल के ख़त्म होते ही २. प्रतिक्रिया ३. पुराने फ़न-कारों ने ४. जंगली ५. प्रभाव के ६. मंडलियाँ ७. नाच गाना ८. तल्लीनता ९. इरादा १०. जंगल के सारे हिरन अपने सिरों को हथेली पर रखे हुये हैं और इस उम्मीद में हैं कि शायद किसी दिन शिकार के लिये तुम आओगे ११. पौरुष का स्वाभिमान।

क़ौमों की क़दीमी रवायतों में पाया जाता है। तोरात में है कि हज़रत दाऊद की नग़्मा सराई परिंदों को बेख़ुद कर देती थी। यूनानी रवायत में भी एक से ज्यादा अशख़ास की निस्बत ऐसा ही अक़ीदा ज़ाहिर किया गया है। हिन्दुस्तान के क़ुदमाये-फ़न ने तो इसे एक मुसल्लमा हक़ीक़त[1] मान कर अपनी बेशुमार अमलियात की बुनियादें इसी अक़ीदे पर उस्तवार[2] की थीं। साँप, घोड़े और ऊँट का तास्सुर आम तौर पर तस्लीम कर लिया गया है। हुदी की लय अगर रुक जाती है तो महमिल की तेज़ रफ़्तारी भी रुक जाती है।

हुदीरा तेज़तर मीख़्वां चु महमिल रा गरां बीनी![3]

अलबेरुनी ने किताबुलहिंद में राग के ज़रिये शिकार करने के तरीक़ों का ज़िक्र किया है। वो ख़ुद अपना मशाहिदा नक़ल करता है कि शिकारी ने हिरन को हाथ से पकड़ लिया था और हिरन में भागने की क़ुव्वत बाक़ी नहीं रही थी। वो हिन्दुओं का यह क़ौल भी नक़ल करता है कि अगर एक शख़्स इस काम में पूरी तरह माहिर हो तो उसे हाथ बढ़ाकर पकड़ने की भी ज़रूरत पेश न आये। वो सैद को जिस तरफ़ ले जाना चाहे सिर्फ़ अपने राग के ज़ोर से लगाये ले जाये। फिर लिखता है, जानवरों की इस महवियत ओ तसख़ीर[4] को अवाम तावीज़ और गंडे का असर समझते हैं, हालांकि यह महज़ गाने की तासीर है। फिर एक दूसरे मुक़ाम में जहाँ जज़ीरये-सरनदीप का ज़िक्र किया है, लिखता है, यहाँ बंदर बहुत हैं। हिन्दुओं में मशहूर है कि अगर कोई मुसाफ़िर उनके ग़ोल में फँस जाये और रामायन के वो अशआर जो हनुमान की मदह[5] में लिखे गये हैं पढ़ने लगे तो बंदर उसके मुतीअ[6] हो जायेंगे और उसे कुछ नुक़सान नहीं पहुँचेगा। फिर कहता है कि अगर यह रवायत सही है तो इसकी तह में भी वही गाने की तासीर काम करती होगी। पहली तसरीह ग़ालिबन इस बाब में है जो "फ़ीज़िक्रे उलूमेहिम कासिरतुल अजनिहा अलाउ फ़ुकिल हियल"[7] के उनवान से है और दूसरी तसरीह इसके बाद के बाब में मिलेगी जो "फ़ी मआरिफ़ेसक्का मिन बिलादहिम व अनहारिहिम"[8] के उनवान से लिखा है।

लेकिन यह अजीब बात है कि ज़मानये-हाल[9] का इल्मुलहैवान इस ख़याल की वाक़यीयत तस्लीम नहीं करता। और तास्सुरात के मुशाहिदात को दूसरी

१. पूर्ण सत्य २. मजबूत की हैं ३. हुदी एक प्रकार का गाना है जो ऊँटों के काफ़ले के साथ गाया जाता है। यहाँ कहते हैं जब महफ़िल भारी हो तो हुदी को तेज आवाज में गाओ ४. सधाना ५. स्तुति ६. वश में ७. किसी बहाने से जानवरों के बाजू तोड़ देने का अध्याय ८. उनके शहरों और नदियों की भिन्न भिन्न जानकारी का अध्याय ९. वर्तमान का।

इल्लतों पर महमूल करता है। साँप के बारे में तो कहा जाता है कि उसमें सिरे से समाअत[1] का हास्सा[2] ही नहीं है।

वाला दाग़स्तानी साहबे-रियाज़-उश्शोअरा क़िज़लबाशख़ां उम्मीद, मीर मअ़ज़ फ़ितरत मोसुवी, मौतमिनुद्दौला इसहाक़ ख़ां शूस्तरी, ये सब ताज़ा विलायत ईरानी थे, लेकिन हिन्दुस्तान की सोहबतों से आश्ना होते ही उन्होंने महसूस किया कि मुसीक़ीये-हिंद से वाक़फ़ियत पैदा किये बग़ैर अपनी दानिश ओ साइस्तगी की मसनद नहीं सँभाल सकते। इसके लिये उसकी तहसील नागुज़ीर है। क़िज़लबाशख़ां उम्मीद की मजालिसे-तरब का हाल क़ाज़ी मुहम्मद ख़ां अख़्तर ने अपने मकातीब में लिखा है। इससे अंदाज़ा किया जा सकता है कि इस फ़न में किस दर्जे दस्तगाह उसे हासिल हो गई थी। शैख़ अली हज़ीं ईरानी मुसीक़ी से पूरी तरह बाख़बर थे, लेकिन हिन्दुस्तान में उन्होंने हिन्दुस्तानी मुसीक़ी की भी तहसील की। पटना के क़याम के ज़माने में उनका यह दस्तूर था कि हफ़्ते के दो दिन मुसीक़ी की सोहबत के लिये मख़सूस कर दिये थे। शहर के बाकमाल हाज़िर होते और फ़न की बारीकियों के नमूने पेश करते।

अवध की नवाबी के दौर में तफ़ज़्ज़ुल हुसैन ख़ां अल्लामा के इल्म ओ फ़ज़ल की बड़ी शोहरत हुई। शूस्तरी साहिबे-तुहफ़तुलआलम कलकत्ते में उनसे मिला था। जब वो अवध की सफ़ारत के मनसब पर मामूर थे। वो लिखता है कि तमाम उलूमे-अक़लिया के साथ मुसीक़ी में भी दर्जये-इज्तिहाद[3] रखते हैं और शौक़ ओ ज़ौक़ का यह हाल है कि जब तक साज़ पर राग छेड़ा नहीं जाता उनकी आँखें नींद से आश्ना नहीं होतीं। एक माहिरे-फ़न साज़िंदा सिर्फ़ इस काम के लिये मुलाज़िम है कि शब को ख़्वाबगाह में ख़्वाब आवर[4] गत छेड़ दिया करे।

लखनऊ के उल्मा फ़िरंगी महल में से बहरुलउलूम की निस्बत उनके बाज़ मआसिरों ने लिखा है कि फ़ने-मुसीक़ी में उनका रसूख़ आम तौर पर मुसल्लम था।

अलबत्ता यह ज़ाहिर है कि क़ौमों के उरूज ओ तरक़्क़ी के ज़माने में जो इश्तग़ाल[5] तहसीने-फ़िक्र[6] और तहज़ीबे-तबा[7] का बायस होता है वही दौरे तनज़्ज़ुल[8] में फ़िक्र के लिये आफ़त और तबीयत के लिये महलका[9] बन जाता है। एक ही चीज़ हुस्ने इस्तेमाल और ऐतदाले-अमल[10] से फ़ज़्ल ओ कमाल का

---

१. सुनने का २. इंद्रिय ३. विशेष प्रवीणता ४. नींद लाने वाली ५. प्रवृत्ति ६. विचारों के सौंदर्य ७. स्वभाव के शिष्ट होने का ८. अवनति ९. हलाक करने वाली १०. योग्य प्रयोग।

ज़ेवर होती है, और सूये-इस्तेमाल[1] और इफ़रात ओ तफ़रीते-अमल से बद इख़लाक़ी और सद ऐबी का धब्बा बन जाती है। मुसीक़ी का एक शौक़ तो अकबर को था कि अपनी यलग़ारों[2] के बाद जब कमर खोलता तो मजलिसे-सिमाअ[3] ओ निशात से उनकी थकन मिटाता, और फिर एक शौक़ मुहम्मद शाह रंगीले को था कि जब तक महल की औरतें उसे धकेल धकेल कर पर्दे से बाहर न कर देतीं, दीवानख़ाने में क़दम नहीं रखता। सफ़दरजंग जब दीवान की मुहम्मात से थक जाता तो मुसीक़ी के बाकमालों को बारयाब[4] करता। उसी की नस्ल में वाजिदअली शाह का यह हाल था कि जब तबला बजाते बजाते थक जाता तो ताज़ा दम होने के लिये अपने वज़ीर अली नक़ी को बारयाबी का मौक़ा देता। मुसीक़ी का शौक़ दोनों को था मगर दोनों की हालतों में जो फ़र्क़ था, वो मोहताजे-बयान नहीं :

सारत व मुर्सरिक़तिन व सितु मुग़्रिबिन
सत्तानु बैन मुर्शरिक़िन व मुग़्रिबि[5]

इस बात की आम तौर पर शोहरत हो गई है कि इस्लाम का दीनी मिज़ाज फ़ुनूने-लतीफ़ा के ख़िलाफ़ है, और मुसीक़ी मुहर्रमाते-शरइया[6] में दाख़िल है। हालांकि इसकी असलियत इससे ज्यादा कुछ नहीं कि फ़ुक़हा ने सद्दे-वसायल[7] के ख़्याल से इस बारे में तशद्दुद[8] किया, और यह तशद्दुद भी बाबे-क़ज़ा[9] से था न कि बाबे-तशरीअ[10] से। क़ज़ा का मैदान निहायत वसीअ है हर चीज़ जो सूये-इस्तेमाल से किसी मुफ़सिदे[11] का वसीला बन जाये, क़ज़ाअन रोकी जा सकती है। लेकिन इससे तशरीअ का हुक्मे-असली अपनी जगह से नहीं हिल जा सकता। कुलमन हर्रमज़ीनतुल लाहिल्लती अख़रज़ा लि इबादिही व तय्यिबाति व मिनअररिज़्की।[12]

लेकिन यह मबहस मैं यहाँ नहीं छेड़ना चाहता। यहाँ जिस ज़ावियये-निगाह से मामले पर नज़र डाली जा रही है, वो दूसरा है :

मोमिन आ कीशे-मुहब्बत[13] में कि सब कुछ है रवा
हसरते - हुरमते - सहबा ओ मज़ामीर न खींच ![14]

१. बुरे इस्तेमाल से २. चढ़ाइयों के बाद ३. गाने की मजलिस ४. दरबार में बुलाता ५. वह पूरब को चली गई और मैं पच्छिम को चला गया, पूरब और पच्छिम में बहुत बड़ा फ़ासला है ६. शरीअत से हराम ७. वसीलों को रोकना ८. सख़्ती ९. अदालत से १०. मज़हब से ११. फ़साद १२. ईश्वर ने जो अच्छी चीजें और अच्छे खाने अपने बंदों के लिये बनाये हैं उनको कौन हराम कर सकता है १३. प्रेम की राह १४. शराब और गाने के हराम होने की हसरत मत रख।

देखिये बात क्या कहनी चाहता था और कहाँ से कहाँ जा पड़ा ? अब लिखने के बाद सफ़हों पर नंबर लगाये तो मालूम हुआ कि फ़ुलस्केप के छब्बीस सफ़हे स्याह हो चुके हैं। बहर हाल अब क़लम रोकता हूँ।

हर्फ़े-नामंज़ूरे-दिल यक हर्फ़ हम बेश स्त ओ बस
मानिये-दिलख़्वाह गर सद नुस्ख़ा बाशद, हम कम स्त ![1]

१. जो दिल को पसंद न हो एक हर्फ़ भी बहुत है, लेकिन अगर मन-पसंद मानी की सौ किताबें हों तो भी कम हैं।